महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA – 001

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : MBA- 415

पाठ्यचर्या का शीर्षक : आर्थिक वातावरण

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

अनुक्रम

क्र. सं.	इकाईयों के नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई – **1** आर्थिक वातावरण	2–15
2.	इकाई – 2 आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक	16–25
3.	इकाई – 3 पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन	26–37
4.	इकाई – 4 जनसंख्या	38–46
5.	इकाई – 5 गरीबी	47–59
6.	इकाई – 6 क्षेत्रीय असंतुलन/क्षेत्रीय असमानता	60–72
7.	इकाई – 7 औद्योगिक नीति एवं औद्योगिक विकास	73–94
8.	इकाई – 8 औद्योगिक विकास	95–106
9.	इकाई – 9 औद्योगिक बीमारी	107–118
10.	इकाई – 10 लघु तथा कुटीर उद्योग	119–127
11.	इकाई – 11 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण एक परिचय	128–144
12.	इकाई – 12 भारत और विश्व अर्थव्यवस्था	145–154
14.	इकाई – 13 भारत में विदेशी विनियोग(निवेश)	155–173
15.	इकाई – 14 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष	174–185

खंड –1

इकाई–1 आर्थिक वातावरण

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
1.0 प्रस्तावना
1.1 सन 1990 से पूर्व भारत का आर्थिक वातावरण
1.2 सन 1990 के पश्चात भारत का आर्थिक वातावरण
1.3 आर्थिक वातावरण के तत्व
1.4 आर्थिक नीतियां
1.5 आर्थिक नीतियों के उपकरण
1.6 मुख्य आर्थिक नीतियां
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे:

- आर्थिक वातावरण का अर्थ
- भातर में एल.पी.जी. नीति से पूर्व व पश्चात आर्थिक वातावरण
- आर्थिक विकास योजनाओं के उद्देश्य व विशेषताएं
- आर्थिक वातावरण के मुख्य तत्व
- आर्थिक नीतियों का महत्व व विशेषताएं
- मौद्रिक, राजकोषीय व आयात–निर्यात नीति

1.0 प्रस्तावना

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में सातवें स्थान पर है, जनसंख्या में इसका दूसरा स्थान है और केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ भारत विश्व की जनसंख्या के 17 प्रतिशत भाग को शरण प्रदान करता है।

1999 से भारत में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई है जब से उदारीकरण और आर्थिक सुधार की नीति लागू की गई है और भारत विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। सुधारों से पूर्व मुख्य रूप से भारतीय उद्योगों और व्यापार पर सरकारी नियंत्रण का बोलबाला था और सुधार लागू करने से पूर्व इसका जोरदार विरोध भी हुआ, परंतु आर्थिक सुधारों के अच्छे परिणाम सामने आने से विरोध काफ़ी हद तक कम हुआ हैं। हालांकि मूलभूत ढांचे में तेज प्रगति न होने से एक बड़ा तबका अब भी नाखुश है और एक बड़ा हिस्सा इन सुधारों से अभी भी लाभान्वित नहीं हो पाया हैं। आर्थिक वातावरण से अभिप्राय उन आर्थिक तत्वों से है जो व्यवसाय के संचालन को प्रभावित करते हैं।

1.1 भारत के आर्थिक वातावरण का इतिहास (सन 1990) तक

(1) सन 1951 से 1990 तक का आर्थिक वातावरण
(2) सन 1991 से नवीन आर्थिक नीति का सूत्रपात एवं उसका व्यवसाय व उद्योग पर प्रभाव
(क) उदारीकरण
(ख) निजीकरण
(ग) वैश्वीकरण

सन 1991 से भारत सरकार द्वारा आर्थिक नीति में सुधार किए गए
प्रमुख सुधारः—(1) नई औद्योगिक नीति, (2) नई व्यापार नीति, (3) नई राजकोषीय नीति, (4) नई मौद्रिक नीति, (5) नई निवेश नीति, (6) पूंजी बाजार सुधार, (7) अनुदान एवं मूल्य नियंत्रण।
ऐतिहासिक रूप से भारत एक बहुत विकसित आर्थिक व्यवस्था थी, जिसके विश्व के अन्य भागों के साथ मजबूत व्यापारिक संबंध थे। औपनिवेशित युग (1773—1947) के दौरान अंग्रेज़ भारत से सस्ती दरों पर कच्ची सामग्री खरीदा करते थे और तैयार माल भारतीय बाजारों में सामान्य मूल्य से कहीं अधिक उच्चतर कीमत पर बेचा जाता था, जिसके परिणामस्वरूप स्त्रोतों का द्विमार्गी ह्रास होता था। इस अवधि के दौरान विश्व की आय में भारत का हिस्सा 1700 ईस्वी के 22.3 प्रतिशत से गिरकर 1952 में 3.8 प्रतिशत रह गया। 1947 में भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अर्थव्यवस्था की पुनर्निर्माण प्रक्रिया प्रारंभी हुई। इस उद्देश्य से विभिन्न नीतियां और योजनाएं बनाई गई और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कार्यान्वित की गई।
1950 में जब भारत की 3.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल कर ली थी तो कई अर्थशास्त्रियों ने इसे ब्रिटिश राज के अंतिम 50 सालों की विकास दर से तिगुना हो जाने का जश्न मनाया था। समाजवादियों ने इसे भारत की आर्थिक नीतियों की जीत करार दिया था, वे नीतियां जो अंतमुर्खी थी और सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों के वर्चस्व वाली थी। हालांकि 1960 के दशक में ईस्ट इंडियन टाइगरों ने भारत से दोगुनी विकास दर हासिल कर ली थी। जो इस बात का प्रमाण थी कि उनकी बाह्ममुखी और निजी क्षेत्र को प्राथमिकता देने वाली आर्थिक नीतियां बेहतर थीं। ऐसे में भारत के पास 80 मे दशक की बजाज एक दशक पहले 1971 में ही आर्थिक सुधारों को अपनाने के लिए एक अच्छा उदाहरण मिल चुका था।
भारत में 1980 तक जीएनपी की विकास दर कम थी, लेकिन 1981 में आर्थिक सुधारों के शुरू होने के साथ ही इसने गति पकड़ ली थी। 1991 में सुधार पूरी तरह से लागू होने के बाद तो यह मजबूत हो गई थी। 1950 से 1980 के तीन दशको में जीएनपी की विकास दर केवल 1.49 प्रतिशत थी। इस कालखंड में सरकारी नीतियों का आधार समाजवाद था। आयकर की दर में 97.75 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई। कई उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार ने अर्थव्यवस्था पर पूरी तरह से नियंत्रण के प्रयास और अधिक तेज कर दिए थे। 1980 के दशक में हलके से आर्थिक उदारवाद ने प्रति व्यक्ति जीएनपी की विकास दर को बढ़ाकर प्रतिवर्ष 2.89 कर दिया। 1990 के दशक में अच्छे खासे आर्थिक उदारवाद के बाद तो प्रति व्यक्ति जीएनपी बढ़कर 4.19 प्रतिशत तक पहुंच गई। 2001 मे यह 6.78 प्रतिशत तक पहुंच गई।
1991 में भारत सरकार ने महत्वपूर्ण आर्थिक सुधार प्रस्तुत किए जो इस दृष्टि से वृहद प्रयास थे कि इनमें विदेश व्यापार उदारीकरण, वितीय उदारीकरण, कर सुधार और विदेशी निवेश के प्रति आग्रह शामिल थी। इन उपायों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गति देने में मदद की। तब से भारतीय अर्थव्यवस्था बहत आगे निकल आई है। सकल स्वदेशी उत्पाद की औसत वृद्धि दर जो 1951—91 के दौरान 4.34 प्रतिशत थी, 1991—2011 के दौरान 6.24 प्रतिशत के रूप में बढ़ गई। 2015 में भारतीय अर्थव्यवस्था 2 ट्रिलियन अमेरिकी डालर से आगे निकल गई।

टूल बाक्स – 01
आर्थिक वातावरण आर्थिक वातावरण से अभिप्राय उन सभी मुद्रा से संबंधित तत्वों से है जो एक देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

1.2 भारत में सन 1990 के बाद आर्थिक वातावरण

उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण

भारत की अर्थव्यवस्था 1990 के दशक की शुरूआत में महत्वपूर्ण नीतिगत बदलाव के आया था। आर्थिक सुधारों के इस नए मॉडल का मुख्य उद्देश्य यह है कि दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के साथ मैच है कि मदद क्षमताओं के साथ दुनिया में भारत की अर्थव्यवस्था सबसे तेज़ी से विकसित अर्थव्यवस्था बनाने का था।

एक अधिक कुशल स्तर करने के लिए देश की अर्थव्यवस्था को उठाने पर लक्षित व्यापार, विनिर्माण करने का संबंध है, और वितीय सेवाओं के उद्योगों के साथ जगह ले ली है कि सुधारों की श्रृंखला। इन आर्थिक सुधारों को एक महत्वपूर्ण तरीके से देश के समग्र आर्थिक विकास को प्रभावित किया था।

उदारीकरणः–उदारीकरण सरकार के नियमों की कमी आई बताई को दर्शाता है। भारत में आर्थिक उदारीकरण के 24 जुलाई 1991 के बाद से शुरू हुआ जो जारी रखने के वित्तीय सुधारों को दर्शाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण में निम्नलिखित विशेषताएं है –

- शुरू किए गए थे कि आर्थिक सुधारों सभी अनावश्यक नियंत्रण और प्रतिबंध से भारतीय व्यापार और उद्योग का उदार बनाने के उद्देश्य से किया गया।
- वे लाइसेंस परमिट कोटा राज के अंत का संकेत है।

भारतीय उद्योग के उदारीकरण के लिए सम्मान के साथ जगह ले ली है

1. एक संक्षिप्त सूची को छोडकर उद्योगों के अधिकांश में लाइसेंस की आवश्यकता खत्म
2. व्यावसायिक गतिविधियों के पैमाने तय करने में स्वतंत्रता
3. व्यावसायिक गतिविधियों के विस्तार या संकुचन पर कोई प्रतिबंध नहीं है।
4. वस्तुओं और सेवाओं की आवाजाही पर प्रतिबंध को हटाने, वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को तय करने में स्वतंत्रता।
5. अर्थव्यवस्था पर कर की दरों में कमी और अनावश्यक नियंत्रण के उठाने,
6. आयात और निर्यात के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाने, और यह आसान भारतीयों के लिए विदेशी पूंजी और प्रोद्योगिकी को आकर्षित करने के लिए बना।

निजीकरण की विशेषताएं –

- राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए एक कम भूमिका को बड़ी भूमिका देने के उद्देश्य से आर्थिक सुधारों के नए सेट।
- इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार 1991 की नई औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को नई परिभाषा दी।
- उस उद्देश्य सरकार के अनुसार, वित्तीय अनुशासन के सुधार और आधुनिकीकरण की सुविधा प्रदान करने के लिए मुख्य रूप से किया गया था।

- यह भी निजी पूंजी और प्रबंधकीय क्षमताओं को प्रभावी ढंग से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रदर्शन में सुधार करने के लिए उपयोग किया जा सकता है।
- सरकार ने यह भी प्रबंधकीय निर्णय लेने में उन्हें स्वायतता देकर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की दक्षता करने का प्रयास किया गया है।

निजीकरण और वैश्वीकरणः—निजीकरण के रूप में अच्छी तरह से निजी क्षेत्र के लिए व्यापार और सेवाओं और सार्वजनिक क्षेत्र से स्वामित्व के हस्तांतरण में निजी संस्थाओं की भागीदारी को दर्शाता है। वैश्वीकरण की दुनिया के विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के समेकन के लिए खड़ा है।
भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण निम्नलिखित विशेषताएं समाहितः

- वैश्वीकरण पहले से ही सरकार द्वारा शुरू किए गए उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का नतीजा है।
- वैश्वीकरण आम तौर पर दुनिया की अर्थव्यवस्था के साथ देश की अर्थव्यवस्था के एकीकरण का मतलब यह समझा जाता है। यह समझने के लिए और व्यवहार में लागू करने के लिए एक जटिल घटना है।
- यह अधिक से अधिक निर्भरता और एकीकरण की दिशा में दुनिया को बदलने के उद्देश्य से कर रहे हैं कि विभिन्न नीतियों के सेट की नतीजा है।
- यह आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक सीमाओं से परे नेटवर्क और गतिविधियों का निर्माण शामिल है।
- वैश्वीकरण वैश्विक अर्थव्यवस्था के विभिन्न राष्ट्रों के बीच बातचीत और परस्पर निर्भरता का एक बढ़ा स्तर शामिल है।
- शारीरिक भौगोलिक अंतर या राजनीतिक सीमाओं नहीं रह गया है दुनिया भर मे एक दूर के भौगोलिक बाजार में एक ग्राहक सेवा करने के लिए एक व्यावसायिक उद्यम के लिए बाधाओं रहते हैं।

टूल बाक्स — 02 भारत का आर्थिक वातावरण	
सन 1991 से पहले • निम्न आर्थिक विकास • कमजोर आर्थिक नीतियां	सन 1991 के बाद • वैश्वीकरण • निजीकरण • उदारीकरण

एलपीजी और भारत की आर्थिक सुधार

15 अगस्त 19427 को अपनी स्वतंत्रता के बाद, भारत गणराज्य समाजवादी आर्थिक रणनीतियों के लिए अटक गया। 1980 के दशक में राजीव गांधी भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री, आर्थिक पुनर्गठन उपायों के एक नंबर शुरू कर दिया। 1991 में, देश के खाडी, युद्ध और तत्कालीन सोवियत संघ के पतन के बाद भुगतान दुविधा की एक संतुलन का अनुभव किया। देश स्विट्जरलैंड के केंद्रीय बैंक के लिए बैंक ऑफ इंग्लैंड और 20 टन सोने की 47 टन की राशि जमा करने के लिए किया था। इस आईएमएफ या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ एक वसूली संधि के तहत जरूरी हो। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व्यवस्थित आर्थिक पुनर्सगठन के एक दृश्य की कल्पना करने के भारत जरूरी हो, नतीजतन, देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव के आर्थिक सुधारों ग्राउंड ब्रेक किड शुरू की। हालांकि नरसिंह राव द्वारा गठित

समिति आपरेशन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के लिए देखा है, जो सुधारों की एक संख्या नहीं डाली।

डा. मनमोहन सिंह ने भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, तब भारत सरकार के वित मंत्री थे। उन्होंने कहा कि सहायता प्रदान की। नरसिंह राव और इन सुधार की नीतियों को लागू करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

नरसिंह राव समिति की सिफारिशें

इस प्रकार के रूप नरसिंह राव समिति की सिफारिशों पर किए गए।

सुरक्षा नियमों में लाना और रिकार्ड और पूंजी बाजार में सभी मध्यस्थों जो नियंत्रित करने के लिए भारतीय प्रतिभुति एवं विनिमय बोर्ड को वैद्य शक्ति प्रदान की गई है जो 1992 के सेबी अधिनियिम।

दरों और कंपनियों के बाजार में जारी करने वाले थे कि शेयरों की संख्या निर्धारित किया है कि 1992 में राजधानी मामलों के नियंत्रक के साथ दूर कर रहा है।

देश के अन्य शेयर बाजारों के पुनर्गठन को प्रभावित करने के लिए एक उपकरण के रूप मे काम किया है, जो एक कम्प्यूटरीकृत हिस्सेदारी खरीद और बिक्री प्रणाली के रूप में 1994 में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज का शुभारंभ। वर्ष 1996 तक, नेशनल स्टाक एक्सचेंज का भारत में सबसे बड़ा शेयर बाजार के रूप में सामने आया था।

टूल बाक्स – 03
भारतीय व्यापार व उद्योग को उदार बनाना, लाइसेंस, परमिट व कोटा राज का अंत।

1992 में, देश के शेयर बाजारों में विदेशी कॉर्पोरेट निवेशकों के माध्यम से निवेश के लिए उपलब्ध कराया गया था। कंपनियों के जीडीआर या ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीट जारी करने के माध्यम से विदेशी बाजारों से धन जुटाने की अनुमति दी गई।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	आर्थिक वातावरण का अर्थ बताएं?
प्र.2	आर्थिक वातावरण को कैसे विभाजित कर सकते हैं ?
प्र.3	एल.पी.जी. की नीति से क्या अभिप्राय है?
प्र.4	एल.पी.जी. नीति के प्रभाव बताएं?

40 प्रतिशत से 51 प्रतिशत करने के लिए व्यापार के कारोबार या साझेदारी में अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के योगदान पर उच्चतम सीमा बढ़ाने के माध्यम से एफडीआई को बढ़ावा देना। उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 100 प्रतिशत इंटरनेशनल इक्विटी अनुमति दी गई थी।

टूल बाक्स – 04
निजीकरण
निजीकरण के अनुसार निजी क्षेत्र के लिए व्यापार और सेवाओं व सरकार से स्वामित्व के हस्तांतरण में निजी संस्थाओं की भागीदारी।

25 प्रतिशत करने के लिए 85 प्रतिशत का एक मतलब स्तर से शुल्क घटाएं जाने और मात्रात्मक नियमों को वापस लेने। रूपया या अधिकारी भारतीय मुद्रा व्यापार खाते पर एक विनिमय मुद्रा मे बदल गया था।

35 क्षेत्रों में एफडीआई की मंजूरी के लिए तरीकों के पुनर्गठन। अंतर्राष्ट्रीय निवेश और भागीदारी के लिए सीमाओं का सीमांकन किया गया।
इन पुनर्गठन के परिणाम विदेशी निवेश की कुल राशि तथ्य यह है कि अनुमान के अनुसार देश में 1995–96 में 5300000000 डालर के लिए गुलाब की जा सकती है। अमेरिका 1991–92 में 132000000 डालर। नरसिंह राव उत्पादन क्षेत्रों के साथ औद्योगिक दिशानिर्देश परिवर्तन शुरू कर दिया। उन्होंने कहा कि लाइसेंस की आवश्यकता है जो सिर्फ 18 सेक्टरों छोडने दूर लाइसेंस राज के साथ किया था। उद्योगों पर नियंत्रण संचालित किया गया था।

टूल बाक्स – 05
वैश्वीकरण
देश की सीमा से बाहर औद्योगिक सेवाएं प्रदान करना व पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था को देश के लिए खोलना।

नीति की मुख्य विशेषताएं

उदारीकरण, भारत में निजीकरण और वैश्वीकरण की नीति की प्रमुख प्रकाश डाला नीचे दिए गए है।

1. विदेशी प्रौद्योगिकी समझौतें
2. विदेश निवेश
3. एम आर टी पी अधिनियम, 1969 (संशोधित)
4. औद्योगिक लाइसेंसिग ढील
5. निजीकरण की शुरूआत
6. विदेशी व्यापार के लिए अवसर
7. मुद्रास्फीति की विनियमित करने के लिए कदम कर सुधार
8. लाइसेंस–परमिट राज का उन्मूलन

आर्थिक माहौल भी कारोबारी माहौल कहा जाता है और दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता है। हमारे देश की आर्थिक समस्या का समाधान करने के लिए, सरकार कुछ उद्योगों केंद्रीय योजना के राज्य द्वारा नियंत्रण और निजी क्षेत्र की कम महत्व सहित कई कदम उठाए है। भारत के विकास की योजना का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैः

- जीवन स्तर को बढ़ाने में बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी और गरीबी भूमि पीछा कम करने के लिए तेजी से आर्थिक विकास का आरंभ।
- आत्मनिर्भर बने और भारी और बुनियादी उद्योगों पर जोर देने के साथ एक मजबूत औद्योगिक आधार स्थापित,
- देश भर में उद्योगों की स्थापना से संतुलित क्षेत्रीय विकास को प्राप्त
- आय और धन की असमानताओं को कम
- समानता पर आधारित है और आदमी द्वारा शोषण को रोकने के – विकास का एक समाजवादी पैटर्न अपनाने।

ध्यान में रखते हुए उक्त उद्देश्यों के साथ, आर्थिक सुधारों के एक हिस्से के रूप में भारत सरकार ने जुलाई 1991 में एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की।
इस प्रकार इस नीति के व्यापक सुविधाओं

1. सरकार केवल छह के लिए अनिवार्य लाइसेंस के तहत उद्योगों की संख्या कम हो
2. विनिवेश कई सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उद्यमों के मामलों में किया गया।

3. नीति को उदार बनाया गया था। विदेशी इक्विटी भागीदारी की हिस्सेदारी बढ गया था और कई गतिविधियों में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी थी।
4. स्वतः अनुमति अब विदेशी कंपनियों के साथ प्रौद्योगिकी समझौतों के लिए प्रदान किया गया था।
5. विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड को बढावा देने और भारत में विदेशी निवेश करने के लिए स्थापित किया गया था।

बाजार अर्थव्यवस्था को खोलने के लिए बंद कर दिया से भारतीय अर्थव्यवस्था को बदलने के लिए बहुत बहस और चर्चा की आर्थिक सुधारों को लागू करने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए तीन प्रमुख पहल कर रहे थे। ये आम तौर पर रसोई गैस, यानी उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण के रूप में संक्षिप्त कर रहे हैं।

टूल बाक्स – 06
आर्थिक वातावरण
• आर्थिक स्थितियां • आर्थिक नीतियां • आर्थिक व्यवस्था

1.3 आर्थिक वातावरण का अर्थ

आर्थिक वातावरण का अभिप्राय उन आर्थिक तत्वों से है, जिनका व्यवसाय के कार्य संचालन पर प्रभाव पडता है, जैसे–आर्थिक व्यवस्था, आर्थिक नीति, अर्थव्यवस्था की प्रकृति, व्यापार चक्र, आर्थिक संसाधन, आय–स्तर, और धन का वितरण इत्यादि। आर्थिक वातावरण बहुत जटिल व गतिशील है। यह निरंतर बदलता रहता है। इसके मुख्यतः तीन तत्व है। ये तत्व–आर्थिक स्थितियां, आर्थिक नीतियां व आर्थिक व्यवस्था है। ये इस प्रकार है –

1.4 आर्थिक वातावरण के तीन तत्व

---

(1) आर्थिक स्थितियां:–अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियां व्यवसाय को प्रभावित करती है। विभिन्न आर्थिक स्थितियां, जैसे– आय स्तर, आय का वितरण, मांग की प्रवृति, व्यापार चक्र इत्यादि बाजार के आकार को प्रभावित करती है। यदि अर्थव्यवस्था में तेजी की स्थिति पाई जाए तब इससे मांग बढ़ती है और व्यावसायिक इकाई के बाजार हिस्से में वृद्वि होती है। इसी तरह पतन की स्थिति में मांग में कमी आती है और व्यावसायिक इकाई का बाजार हिस्सा कम हो जाता है। आर्थिक स्थितियों में बाजार आकार, वर्तमान मूल्य स्तर, पूंजी निर्माण की दर, औद्योगिक विकास की दर को भी शामिल किया जाता है।
(2) आर्थिक नीतियां:– आर्थिक नीतियां सरकार द्वारा बनाई जाती है। इन नीतियों का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय को अपनी नीतियों का निर्माण करते समय सरकार की आर्थिक नीतियों को ध्यान में रखना पड़ता है। इन आर्थिक नीतियों में आये बदलाव का हमारे व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय पर इन नीतियों का प्रभाव अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है। ये नीतियां विभिन्न तरह के व्यवसायों पर विभिन्न तरह का प्रभाव डालती हैं। ये आर्थिक नीतियां किसी एक व्यवसाय को अनुदान तथा आयकर व उत्पादन कर में छूट दे सकती हैं, जबकि किसी अन्य व्यवसाय पर अधिक कर व शुल्क लगा सकती है। अतः बदलती हुई आर्थिक नीतियों

के साथ व्यावसायिक इकाई को अपनी नीतियों में बदलाव लाना पड़ता है। निम्न प्रमुख आर्थिक नीतियां व्यवसाय को प्रभावित करती है:

1. मौद्रिक नीति
2. राजकोषीय नीति
3. निर्यात–आयात नीति
4. विदेशी निवेश नीति
5. औद्योगिक नीति
6. औद्योगिक नीति
7. औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति

ऊपर लिखी गई नीतियों के अलावा सरकार ने बहुत से आर्थिक कानून बनाए हैं, जो व्यवसाय पर लागू होते है और व्यवसाय को नियंत्रित करते है। इसलिये इन कानूनों में होने वाले बदलाव व्यावसायिक इकाई को प्रभावित करते हैं। इसमें निम्नलिखित शामिल है:

1. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
2. कारखाना अधिनियम, 1948
3. औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951
4. कंपनी अधिनियम, 1956 तथा कंपनी अधिनियम, 2013
5. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
6. डिपोसीटरीज एक्ट, 1996
7. विदेशी विनियम प्रबंध अधिनियम, 1999
8. सिक्योरीटीज एण्ड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया गाइडलाइन्स, 2000
9. प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002
10. सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम, 2008
11. बैंकिग नियमन अधिनियम, 1949 तथा बैंकिग कानून (संशोधन) बिल, 2012

(3) आर्थिक व्यवस्थाः– विभिन्न देशों में अलग–अलग आर्थिक व्यवस्थाएं प्रचलित है। किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था और उसमें आने वाले परिवर्तन उस देश की व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करते है। इतना ही नहीं, किसी एक देश की आर्थिक व्यवस्था में बदलाव का दूसरे देशों की व्यावसायिक इकाइयों के विदेशी व्यापार पर भी प्रभाव पड़ता है। किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में से कोई हो सकती है:

(क) पूंजीवादः–इस प्रणाली में व्यवसाय के निजी स्वामित्व पर अधिक बल दिया जाता है। इसमें आर्थिक क्रियाओं में अधिकतर भूमिका निजी क्षेत्र की ही होती है। इसे खुली अर्थव्यवस्था भी कहते है: जैसे–अमेरिका व इग्लैंड की अर्थव्यवस्था।

(ख) समाजवादः– इस अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाएं सरकार द्वारा संचालित की जाती है। सरकार ही आर्थिक विकास में मुख्य भूमिका निभाती है।

(ग) मिश्रित अर्थव्यवस्थाः– इस प्रणाली में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनों का सह अस्तित्व होता है। इसमें पूंजीवाद व समाजवाद दोनों का प्रभाव होता है।

(4) अन्य आर्थिक तत्वः– आर्थिक वातावरण में अद्योसंरचना सुविधाओं, जैसे– सड़कें, रेलवे, अन्य यातायात सुविधाएं, ऊर्जा, संचार आदि को भी शामिल किया जाता है। इसमें बैंकों, बीमा कंपनियों, मुद्रा बाजार, पूंजी बाजार आदि को शामिल किए जाते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	आर्थिक वातावरण के तत्वों से क्या अभिप्राय है?
प्र.6	आर्थिक नीतियां कौन–2 सी हो सकती है?
प्र.7	पूंजीवाद का अर्थ बताएं?

टूल बाक्स – 07
आर्थिक नीतियों का महत्व
● कीमतों पर नियंत्रण ● रोज़गार के अवसर ● आर्थिक संकेद्रण को कम करना ● नियोजन विकास को प्रोत्साहन ● सामाजिक कल्याण ● उत्पादन में वृद्धि ● विदेशी निजी विनियोजनाओं में वृद्धि ● निर्यात में वृद्धि

आर्थिक नीति का महत्व

आर्थिक नीति के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैः

(क) कीमतों पर नियंत्रणः–आर्थिक नीति के द्वारा देश में बढ़ी कीमतों पर नियंत्रण किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि इसके अंतर्गत केंद्रीय एवं राज्य सरकार द्वारा यह ध्यान रखा जाता है कि अपने संसाधनों एवं कार्यक्रमों का कुशल संचालन एवं प्रबंध किया जाए। परिणामस्वरूप इससे न केवल लोगों को राहत मिलेगी, बल्कि हमारी नीति की उपयोगिता को समझने में भी सहायता मिल सकेगी। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ बनाकर उसका विस्तार करके एवं कुशल प्रबंध के द्वारा कीमतों पर नियंत्रण किया जाता है।

(ख) रोज़गार के अधिक अवसर उपलब्ध करनाः–आर्थिक नीति का महत्व रोज़गार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए भी है। कदम उठाना, इस दिशा में अपरिहार्य हो गया है।

(ग) आर्थिक संकेंद्रण को कम करनाः–समुचित आर्थिक नीतियां बनाने से देश में बड़े औद्योगिक घरानों की संपदा, आर्थिक शक्ति और आर्थिक संकेंद्रण को कम किया जा सकता है।

(घ) तीव्र आर्थिक विकासः–आर्थिक नीतियों के माध्यम से देश में तीव्र आर्थिक विकास होता है, क्योंकि इसके अंतर्गत देश में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर अर्थतंत्र को घोषित दिशा दी जाती है। साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकताओं का निर्धारण कर अधिक महत्वपूर्ण परियोजनाओं को पहले पूरा किया जाता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक नीति के आधार पर विकास के आधारभूत ढांचे का सुदृढ़ भी किया जाता है ताकि देश के भावी विकास का मार्ग प्रशस्त हो।

(ङ) नियोजित विकास को प्रोत्साहनः–विकासशील देशों ने तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन को अपनाया है। आर्थिक नीति से नियोजित विकास को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि इसमें बनाई गई योजनाओं के अनुसार नीतियों में परिवर्तन किया जाता है, उन्हें सरल बनाया जाता है और कमियों को दूर किया जाता है।

(च) नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याणः–आर्थिक नीतियां बनाने से देश के नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याण होता है। इसका कारण यह है कि देश में ऐसी नीतियां बनाई जाती है जिससे आय एवं संपत्तित का गरीब व्यक्तियों के पक्ष में वितरण हो। इसके अतिरिक्त आर्थिक साधनों का इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो।

(छ) उत्पादन में वृद्धिः–आर्थिक नीति से उत्पादन में भी वृद्धि होती है, क्योंकिः–

- कृषि नीति ऐसी बनाई जाती है कि किसानों को उनकी उपज की उचित कीमत मिले और वे अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित हों।
- औद्योगिक नीति इस प्रकार बनाई जाती है कि देश में तेजी से औद्योगिक विकास हो, उत्पादन बढ़े और जनता का उपयोग की वस्तुओं उपलब्ध हों। इसके साथ ही आधारभूत उद्योगों का विकास भी हो।
- वाणिज्य नीति भी इस प्रकार बनाई जाती है जिससे निर्यात बढ़े और आयात को सीमित करने मे मदद मिले।
- राजकोषिय नीति ऐसी होती है, जिससे उत्पादन विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होता है।

(ज) **विदेशी निजी विनियोजनों में वृद्धिः**—समुचित आर्थिक नीतियों के माध्यम से विदेशी निजी विनियोजनों में वृद्धि की जा सकती है।

(झ) **निर्यात में वृद्धिः**—आर्थिक नीतियों से देश के निर्यातों में वृद्धि होती है, क्योंकि इससे भुगतान असंतुलन का सामना किया जा सकता है।

आर्थिक नीति की विशेषताएं

आर्थिक नीति में निम्नलिखित विशेषताएं है —

(क) **आर्थिक दर्शनः** आर्थिक नीति किसी सरकार का एक आर्थिक दर्शन या विस्तृत विचारधारा है, जिसके माध्यम से वह अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास करती है।

(ख) **मार्गदर्शक सूत्रः**—आर्थिक नीतियां, आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में अपनाये जाने वाली कार्यविधि या मार्गदर्शक सूत्र है। अर्थात् आर्थिक नीति में सरकार की उन सभी आर्थिक क्रियाओं एवं क्रियाकलापों सहनियमन को सम्मिलित किया जाता है जिनका संबंध उत्पादन, आय एवं संपत्तित का वितरण तथा उपयोग, संसाधनों का प्रयोग, विनियोग तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि आदि में जानबूझकर अथवा अधिक सरकारी हस्तक्षेप से होता है।

(ग) **व्यापक शब्दः**—आर्थिक नीति एक व्यापक शब्द है, क्योंकि इसमें विभिन्न नीतियां सम्मिलित की जाती है, जैसे—कृषि नीति, औद्योगिक नीति, वाणिज्यिक नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, नियोजन नीति, आय नीति, रोज़गार नीति, परिवहन नीति एवं जनसंख्या नीति आदि।

(घ) **विभिन्न नीतियों में समन्वयः**—देश की विभिन्न नीतियों में समन्वय स्थापित कर निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को पूरा करने का कदम उठाया जाता है। यही नहीं, आर्थिक नीति में विभिन्न विरोधी लक्ष्यों के मध्य भी समन्वय स्थापित किया जाता है।

(ङ) **आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के एक साधन के रूप मेंः**—आर्थिक नीतियों को राज्य द्वारा अपने आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(च) **शासन तंत्र का मार्गदर्शनः**—आर्थिक नियोजन में सरकार उद्देश्य निर्धारित करती है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए आर्थिक नीतियां बनाती है। आर्थिक नीतियां प्रशासन तंत्र का मार्गदर्शन करती है परिणामस्वरूप आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

(छ) **विशिष्ट उद्देश्य एवं निश्चित कार्यक्रम में संबंधः**—आर्थिक नीति में सरकार विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ निश्चित कार्यक्रम अपना सकती है।

(ज) **क्रियाओं को प्रोत्साहित एवं नियंत्रित करनाः**—जब सरकार उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निश्चित कार्यक्रम तैयार करती है तो कुछ क्रियाओं को प्रोत्साहित करती है तो कुछ को नियमित एवं नियंत्रित भी करती है।

(झ) **सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों से प्रभावितः**—आर्थिक नीतियां सामान्य रूप से सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों से प्रभावित होती है। हमारा उद्देश्य जनता का जीवन स्तर ऊंचा करना, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, देश में शांति बनाए रखना एवं राजनीतिक स्थिरता हो तो आर्थिक नीति का इनके अनुकूल होना आवश्यक है।

आर्थिक नीति के उद्देश्य

आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य देश में आर्थिक विकास की दर में वृद्धि करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आर्थिक नीति के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैः

- आर्थिक विकास एवं दर में वृद्धि करना
- नियोजित विकास एवं प्रक्रिया पर बल देना
- देश में आर्थिक संकेंद्रण को कम करना
- आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं पिछड़े लोगों की प्रगति पर ध्यान देना
- देश के औद्योगिक विकास की गति को तेज करना।
- व्यापार संवर्द्धन की संभावनाओं का अवलोकन करते हुए निर्यात में अभिवृद्धि करना।
- तेजी से कृषि विकास करना
- पूर्ण रोज़गार की स्थिति प्राप्त करना।
- देश में आर्थिक स्थिरता बनाए रखना।
- देश के नागरिकों को अधिकतम सामाजिक कल्याण करना
- देश के नागरिकों को वैद्य कार्य करने की छूट देना।
- विदोहन को अनुकूल करना।
- आधारभूत सुविधाओं का विकास।
- विनिमय दर में स्थायित्वता लाना।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.8	आर्थिक नीतियों से क्या तात्पर्य है?
प्र.9	आर्थिक नीतियों क्यों बनाई जाती है?
प्र.10	वैश्वीकरण व निजीकरण से क्या अभिप्राय है?

1.5 आर्थिक नीति के उपकरण

आर्थिक नीति, बहु–आयामी नीति है, क्योंकि आर्थिक नीति के अनुरूप ही देश की अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की नीति तैयार की जाती है। यदि विभिन्न नीतियां आर्थिक नीति के अनुरूप नहीं बनाई जाती है तो आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में कठिनाई आएगी। आर्थिक नीति एक व्यापक नीति है और इसमें अनेक नीतियों का समावेश किया जाता है। इसलिए भी आर्थिक नीति एक बहु–आयामी नीति है।

विभिन्न आर्थिक नीतियों के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए कुछ उपकरणों की आवश्यकता होती है। आर्थिक नीति के संदर्भ में जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है वे निम्नलिखित हैं–

टूल बाक्स – 08
आर्थिक नीति के उपकरण
• राजकोषीय उपकरण • मौद्रिक उपकरण

राजकोषीय उपकरण

आर्थिक नीति के राजकोषीय उपकरण के अंतर्गत सरकार द्वारा वित एकत्रित करने एवं उसको व्यय करने से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण में वृद्धि हेतु सरकार को नवीन सुविधाओं के विकास एवं विस्तार के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी पूर्ति निम्न साधनों से की जाती है।

(क) **करारोपणः**—कर राजकीय आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। करारोपण का उद्देश्य आय प्राप्त करना एवं वितरण व्यवस्था को न्यायोचित बनाना होता है।

(ख) **सार्वजनिक ऋणः**—सार्वजनिक ऋण का आशय सरकार द्वारा प्राप्त किया जाने वाले सरकारी ऋण से है।

(ग) **हीनार्थ प्रबंधनः**—हीनार्थ प्रबंधन अथवा घाटे की वित व्यवस्था का राष्ट्र के वितीय साधनों में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

मौद्रिक उपकरण

मौद्रिक उपकरणों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में मुद्रा व साख की मात्रा को नियंत्रित करने के उद्देश्य से किया जाता है।

आर्थिक नीति के संचालन एवं सफलता के लिए जिन प्रमुख मौद्रिक उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है वे निम्नलिखित हैः

(क) **साख नियंत्रणः**—इसका आशय साख की मात्रा को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप समायोजित करना है।

(ख) **ब्याज दरः**—विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की सफलता के लिए बैंक विभिन्न प्रकार के निक्षेपों तथा ऋणों के लिए भिन्न—भिन्न ब्याज की दरों को निर्धारित करती है, जिसका उद्देश्य जमाओं अथवा ऋणों को प्रोत्साहित या निरूत्साहित करना होता है।

(ग) **विनिमय दरः**—मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर में स्थिरता बनाए रखना है।

(घ) **बैंकिग विकासः**—आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन में बैंक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुए है।

(ङ) **बचतों को प्रोत्साहनः**—बैंकिग विकास की उपयुक्त नीति अपना कर समाज की अतिरिक्त आय को बचत के रूप में बैंकों मे जमा कर आर्थिक नीति के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप धन की प्राप्ति की जा सकती है।

मौद्रिक नीति

जिस नीति के अनुसार किसी देश का मुद्रा प्राधिकारी मुद्रा की आपूर्ति का नियमन करता है उसे मौद्रिक नीति कहते हैं। इसका उद्देश्य राज्य का आर्थिक विकास एवं आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित करना होता है। मौद्रिक नीति के रूप में या तो एक विस्तारवादी नीति और अधिक तेजी से सामान्य से अर्थव्यवस्था में पैसे की कुल आपूर्ति बढ़ जाती है और संकुचनकारी नीति सामान्य से अधिक धीरे—धीरे पैसे की आपूर्ति बढ़ती है या यह भी सिकुडती जहां विस्तार या संकुचनकारी होने के लिए जाना जाता है। विस्तारवादी नीति को पारंपरिक रूप से आसान ऋण विस्तार में व्यवसायों को लुभाने जाएगा कि उम्मीद में ब्याज दरों को कम करके एक मंदी के दौर में बेरोज़गारी से निपटने के निए प्रयास करने के लिए प्रयोग किया जाता है। संकुचनकारी नीति परिणामस्वरूप विकृतियों और परिसंपत्तित मूल्यों की गिरावट से बचने के लिए मुद्रास्फीति को धीमा करने का इरादा है।

टूल बाक्स — 09
मुख्य आर्थिक नीतियां
• मौद्रिक नीति

- राजकोषीय नीति
- आयात–निर्यात नीति
- औद्योगिक विकास नीति

राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति सरकार की कराधान और व्यय के संदर्भ में किए जाने वाले निर्णयों से संबंधित है इसमें विभिन्न भाग सम्मिलित होते हैं। इसके अंतर्गत सरकार की व्यय नीति, कर नीति विनिवेश या निवेश रणनीति और अधिशेष या ऋण प्रबंधन से जुड़े मुद्दे शामिल होते हैं। राजकोषीय नीति भी राष्ट्र के समग्र आर्थिक ढांचे का एक महत्वपूर्ण घटक होता है और इस प्रकार सरकार के द्वारा आर्थिक नीति और रणनीति के संदर्भ में किए जाने वाले सभी कार्यों से संबधित होता है।

राजकोषीय नीति के उपकरण

राजकोषीय नीति का मुख्य साधन कराधान संरचना और सरकारी के विविध विभागों में किए जाने वाले खर्च के स्तर से जुड़ा होता है। ये संशोधन एक अर्थव्यवस्था में उसके निम्न चरणों पर असर डाल सकता है।

- कुल मांग और आर्थिक गतिविधि का स्तर
- अर्थव्यवस्था में निवेश और बचत
- आय का वितरण।

भारत में राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य

1. **संसाधन की गतिशीलता के माध्यम से विकास**

   वितीय संसाधनों को निम्नलिखित माध्यमों से जुटाया जा सकता है:

   - कराधान
   - लोक बचत
   - निजी बचत

2. **वितीय संसाधनों का कुशल आवंटन**
3. **आय और धन की असमानताओं में न्यूनीकरण**
4. **मूल्य स्थिरता और मुद्रास्फीति पर नियंत्रण**
5. **रोज़गार सृजन**
6. **संतुलित क्षेत्रीय विकास।**
7. **भुगतान संतुलन मे घाटे को कम करना।**
8. **पूंजी निर्माण**
9. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि।**
10. **संसाधनों का विकास।**
11. **विदेशी मुद्रा की आय।**

निर्यात आयात नीति सरकार की आयात निर्यात नीति है जिसकी घोषणा प्रत्येक पांच वर्षों में की जाती है। यह नीति विदेश व्यापार नीति के रूप में भी जानी जाती है। इन नीति में निर्यात और आयात, संवर्धनात्मक उपायों, शुल्क छूट योजनाओं, निर्यात संवर्धन योजनाओं विशेष आर्थिक क्षेत्र कार्यक्रमों और विभिन्न क्षेत्रो के लिए अन्य ब्यौरों के संबंध में सामान्य प्रावधान शामिल होते हैं। प्रत्येक वर्ष सरकार इस नीति के पूरक की घोषणा करती है।

सारांश

आर्थिक वातावरण से तात्पर्य किसी देश में उपस्थित उन आर्थिक तत्वों से है, जिनसे उस देश की अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है। उन्हीं आधार पर अर्थव्यवस्था विकसित होती है। भारत 1991 के पश्चात विश्व में एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में प्रगति बहुत तेज़ न होकर, अच्छे आर्थिक सुधार की दे रही है। आर्थिक वातावरण में मुख्यत तीन तत्व आर्थिक स्थितियां, नीतियां व व्यवस्था शामिल होते हैं। 1999 से भारत में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई है, जब से उदारीकरण और आर्थिक सुधार की नीति लागू की गई है और भारत विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। सुधारों से पूर्व मुख्य रूप से भारतीय उद्योगों और व्यापार पर सरकारी नियंत्रण का बोलबाला था और सुधार लागू करने से पूर्व इसका जोरदार विरोध भी हुआ, परंतु आर्थिक सुधारों के अच्छे परिणाम सामने आने से विरोध काफी हद तक कम हुआ है। हालांकि मूलभूत ढांचे में तेज प्रगति न होने से एक बड़ा तबका अब भी नाखुश है और एक बड़ा हिस्सा इन सुधारों से अभी भी लाभान्वित नहीं हुए हैं। आर्थिक वातावरण से अभिप्राय उन आर्थिक तत्वों से है, जो व्यवसाय के संचालन को प्रभावित करते है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 आर्थिक वातावरण से क्या अभिप्राय है?
प्र.2 निजीकरण से आपका क्या अभिप्राय है?
प्र.3 सन 1991 से पूर्व भारतीय आर्थिक वातावरण की विशेषताएं?
प्र.4 सन 1991 के पश्चात् भारतीय आर्थिक वातावरण में क्या बदलाव हुए?
प्र.5 वैश्वीकरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.6 उदारीकरण की विशेषताएं बताएं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.7 आर्थिक वातावरण व उसके तत्वों का वर्णन करें।
प्र.8 भारतीय आर्थिक वातावरण में अब तक हुए बदलावों का विवेचना करें।
प्र.9 आर्थिक नीतियों का महत्व व विशेषताएं बताएं।
प्र.10 आर्थिक नीतियों का अर्थ व उपकरणों का वर्णन करें।
प्र.11 विभिन्न आर्थिक नीतियों का वर्णन करें।

खंड –1
इकाई–2 आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
2.0 प्रस्तावना
2.1 आर्थिक वातावरण
2.2 आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- आर्थिक वातावरण का अर्थ
- आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक या तत्व
- मौद्रिक व राजकोषिय नीति
- मुद्रा प्रसार या मुद्रा स्फीति
- मिश्रित, समाजवादी व पूंजीवादी प्रणाली
- विकसित , विकासशील व अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
- क्रय शक्ति क्षमता
- सीमा शुल्क
- उत्पाद शुल्क
- विदेशी मुद्रा व्यापार
- पूंजी बाजार
- आयात–निर्यात व्यापार का विकासाारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का महत्व

2.0 प्रस्तावना

आर्थिक वातावरण का क्षेत्र बहुत विशाल है। किसी भी देश के आर्थिक वातावरण को बहुत से घटक प्रभावित करते हैं। इन तत्वों पर अर्थव्यवस्था का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है। 1991 के बाद देश को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकास की गति तीव्र करने के लिए कई उपाय व नीतियां बनाई गई।

2.1 आर्थिक वातावरण

आर्थिक वातावरण में सकल घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय स्तर पर आय स्तर और प्रति व्यक्ति आय स्तर, लाभ कमाई दर, उत्पादकता और रोज़गार की दर, औद्योगिक, मौद्रिक और राजकोषीय नीति सरकार आदि शामिल होते हैं। आर्थिक वातावरण कारकों का व्यवसाय पर तत्काल और प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है इसलिए व्यवसायक को आर्थिक वातावरण का स्कैन करना चाहिए और इन परिवेशों के साथ सौदा करने के लिए समय पर कार्यवाही लेनी चाहिए। आर्थिक वातावरण

व्यापारी के लिए बाधाएं भी डाल सकता है और अवसर भी प्रदान कर सकता है। 1991 की नई आर्थिक नीति के बाद, व्यवसायियों के लिए बहुत सारे अवसरों की पेशकश हुई है। आम कारक जो भारत के आर्थिक वातावरण को प्रभावित करते हैं। वे इस प्रकार हैः

- देश के आर्थिक और राजकोषीय नीति
- मुद्रा प्रसार, मुद्रा स्फीति
- मिश्रित आर्थिक प्रणाली
- पूंजीवादी प्रणाली
- विकासशील, विकसित, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
- जनता की आय, क्रय शक्ति समता
- सीमा शुल्क
- उत्पाद शुल्क
- विदेशी मुद्रा व्यापार
- पूंजी बाजार
- आयात—निर्यात व्यापार का विकास

टूल बाक्स — 01
आर्थिक वातावरण
आर्थिक वातावरण से अभिप्राय उन सब तत्वों से हैं जो एक देश के मौद्रिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

2.2 आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक या तत्व

देश की आर्थिक और राजकोषीय नीति

मौद्रिक नीति —जिस नीति के अनुसार किसी देश का मुद्रा प्राधिकारी मुद्रा की आपूर्ति का नियमन करता है उसे मौद्रिक नीति कहते हैं। इसका उद्देश्य राज्य की आर्थिक विकास एवं आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित करना होता है।

राजकोषीय नीति —सरकार के राजस्व संग्रह तथा व्यय के समुचित नियमन द्वारा अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा देना राजकोषीय नीति कहलाता है। अतः राजकोषीय नीति के दो मुख्य औजार है—कर स्तर एवं ढांचे में परिवर्तन तथा विभिन्न मदों मे सरकार द्वारा व्यय में परिवर्तन।

टूल बाक्स — 01
मौद्रिक व राजकोषी नीति
मौद्रिक नीति मुद्रा की आपूर्ति से संबंधित है जबकि राजकोषीय नीति राजस्व व व्यय के नियमन से संबंधित है।

मुद्रा प्रसार

मुद्रा स्फीति वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का आंतरिक मूल्य गिरता है और वस्तुओं के मूल्य बढते है। यानी मुद्रा तथा साख की पूर्ति और उसका प्रसार अधिक हो जाता है। इसे मुद्रा प्रसार या मुद्रा का फैलाव भी कहा जाता है।

मुद्रा स्फीति को मुद्रा प्रसार भी कहा जाता है। सामान्यतः मुद्रा प्रसार से आशय सरकार अथवा बैंक द्वारा आवश्यकता से अधिक मात्रा में नोट निर्गमन करने से होता है जिससे मुद्रा की इकाई का मूल्य गिर जाता तथा सामान्य मूल्य स्तर ऊंचा उठ जाता है। इस प्रकार मुद्रा प्रसार की

स्थिति में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है, जबकि वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा उसकी तुलना में कम रहती है। इससे सामान्य मूल्य स्तर बढ़ जाता है। इसे मुद्रास्फीति कहा जाता है।
सामान्यतः मुद्रा के मूल्य मे कमी तथा सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि को मुद्रास्फीति मान लिया जाता है, परंतु कीमत स्तर मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि को मुद्रास्फीति कहना उचित नहीं है। मूल्यों में वृद्धि मुद्रास्फीति की एक आवश्यक दशा है, परंतु मूल्यों में प्रत्येक वृद्धि को मुद्रास्फीति नहीं मानना चाहिए।
सामान्यतः मुद्रास्फीति के बढ़ने के कारणों को दो भागों (1) मौद्रिक आय मे वृद्धि तथा (2) उत्पादन में कमी, में वर्गीकृत किया जाता है।
मौद्रिक आय में वृद्धि होने पर मुद्रास्फीति का उत्पन्न होना स्वभाविक है मौद्रिक आय मे वृद्धि सरकार की मौद्रिक नीति, घाटे की अर्थव्यवस्था, गैर विकासात्मक व्ययों मे वृद्धि मुद्रा के चालान वेग में वृद्धि, व्यापारिक बैंकों की साख नीति में परिवर्तन, करों में छूट, ऋण वसूली में ढील एवं पूराने ऋणों के भुगतान, विदेशी पूंजी का आयत तथा वित्तीय अव्यवस्था आदि के कारण होती है।
मुद्रास्फीति के उत्पन्न होने का दूसरा कारण उत्पादन में कमी है। उत्पादन में कमी के प्रमुख कारण है–जनसंख्या में वृद्धि, उत्पति ह्रास नियम की क्रियाशीलता, प्राकृतिक संकट, औद्योगिक अशांति, तकनीकी परिवर्तन, सरकार की कर नीति, सरकार की व्यापार नीति, सरकार की औद्योगिक नीति, संग्रह की प्रवृत्ति, कच्चे माल का आभाव तथा उत्पादन ढांचा।

टूल बाक्स – 03
मुद्रा स्फीति के कारण
• मौद्रिक आय में वृद्धि • उत्पादन मे कमी

भारत में मुद्रास्फीति की गणना

भारत में मुद्रास्फीति की गणना थोक मूल्य सूचकांक के आधार कर की जाती है। थोक मूल्य सूचकांक में परिवर्तन की दर मुद्रास्फीति कहलाती है। भारत में थोक मूल्य सूचकांक के आधार पर मुद्रास्फीति औसत विधि तथा बिंदु दर बिंदु विधि से ज्ञात की जाती है।
औसत विधि के अंतर्गत 52 सप्ताह के मूल्स सूचकांक परिवर्तन की दर का औसत ज्ञात किया जाता है।
औसत विधि के अंतर्गत मुद्रास्फीति की गणना करते समय चालू वर्ष के कीमत सूचकांक में परिवर्तन की तुलना पिछले वर्ष में कीमत सूचकांक में हुए परिवर्तन से न करके आधार वर्ष में हुए परिवर्तन से की जाती है, जबकि वास्तव में मूल्य स्तर में परिवर्तन की तुलना पिछले वर्ष के मूल्य स्तर की जानी चाहिए। इसी दोष को दूर करने के लिए बिंदु दर बिंदु विधि का प्रयोग किया जाता है।
भारत में औसत विधि और बिंदु दर बिंदु विधि दोनों के द्वारा मुद्रास्फीति की गणना की जाती है परंतु बिंदु दर बिंदु विधि को आर्थिक संकेतक या वास्तविक विधि के रूप में स्वीकार किया गया है।

मुद्रास्फीति के प्रभाव

मुद्रास्फीति की प्रारंभिक अवस्था में उद्योग, व्यापार, रोज़गार एवं आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। किंतु मुद्रास्फीति एक बार प्रारंभ होने के बाद रूकने का नाम नहीं लेती। मुद्रास्फीति के बढ़ने के साथ–साथ उसके हानिकारक प्रभाव भी दृष्टिगत होने लगते हैं और यह जब व्यापक रूप धारण कर लेती है तो संपूर्ण अर्थव्यवस्था को तहस–नहस कर देती है।

मुद्रा संकुचन अथवा अवस्फीति

मुद्रा संकुचन या अवस्फीति मुद्रास्फीति की विपरीत स्थिति है। मुद्रा संकुचन की स्थिति में मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होती है तथा वस्तुओं और सेवाओं के कीमत में गिरावट आती है। परंतु मुद्रा में होने वाली प्रत्येक वृद्धि तथा वस्तुओं और सेवाओं के कीमत मे आने वाली प्रत्येक गिरावट को मुद्रा संकुचन नहीं कहा जा सकता है। निम्न स्थितियों में वस्तुओं और सेवाओं के कीमत में होने वाली कमी मुद्रा संकुचन कहलाती है।

टूल बाक्स – 04
मुद्रा अवस्फीति–मुद्रा के मूल्य में वृद्धि व वस्तुओं की कीमतों में गिरावट होती है।

मुद्रा संकुचन का कारण

मुद्रा संकुचन का कारण मौद्रिक आय एवं उत्पादन मात्रा में असंतुलन उत्पन्न होना है। जब मौद्रिक आय उत्पादन की मात्रा से कम होती है तथा इसके कारण मूल्य नीचे गिरने लगता है तो इसे मुद्रा संकुचन की संज्ञा दी जाती है।

मुद्रा संकुचन के प्रमुख कारण मुद्रा की मात्रा में कमी, साख नियंत्रण, करो एवं सार्वजनिक ऋणों में वृद्धि, वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि सरकारी व्ययों में कमी तथा अत्यधिक बचत है।

मुद्रा संकुचन का प्रभाव मुद्रास्फीति के विपरीत होता है तथा सरकार इसकों कम करने के लिए मूल्यों का सामान्य स्तर पर लाने के लिए मुद्रा एवं साख की मात्रा कम करती है तो उसे मुद्रा अवस्फीति कहा जाता है।

मुद्रासंस्फीति

जब अत्यधिक मुद्रा संकुचन के कारण मूल्यों में अत्यधिक कमी हो जाती है। उद्योगपतियों के लाभ समाप्त हो जाते हैं, उद्योग व्यापार बंद हो जाते हैं। बेरोज़गारी फैल जाती है। बैंकिग एवं बीमा व्यवसाय समाप्त हो जाते है। अर्थात अर्थव्यवस्था भयंकर मंदी में फंस जाती है, तब अर्थव्यवस्था को इन दुष्परिणामों से मुक्त करवाने के लिए मुद्रास्फीति को धीरे–धीरे बढ़ावा देने की नीति अपनाई जाती है। इसके अंतर्गत मुद्रा तथा साख की मात्रा बढ़ाई जाती है। इस प्रकार जब मुद्रा संकुचन के दुष्परिणामों से बचने के लिए जानबूझकर मुद्रास्फीति की नीति अपनाई जाती है तो इसे मुद्रास्फीति कहा जाता है।

अतः मुद्रास्फीति कृत्रिम होती है। यह आर्थिक मंदी को दूर कर रोज़गार, उद्योग, व्यापार, बैंकिग एवं बीमा व्यवसाय आदि को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पाई जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	आर्थिक वातावरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.2	राजकोषीय नीति की क्या आवश्यकता है ?
प्र.3	मुद्रास्फीति किन कारणों से उत्पन्न होता है?
प्र.4	मुद्रा संकुचन के कोई दो कारण बताएं?
प्र.5	मौद्रिक नीति क्या है?

मुद्रा अपस्फीति

मुद्रास्फीति के दुष्परिणामों को दूर करने के उद्देश्य से जानबूझकर मुद्रा की मात्रा कम की जाती है तो उसे मुद्रा अपस्फीति की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार मुद्रा संस्फीति का उद्देश्य मुद्रा संकुचन के हानिकारक प्रभावों को समाप्त करके अर्थव्यवस्था में संतुलन स्थापित करना है। उसी प्रकार मुद्रा अपस्फीति का उद्देश्य मुद्रा प्रसार के हानिकारक प्रभावों को समाप्त करना है।

मुद्रास्फीति और आर्थिक विकास

मुद्रास्फीति के लिए आर्थिक विकास टॉनिक का कार्य करती है। मुद्रा स्फीति के कारण उद्योगपतियों व व्यापारियों के लाभ में वृद्धि होती है। लाभ में वृद्धि होने से उक्त वर्ग नए उद्योग धंधे लगाने अथवा विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। नए उद्योग धंधों की स्थापना से

रोज़गार के अवसरों में वृद्धि होती है। इन सबके परिणाम स्वरूप आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति की प्रारम्भिक अवस्था में जब मुद्रा स्फीति की दर निम्न रहती है आर्थिक विकास की प्रक्रिया त्वरित होती है। लाभों में वृद्धि के कारण विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है तथा निवेश पूंजी भी आकर्षित होती है, परंतु अनियंत्रित मुद्रास्फीति से आर्थिक विकास की गति मंद हो जाती है।

मिश्रिम अर्थव्यवस्था

एक मिश्रिम अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो अलग–अलग मार्केट एवं आर्थिक योजनाओं का मिश्रण हैं, जिसमें निजी क्षेत्र और राज्य अर्थव्यवस्था का निर्देशन करते है, या फिर एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक स्वामित्व तथा निजी स्वामित्व का मिश्रण हो या जिसमें आर्थिक हस्तक्षेपवाद का मिश्रण मुक्त मार्केटों के सहित हो अधिकांश मिश्रित मार्केट अर्थव्यवस्था है जो प्रबल विनियामक निरीक्षण एवं सार्वजनिक वस्तुओं का सरकारी प्रावधान के आधार पर चलते हैं। सामान्य तौर पर मिश्रित अर्थव्यवस्था उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की विशेषता है, आर्थिक समन्वय के लिए मार्केटों का प्रभुत्व, लाभ प्राप्ति करने वाले उद्यम एवं पूंजी का संचय आर्थिक गतिविधियों के सबसे महत्वपूर्ण संचालक शक्ति हैं। लेकिन एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के विपरीत, सरकार समाज कल्याण को बढ़ावा देने की हस्तक्षेप करने में एक भूमिका निभा रहा है के साथ साथ आर्थिक विवशता और वित्तीय संकट और बेरोज़गारी की ओर पूंजीवाद की प्रवृत्ति प्रतिक्रिया करने के लिए, डिजाइन किया गया राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर अप्रत्यक्ष व्यापक आर्थिक प्रभाव भी कर रहा है।

आर्थिक प्रणालियां

टूल बाक्स – 05
आर्थिक प्रणालियां
• समाजवादी प्रणाली • पूंजीवादी प्रणाली • मिश्रित आर्थिक प्रणाली

समाजवादी अर्थव्यवस्था

खुली अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था का एक दर्शन है। खुली अर्थव्यवस्था को अगर उसके शाब्दिक अर्थ से समझें तो इसका मतलब होता है एक ऐसा देश या समाज जहां किसी को किसी से भी व्यापार करने की छुट होती है। ऐसा नहीं कि इस व्यापार पर कोई सरकारी अंकुश या नियंत्रण नहीं होता। पर सरकार ऐसी नीतियां बनाती है जिससे आम लोग उद्योग और अन्य प्रकार के व्यापार आसानी से शुरू कर सकें। ऐसी अर्थव्यवस्था में व्यापारों को स्वतंत्र रूप से फलने–फूलने दिया जाता है। सरकारी नियंत्रण ऐसे बनाए जाते हैं, जिनमें व्यापारों को किसी भी प्रकार की बेईमानी से जो रोका जाता है पर नियंत्रण को इतना भी कडा नहीं किया जाता है कि ईमानदार व्यापार में असुविधा हो। खुली अर्थव्यवस्था न केवल उस समाज या देश के अंदरूनी व्यापार के लिए होती है, बल्कि बाहरी व्यापार को भी उसी दृष्टि से देखा जाता है।

पूंजीवादी प्रणाली

पूंजीवादी सामन्यतः उस आर्थिक प्रणाली या तंत्र को कहते हैं, जिसमें उत्पादन के साधन पर निजी स्वामित्व होता है। इसे कभी–कभी व्यक्तिगत स्वामित्व के पर्यायवाची के तौर पर भी प्रयुक्त किया जाता है। यद्यपि जहां व्यक्तिगत का अर्थ किसी एक व्यक्ति से भी हो सकता है। दूसरे रूप में ये कहा जा सकता है कि पूंजीवादी तंत्र लाभ के लिए चलाया जाता है, जिसमें निवेश, वितरण, आय उत्पादन मूल्य, बाजार मूल्य इत्यादि का निर्धारण मुक्त बाजार में प्रतिस्पर्धा द्वारा

निर्धारित होता है। पूंजीवाद एक आर्थिक पद्धति है जिसमें पूंजी के निजी स्वामित्व, उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत नियंत्रण, स्वतंत्र औद्योगिक प्रतियोगिता और उपभोक्ता द्रव्यों के अनियंत्रित वितरण की व्यवस्था होती है। पूंजीवाद की कभी कोई निश्चित परिभाषा स्थिर नहीं हुई, देश, काल और नैतिक मूल्यों के अनुसार इसके भिन्न–भिन्न रूप बनते रहे है।

विकासशील, विकसित, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है

(1) अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाः–जब किसी देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय कम होती है तथा बड़े पैमाने में गरीबी, कुपोषण, बेरोज़गारी तथा अशिक्षा पाई जाती है तो उसे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था कहते हैं। यहां के लोगों का जीवन स्तर निम्न होता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.6	किसी भी देश में कौन–सी आर्थिक प्रणालियां हो सकती है?
प्र.7	पूंजीवादी प्रणाली से क्या तात्पर्य है?
प्र.8	तीन प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं बताएं?
प्र.9	मिश्रित अर्थव्यवस्था से क्या अभिप्राय है?
प्र.10	समाजवादी अर्थव्यवस्था क्या है?

(2) विकासशील अर्थव्यवस्थाः–जब किसी देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय कम होती है, परंतु आर्थिक विकास के कारण विकास की ओर बढ़ती है तो इसे विकासशील अर्थव्यवस्था कहते है। यहां निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है।

(3) विकसित अर्थव्यवस्थाः–जिस देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय उच्च होती है जीवन स्तर ऊंचा होता है सकल घरेलू उत्पाद में तृतीयक क्षेत्र का योगदान अधिक होता है गरीबी, बेरोज़गारी, अशिक्षा नहीं पाई जाती है तथा देश में नगरीकरण व देश में आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होता है जन्म व मृत्यु दर कम होती है उस देश की अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था कहते हैं।

टूल बाक्स – 06

अर्थव्यवस्था के प्रकार

- विकासशील अर्थव्यवस्था
- विकसित अर्थव्यवस्था
- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था

जनता की आय, क्रय शक्ति समता

क्रय शक्ति समता या पीपीपी विभिन्न देशों के बीच विनिमय दरों गणना एक आर्थिक तरीका है। यह उपलब्ध, मांग और अन्य कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। उत्पाद शुल्क सामानों के उत्पादन या विनिर्माण पर लगने वाला कर है। अल्कोहल, अल्कोहलिक सामग्री और मादक पदार्थों पर उत्पाद शुल्क की वसूली राज्य सरकार करती है और उसे राज्य उत्पाद शुल्क कहा जाता है। अन्य सामानों पर लगने वाला उत्पाद शुल्क केंद्रीय उत्पाद शुल्क कहा जाता है और उसकी वसूली केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1994 की धारा 3 के अनुसार की जाती है। बिक्रीकर उत्पाद शुल्क से इस रूप में भिन्न है कि बिक्रीकर किसी सामान की बिक्री किए जाने पर लगता है, जबकि उत्पाद शुल्क सामानों के विनिर्माण या उत्पादन करने पर लगाया जाता है।

टूल बाक्स – 07
क्रय शक्ति समता–इससे अभिप्राय जनता की क्रय शक्ति की समता से है। जनता अपनी आय के अनुसार कितनी क्रय शक्ति रखते है।

सीमा शुल्क

सीमा शुल्क एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है जो भारत में आयतित तथा भारत से निर्यातित माल पर लगाया जाता है। भारत में आयात अथवा भारत से निर्यात वाले माल पर लगाया जाता है। माल के आयात अर्थ है भारत से बाहर के किसी स्थान से माल को भारत में लाना। इसमें भारत में भारत से लगे राज्यक्षेत्रीय सागरखंड भी शामिल है जिनका विस्तार भारतीय तट से समुद्र में 12 समुद्री मील की दूरी तक है। माल के निर्यात का अर्थ है माल को भारत से बाहर किसी स्थान पर ले जाना।

टूल बाक्स – 08
सीमा शुल्क के प्रकार
1. मूलभूत शुल्क 2. अतिरिक्त मूलभूत शुल्क 3. अतिरिक्त सीमा शुल्क 4. रक्षोपय शुल्क 5. शिक्षा उप कर

1. **मूलभूत शुल्कः**–यह मानक दर पर हो सकता है या फिर कुछ अन्य देशों से अधिमानी पर हो सकता है।
2. **अतिरिक्त सीमा शुल्कः**–वैसा ही समान भारत में उत्पादित या विनिर्मित होने पर लगने वाले केंद्रीय उत्पाद शुल्क के समान। अतिरिक्त शुल्क को सामान्यतः सीबीडी कहा जाता है। यह तभी देय होता है जब आयतित वस्तु इस प्रकार की हो कि यदि यह भारत में उत्पादित होती तो उत्पादन की प्रक्रिया केंद्रीय सीमा शुल्क अधिनियम, 1944 के तहत विनिर्माण मानी जाती।
3. **टू काउंटरवेलिंग डयूटी अथवा अतिरिक्त सीमा शुल्कः**–यह समान भारतीय माल को, उनकी निविष्टियों पर ऊंचे उत्पाद शुल्क की वजह से होनी वाली हानि को समायोजित करने के लिए लगाया जाता है। यह इसलिए लगाया जाता है, ताकि स्वदेशी माल, जिस पर विभिन्न आंतरिक करों का बोझ रहता है को बराबरी का मौका मिल सके।
4. **डंपिग रोधी शुल्क/रक्षोपय शुल्कः**–विनिर्दिष्ट माल के आयात के लिए, जिसका उद्देश्य, घरेलू उद्योग को अनुचित हानि से बचाना है। 100 प्रतिशत निर्यातोन्मुख इकाइयों तथा एफटीजेड एवं एसईजेड की इकाइयों द्वारा आयातित माल पर यह लागू नहीं होगा। माल के निर्यात पर डंपिग रोधी शुल्क, ड्रॉबैक के स्पेशल ब्रांड रेट के जरिए ही छूट योग्य है।
5. **शिक्षा उप करः**–कुल सीमा शुल्क के प्रतिशत के रूप में निर्धारित दर पर लगाया जाता है। यदि माल पूरी तरह शुल्क मुक्त होता है अथवा शून्य शुल्क प्रभार योग्य होता है अथवा निर्धारित प्रक्रिया जैसे ब्रांड के अंतर्गत स्वीकृति के तहत शुल्क के भुगतान के बिना मंजूर कर दिया जाता है तो उप कर नहीं लगेगा।

उत्पाद शुल्क

उत्पाद शुल्क सामानों के उत्पादन या विनिर्माण पर लगने वाला कर है। अल्कोहल, अल्कोहलिक सामग्री और मादक पदार्थों पर उत्पाद शुल्क की वसूली राज्य सरकार करती है और राज्य उत्पाद शुल्क कहा जाता है। अन्य सामानों पर लगने वाला उत्पाद शुल्क केंद्रीय उत्पाद शुल्क कहा जाता है और उसकी वसूली केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 की धारा 3 के अनुसार

की जाती है। बिक्रीकर उत्पाद शुल्क से इस रूप में भिन्न है कि बिक्रीकर किसी सामान की बिक्री किए जाने पर लगता है, जबकि उत्पाद शुल्क सामानों के विनिर्माण या उत्पादन करने पर लगाया जाता है।

विदेशी मुद्रा व्यापार

विदेशी मुद्रा बाजार– दुनिया में सबसे बडा और सबसे अधिक तरल बाजारों में से एक है। मुद्राओं के मूल्य लगातार बढ़ने और गिरने के कारण बाजार बढ़ रहा है। विदेशी मुद्रा बाजार, विश्व की मुद्राओं के क्रय विक्रय का बाजार है जो विकेंद्रित, चौबीसों घंटे चलने वाला, काउंटर पर किया जाने वाले कारोबार है। अन्य वित्तीय बाजारों की अपेक्षा यह बहुत नया है और पिछली शताब्दी में सतर के दशक में आरंभ हुआ। फिर भी संपूर्ण कारोबार की दृष्टि से यह सबसे बड़ा बाजार है। विदेशी मुद्राओं में प्रतिदिन लगभग 4 ट्रिलियन अमेरिकी डालर के तुल्य कामकाज होता है। अन्य बाजारों की तुलना में यह सबसे अधिक स्थायित्व वाला बाजार है।

पूंजी बाजार

पूंजी बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण खंड है। यह कंपनियों को उपलब्ध एक ऐसा बाजार है जो उनकी दीर्घावधिक निधियों की जरूरतों को पूरा करता है। यह निधियां उधार लेने और उधार देने की सभी सुविधाओं और संस्थागत व्यवस्थाओं से संबंधित है। अन्य शब्दों में यह दीर्घावधि निवेश करने के प्रयोजनों के लिए मुद्रा पूंजी जुटाने के कार्य से जुड़ा है।

आयात निर्यात व्यापार का विकास

आयात का अर्थ है भारत के बाहर माल भारत में लाना। दूसरे शब्दों में इसका संबंध ऐसे माल से है जो विदेशी उत्पादकों द्वारा विदेशों में उत्पादित होते हैं।

भारत में निर्यात और आयात का विनियमन व्यापार अधिनियम 1992 द्वारा होता है जो आयात और निर्यात अधिनियम 1947 को प्रतिस्थापित किया है और भारत सरकार को इसे नियंत्रित करने की बहुत अधिक शक्ति दी है। अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैः–

- इसने केंद्र सरकार को आयात को सुकर बनाने द्वारा और भारत से निर्यात बढ़ाकर और इससे संबंधित सभी मामलों या आकस्मिक घटनाओं द्वारा विदेशी व्यापार के विकास और विनियमन के लिए प्रावधान करने की शक्ति दी है।
- केंद्र सरकार निर्यात और आयात को निषेध, प्रतिबंध और विनियमित कर सकती है सभी और विशिष्ट मामलों में तथा उनमें छूटें दे सकती है।
- यह केंद्र सरकार को निर्यात और आायत नीति तैयार करने और इसकी घोषणा करने के लिए प्राधिकृत किया है और शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उनमें समय–समय पर संशोधन करने के लिए प्राधिकृत करने के लिए प्राधिकृत किया है।
- यह अधिनियम के प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा विदेशी व्यापार महानिदेशक की नियुक्ति की व्यवस्था करता है। यह केंद्रीय सरकार को निर्यात और आयात नीति तैयार करने एवं नीति क्रियान्वित करने में केंद्र सरकार को परामर्श देगा।
- अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक आयातक और निर्यातक को आयातक निर्यातक कोड नंबर विदेशी व्यापार महानिदेशक से या इसके लिए प्राधिकृत अधिकारी से प्राप्त करना है।
- महानिदेशक या इसके लिए प्राधिकृत कोई अन्य अधिकारी अधिनियम के अनुसार माल के निर्यात या आयात के लिए जारी लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है। परंतु व लाइसेंसधारक को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद ऐसा करता है।

विदेशी व्यापार अधिनियम के अतिरिक्त कुछ अन्य कानून है जो माल के निर्यात और आयात को नियंत्रित करते हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैः–

- चाय अधिनियम, 1953
- कॉफी अधिनियम, 1953
- रबड़ अधिनियम, 1947

- समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1972
- दुश्मन की संपत्तित अधिनियम, 1968
- निर्यात (गुणवता और निरीक्षण) अधिनियम, 1963
- तंबाकू बोर्ड अधिनियम, 1975

मुद्रा स्फीति

एक गणितीय आकलन पर आधारित अर्थशास्त्रीय अवधारणा है जिससे बाजार में मुद्रा का प्रसार व वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि या कमी की गणना की जाती है। उदाहरण के लिए 1990 में 100 रू. में जितना सामान आता था अगर 2000 में उसे खरीदने के लिए 200 रू. व्यय करने पड़े है तो माना जाएगा कि मुद्रा स्फीति 100 प्रतिशत बढ़ गई।

चीजों की कीमतों में बढ़ोतरी और मुद्रा की कीमत में कमी को वैज्ञानिक ढंग से सूचीबद्ध करना मुद्रा स्फीति का काम होता है इससे ब्याज दरें भी तय होती है।

मुद्रा स्फीति के कारण

- मांग कारक
- मूल्य वृद्धि कारक

सारांश

आर्थिक वातावरण में सकल घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय स्तर पर आय स्तर और प्रति व्यक्ति आय स्तर, लाभ कमाई दर, उत्पादकता और रोज़गार की दर, औद्योगिक, मौद्रिक और राजकोषीय नीति सरकार आदि शामिल होते हैं। आर्थिक वातावरण कारकों का व्यवसाय पर तत्काल और प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है, इसलिए व्यवसायक को आर्थिक वातावरण का स्कैन करना चाहिए और इन परिवेशों के साथ सौदा करने के लिए समय पर कार्यवाही लेनी चाहिए। आर्थिक वातावरण व्यापारी के लिए बाधाएं भी डाल सकता है और अवसर भी प्रदान कर सकता है। 1991 की नई आर्थिक नीति के बाद, व्यवसायियों के लिए बहुत सार अवसरों की पेशकश हुई है। आम कारक जो भारत के आर्थिक वातावरण को प्रभावित करते हैं। आर्थिक वातावरण के घटकों के अध्ययन से अर्थव्यवस्था व व्यवसाय में भविष्य में मिलने वाले अवसरों और चुनौतियों को पहचाना जा सकता है। यदि अच्छा अवसर मिले तो उस अवसर का लाभ उठाया जा सकता है और उचित समय पर रणनीति बनाकर, आर्थिक वातावरण को जोखिम से बचाया जा सकता है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 आर्थिक वातावरण से आपका क्या अभिप्राय है?
प्र.2 मौद्रिक नीति से आपका क्या तात्पर्य है?
प्र.3 राजकोषीय नीति कौन–सी होती है?
प्र.4 मुद्रा स्फीति के क्या प्रभाव पड़ते है?
प्र.5 मुद्रा स्फीति व आर्थिक विकास का क्या संबंध होता है?
प्र.6 आर्थिक प्रणाली कितने प्रकार की होती है?
प्र.7 क्रय शक्ति समता क्या है?
प्र.8 सीमा शुल्क व उत्पाद शुल्क में क्या अंतर है?
प्र.9 विदेशी मुद्रा व्यापार का अर्थ बताएं?
प्र.10 पूंजी बाजार से क्या अभिप्राय है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.11 आर्थिक वातावरण से क्या तात्पर्य है और इसे प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें?

प्र.12 आर्थिक प्रणाली के प्रकारों को विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
प्र.13 सीमा शुल्क का अर्थ व उसके प्रकारों का वर्णन करें?
प्र.14 आयात–निर्यात व्यापार व इससे संबंधित अधिनियमों का वर्णन करें।

खंड–1

इकाई–3 पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
3.0 प्रस्तावना
3.1 पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य
3.2 पंचवर्षीय योजना से प्रोत्साहित क्षेत्र
3.3 भारतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र
3.4 पंचवर्षीय योजनाओं का प्रभाव

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- पंचवर्षीय योजनाओं के मुख्य उद्देश्य
- स्वतंत्रता के बाद कृषि पर प्रभाव
- हरित क्रांति
- साहयिकी
- औद्याोगिक नीति 1956
- व्यापार नीति आयात
- औद्योगिक विकास पर नीतियों का प्रभाव

3.0 प्रस्तावना

भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ। यह भारतवर्ष के लिए एक नया सवेरा था। भारत दो सौ सालों के बाद ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र हुआ था। भारत को अब अपने नव–निर्माण की चुनौती थी। भारत का विकास अब भारत के लोगों के हाथों में आ गया था। भारत के नेताओं को अन्य बातों के साथ–साथ यह भी तय करना था कि हमारे देश में कौन–सी आर्थिक प्रणाली सबसे उपयुक्त रहेगी, जो केवल कुछ लोगों के लिए नहीं, बल्कि सर्वजन कल्याण के लिए कार्य करेगी। विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियां हो सकती हैं पर प. जवाहर लाल नेहरू को समाजवाद का प्रतिमान सबसे अच्छा लगा, किंतु वे भी भूतपूर्व सोवियत संघ की उस नीति के पक्ष मे नहीं थे, जिसमें उत्पादन के सभी साधन सरकार के स्वामित्व के अंतर्गत थे व कोई निजी संपत्तितत नहीं थी। लोकतंत्र के प्रति आस्था रखने वाले भारत जैसे देश की सरकार के लिए पूर्व सोवियत संघ की तरह अपने नागरिकों के भू स्वामित्व के प्रतिमानों तथा अन्य संपत्तिततयों को परिवर्तित कर पाना संभव नही था।

नेहरु तथा स्वतंत्र भारत के अनेक नेताओं और चिंतकों ने मिलकर नव–स्वतंत्र भारत के लिए पूंजीवाद तथा समाजवाद के अतिवादी व्याख्या के किसी विकल्प की खोज की। बुनियादि तौर पर यद्यपि उन्हें समाजवाद से सहानुभूति थी फिर भी उन्होंने ऐसी आर्थिक प्रणाली अपनाई जो उनके विचार में समाजवाद श्रेष्ट विशेषताओं से युक्त किंतु कमियों से मुक्त थी। इसके अनुसार भारत एक ऐसा समाजवादी देश होगा जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र, निजी संपत्तितत तथा लोकतंत्र का भी स्थान होगा। सरकार आर्थिक विकास की योजनाएं बनाएगी तथा निजी क्षेत्र में भी आर्थिक विकास के लिए योजनाएं होगी।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 तथा भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों को भी योजना प्रयास के एक अंग बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया। सन 1950 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में योजना आयोग की स्थापना की गई। इस प्रकार पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ हुआ।

3.1 पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य

किसी योजना के स्पष्ट लक्ष्य होने चाहिए। पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य है:

इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक योजना में इन लक्ष्यों को समान महत्व दिया गया है। सीमित संसाधनों के कारण प्रत्येक योजना में ऐसे लक्ष्यों का चयन करना पड़ता है, जिनको प्राथमिकता दी जानी है। योजनाकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि चारों उद्देश्यों में कोई अंतर्विरोध न हो।

(i) आर्थिक विकासः—संवृद्धि का अर्थ है देश में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना। इसका अर्थ यह है उत्पादक पूंजी का विस्तार, बैंकिग, परिवहन आदि सेवाओं का विस्तार या उत्पादक पूंजी तथा सेवाओं की क्षमता में वृद्धि। अर्थशास्त्र की भाषा में आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय देश की जी.डी.पी. में निरंतर वृद्धि से है। जी.डी.पी. का अर्थ एक वर्ष में किसी देश में हुए सभी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का बाजार मूल्य। जी.डी.पी. जितनी अधिक होगी वह देश उतना ही अधिक समृद्ध होगा। यदि भारत के लोगों को अधिक समृद्ध होना है तो देश में वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पाद अधिक करना होगा।

टूल बाक्स – 01
योजना आयोग सन् 1950 में प्रधानमंत्री प. जवाहर लाल नेहरु की अध्यक्षता में योजना आयोग की स्थापना की गई।

(ii) आधुनिकीकरणः—वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए नई टेक्नोलाजी का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए किसान पुराने किस्म के बीजों के स्थान पर नई किस्म के बीजों तथा खादों का प्रयोग करके कृषि उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार उद्योगों में नई मशीनों के प्रयोग से वस्तुओं के उत्पादन वृद्धि तथा उनकी क्वालिटी बेहतर होती है। आधुनिकीकरण केवल उत्पादन तथा सेवाओं में वृद्धि करना ही नहीं है, बल्कि समाज के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाना है। जैसे महिलाओं तथा पुरुषों को समान अधिकार देना। परंपरागत समाज में नारी का कार्यक्षेत्र घर के अंदर तक ही सीमित माना जाता था। आधुनिक समाज में नारी अपनी प्रतिभा को घर से बाहर जैसे बैंकों, कारखानों, विद्यालयों आदि स्थानों पर प्रयोग करती है और ऐसा करने से समाज समृद्ध होता है।

(iii) आत्मनिर्भरताः—कोई देश आधुनिकीकरण और आर्थिक संवृद्धि अपने अथवा अन्य देशों से आयायित संसाधनों के प्रयोग के द्वारा कर सकता है। हमारी प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य देश को आत्मनिर्भर बनाना था। इन योजनाओं में इस बात पर जोर दिया गया कि हमें उन वस्तुओं के आयात से बचना चाहिए जिनका उत्पादन हम अपने देश में कर सकते हैं। इस नीति में विशेषकर देश को खाद्यान्न के लिए निर्भर बनाना था जिससे अन्य देशों पर निर्भरता कम हो सके। यह आशंका भी थी कि आययित खाद्यान्न, विदेशी प्रौद्योगिकी तथा पूंजी निवेश किसी—न—किसी रूप में हमारे देश की संप्रभुता में बाधा डाल सकती है।

(iv) समानताः—हम केवल संवृद्धि, आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के द्वारा ही अपने लोगों के जीवन में सुधार नहीं ला सकते। किसी देश में संवृद्धि दर तथा विकसित अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने के बाद भी अधिकांश लोग गरीब हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आर्थिक समृद्धि का लाभ देश के निर्धन वर्ग को मिल सके तथा यह केवल धनी लोगों तक सीमित न रहे। प्रत्येक भारतीय अच्छा भोजन, अच्छा आवास, शिक्षा, चिकित्सा, जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर सके। देश में धन का वितरण समान हो सके।

टूल बाक्स — 02
पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य
• आधुनिकीकरण • आत्मनिर्भरता • समानता • आर्थिक विकास

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने कौन सी आर्थिक प्रणाली अपनाई?
प्र.2	पंचवर्षीय योजना की शुरुआत कब हुई और इसके क्या उद्देश्य थे?
प्र.3	भारत को 1947 में अपने नव—निर्माण की चुनौती क्यों थी?

3.2 पंचवर्षीय योजना से प्रोत्साहित क्षेत्र

देश का सकल घरेलू उत्पाद देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होता है। ये क्षेत्र हैं—कृषि, औद्योगिक तथा सेवा।

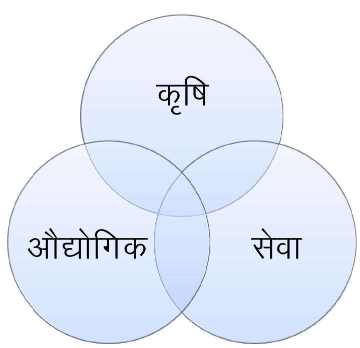

घरेलू उत्पाद के विभिन्न क्षेत्र

इन क्षेत्रों के योगदान से ही अर्थव्यवस्था का ढ़ांचा तैयार होता है। कुछ देशों के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अधिक योगदान होता है तो कुछ देशों में सेवा क्षेत्र का योगदान होता है।

कृषि

ब्रिटिश शासन काल में कृषि में न तो संवृद्धि हुई और न ही समता रह पाई। स्वतंत्र भारत के नीति निर्माताओं को इन मुद्दों पर विचार करना पड़ा तथा उन्होंने भूमि सुधारों तथा उच्च पैदावार वाली किस्म के बीजों के प्रयोग द्वारा भारतीय कृषि में एक क्रांति का संचार किया।

भूमि सुधारः– स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की भू–धारण पद्धति में जमींदार–जागीरदार आदि का वर्चस्व था। ये खेतों में कोई सुधार किए बिना मात्र लगान की वसूली किया करते थे। भारतीय कृषि क्षेत्र की कम उत्पादकता के कारण भारत को अमेरिका से अनाज का आयात करना पड़ा। कृषि में समानता लाने के लिए भूमि सुधारों की आवश्यकता हुई, जिसका मुख्य ध्येय जोतों के स्वामित्व में परिवर्तन करना था। स्वतंत्रता के एक वर्ष के बाद ही देश में बिचौलियों के उन्मूलन तथा वास्तविक कृषकों को ही भूमि का स्वामी बनाने जैसे कदम उठाए गए। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि भूमि का स्वामित्व किसानों को निवेश करने की प्रेरणा देगा। समानता को बढ़ाने के लिए भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण एक दूसरी नीति थी। इसका अर्थ है किसी व्यक्ति को कृषि भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा निर्धारण करना।

बिचौलियों के उन्मूलन का नतीजा यह था कि लगभग 200 लाख काश्तकारों का सरकार से सीधा संपर्क हो गया तथा वे जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण से मुक्त हो गए। भूमि का स्वामी होने पर उन्हें कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहन मिला। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु बिचौलियों के उन्मूलन कर समानता के लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाई। कानून की कमियों का लाभ उठाकर कुछ भूतपूर्व जमींदारों ने कुछ क्षेत्रों में बहुत बड़े–बड़े भूखंडों पर अपना स्वामित्व बनाए रखा। कुछ मामलों में काश्तकारों को बेदखल कर दिया गया और भू–स्वामियों ने अपने किसान होने का दावा किया। कृषकों को भूमि स्वामित्व मिलने के बाद भी निर्धनतम श्रमिकों को भूमि सुधारों का कोई लाभ नहीं हुआ।

अधिकतम भूमि सीमा निर्धारण कानून में भी बाधाएं आई। बड़े जमींदारों ने इस कानून को न्यायालयों में चुनौती दी जिसके कारण इस कानून को लागू करने में देरी हुई तथा इस दौरान वे अपनी भूमि को निकट संबंधियों आदि के नाम कराकर कानून से बच गए। उस समय कानून में भी कमियां थी, जिनके कारण बड़े जमीदार भूमि पर अधिकार बनाए रखने में सफल रहे। केरल तथा पश्चिम बंगाल की सरकारें ही वास्तविक किसान को भूमि देने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थी इस कारण इन प्रांतों में भू–सुधार कार्यक्रम सफल रहे तथा अन्य राज्यों की सरकारों में इस स्तर की प्रतिबद्धता नहीं थी। आजतक जोतों में भारी असमानता बनी हुई है।

हरित क्रांतिः–स्वतंत्रता के समय देश की 75 प्रतिशत आबादी कृषि पर आश्रित थी। इस क्षेत्र में उत्पादन भी काफी कम था, क्योंकि खेती का कार्य तरीका काफी पुराना था और अधिकांश किसानों के पास खेती की आधारिक संरचना का अभाव था। भारत की खेती मानसून पर निर्भर थी और मानसून का स्तर कम होने पर किसानों को बहुत कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध नहीं थी। यह सुविधा कुछ किसानों के पास थी। हरित क्रांति ने खेती के पुराने तरीकों को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। हरित क्रांति में उच्च किस्म के बीजों का प्रयोग करके उत्पादन में वृद्धि की गई। विशेषकर गेहूँ तथा चावल के उत्पादन में वृद्धि हुई। इन बीजों के प्रयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में कीटनाशक, उर्वरकों, तथा जल की आवश्यकता थी। इन आगतों का सही अनुपात में प्रयोग होना भी महत्वपूर्ण है। बीजों की अधिक पैदावार वाली किस्मों से लाभ उठाने वाले किसानों को सिंचाई की विश्वसनीय सुविधाओं और उर्वरकों, कीटनाशकों आदि की खरीदारी की वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी। अतः हरित क्रांति के पहले चरण में बीजों का प्रयोग पंजाब, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे समृद्ध राज्यों तक ही सीमित रहा। इसके अतिरिक्त इन बीजों का लाभ केवल गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों को ही मिल पाया। हरित क्रांति के दूसरे चरण में इन बीजों की प्रौद्योगिकी का विस्तार कई राज्यों तक पहुंचा और कई फसलों को लाभ हुआ। इस प्रकार हरित क्रांति प्रौद्योगिकी के प्रसार से भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुईं। अब हम खाद्य संबंधी आवश्यकताओं के लिए दूसरे देशों पर

निर्भर नहीं थे। यदि किसान उत्पादन को बेचने की जगह इसका उपयोग स्वयं करे तो इससे देश की अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा और यदि और अधिक अतिरिक्त उत्पादन करके इसे बाजार में बेच दिया जाए तो देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। किसानों द्वारा उत्पादन को बाजार में बेचा गया उसे विपणित अधिशेष कहते हैं। हरित क्रांति से गेहूँ तथा चावल के अतिरिक्ति उत्पादन में वृद्धि को किसान बाजार में बेचकर लाभ कमा रहे हैं। इसके फलस्वरूप खाद्यान्नों की कीमतों में उपभोग की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा कमी आई। अपनी आय के बहुत बड़े भाग का भोजन पर खर्च करने वाले निम्न आय वर्गों को कीमतों में इस सापेक्ष कमी से बहुत लाभ हुआ। हरित क्रांति के कारण सरकार पर्याप्त खाद्यान्न स्टॉक बना सकी जिसे खाद्यान्नों की कमी के समय प्रयोग किया जा सकता था।

टूल बाक्स – 03
हरित क्रांति
खेती के पुराने तरीकों को समाप्त करके उत्तम किस्मों के बीजों के प्रयोग द्वारा चावल व गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि की गई।

यद्यपि हरित क्रांति से देश बहुत लाभान्वित हुआ है पर यह प्रौद्योगिकी पूरी तरह निरापद नहीं है। एक जोखिम यह था कि इससे छोटे और बड़े किसानों के बीच असमानताएं बढ़ने की संभावनाएं थी, क्योंकि केवल बड़े किसान अपेक्षित आगतों को खरीदने में सक्षम थे.। इसके अतिरिक्त इन फसलों में कीटनाशकों के आक्रमण की भी संभावनाएं अधिक होती है। ऐसी दशा में, प्रौद्योगिकी को अपनाने वाले छोटे किसानों की फसल का सब कुछ नष्ट हो जाता है। इसके लिए सरकार ने छोटे किसानों को ऋण दिए और उर्वरकों पर आर्थिक सहायता दी, ताकि छोटे किसानों को ये आवश्यक आगत उपलब्ध हो सके। छोटे किसानों को इन आगतों के प्राप्ति से छोटे खेतों की उपज और उत्पादकता भी समय के साथ बड़े खेतों की पैदावार के बराबर हो गई। इस प्रकार हरित क्रांति से छोटे किसानों को लाभ मिला। सरकार द्वारा स्थापित अनुसंधान संस्थानों की सेवाओं के कारण, छोटे किसानों के जोखिम भी कम हो गए, जो कीटनाशकों के आक्रमण से उनकी फसलों की बर्बादी का कारण थे। यदि सरकार ने इस प्रौद्योगिकी का लाभ छोटे किसानों को उपलब्ध कराने के लिए व्यापक प्रयास नहीं किए होते तो इस क्रांति का लाभ केवल धनी किसानों को ही मिलता।

सहायिकी पर बहसः–आजकल कृषि क्षेत्र को दी जा रही आर्थिक सहायिकी का आर्थिक औचित्य एक गरमा–गरमा बहस का मुद्दा बन गया है। इस बात से तो सभी सहमत हैं कि किसानों द्वारा और सामान्यतः छोटे किसानों द्वारा विशेष रूप से नई एच.वाई.वी. प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु सहायिकी दी जानी आवश्यक थी। किसान प्रायः किसी भी नई प्रौद्योगिकी को जोखिम पूर्ण समझते हैं। अतः किसानों द्वारा नई प्रौद्योगिकी की परख के लिए सहायिकी आवश्यक थी। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक बार प्रौद्योगिकी का लाभ मिल जाने तथा उसके व्यापक प्रचलन के बाद सहायिकी धीरे–धीरे समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है। यही नहीं यद्यपि सहायिकी का ध्येय तो किसानों को लाभ पहुंचाना है, किंतु उर्वरक सहायिकी की लाभ बड़ी मात्रा में प्रायः उर्वरक उद्योग तथा अधिक समृद्धि क्षेत्र के किसानों को ही पहुंचता हैं। अतः यह तर्क दिया जाता है कि उर्वरकों पर सहायिकी जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। इनसे लक्षित समूह को लाभ नहीं होता और सरकारी कोष पर अनावश्यक भारी बोझ पड़ता है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि कृषि सहायता जारी रखनी चाहिए क्योंकि भारत में कृषि एक बहुत ही जोखिम भरा व्यवसाय है। भारत में अधिकांश किसान गरीब है और सहायता समाप्त करने से वे आगतों का प्रयोग नहीं कर पाएंगे। सहायता समाप्त कर देने से गरीब तथा धनी किसानों में असमानता और बढ़ेगी। विशेषज्ञों का मानना है कि सहायता का लाभ धनी किसानों को अधिक हो रहा है। समाधान सहायता को कम

या समाप्त करना नहीं, बल्कि ऐसी नीति बनाना है जिनसे केवल गरीब किसानों को इसका लाभ मिले।

1960 के दशक के अंत तक देश में कृषि उत्पादन में वृद्धि से भारत खाद्यान्नों में आत्म निर्भर हो गया था। यह भारत के लिए एक गौरवपूर्ण उपलब्धि रही है। इसके बावजूद इसका नकारात्मक पहलू यह रहा है कि 1990 तक भी देश भी 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी थी। अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि जैसे–जैसे देश संपन्न होता है, सकल घेरलू उत्पाद में, कृषि के योगदान में और उस पर निर्भर जनसंख्या में पर्याप्त कमी आती है। भारत में 1950 –1990 की अवधि में जी.डी.पी. में कृषि के योगदान में भारी कमी आई है पर कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अनुपात में कमी नहीं आई है। कृषि क्षेत्र में इतनी उत्पादन वृद्धि तो न्यूनतम श्रम के प्रयोग द्वारा ही संभव थी फिर भी इस क्षेत्र में इतनी मात्रा में लोगों के लगे रहने की क्या आवश्यकता थी। हम अतिरिक्त श्रम को सेवा क्षेत्र में नही खपा पाए।

उद्योग तथा व्यापार

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि गरीब देश तभी विकास कर पाते हैं जब उनमें अच्छे औद्योगिक क्षेत्र होते हैं। उद्योग से लोगों को रोज़गार मिलता है तथा ये कृषि में रोज़गार से अधिक स्थायी होते हैं। इससे देश का आधुनिकीकरण तथा संपूर्ण विकास होता है। हमारी पंचवर्षीय योजनों में औद्योगिक विकास पर अत्यधिक जोर दिया गया है। आजादी के बार भारत मे बहुत कम उद्योग थे। इनमें से अधिकांश उद्योग सूती वस्त्र, पटसन आदि तक सीमित थे। जमशेदपुर तथा कोलकाता में लोहा व इस्पात की सुप्रबंधित फर्में थीं। यदि अर्थव्यवस्था का विकास करना था तो हमें ऐसे औद्योगिक आधार का विस्तार करने की आवश्यकता थी जिसमें विभिन्न प्रकार के उद्योग हों।

टूल बाक्स – 04
सकल घरेलू उत्पाद
सकल घरेलू उत्पाद से अभिप्राय एक राष्ट्र द्वारा एक वर्ष में राष्ट्र की सीमा के भीतर सभी अंतिम माल और सेवाओं का बाजार मूल्य है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 हरित क्रांति क्या है?
प्र.5 कृषि क्षेत्र को दी जा रही आर्थिक सहायिकी का आर्थिक औचित्य एक गरमा–गरमा बहस का मुद्दा क्यों है। ?
प्र.6 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भूमि सुधार कैसे किया गया?

भारत में दूसरी योजना, वास्तव में औद्योगिक योजना थी। इसमें आधारभूत उद्योगों के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई तथा इसे रोजगार–प्रेरित क्षेत्र स्वीकार किया गया। यह योजना 1956 की औद्योगिक नीति पर आधारित थी जिसमें उद्योगों के तीव्र विकास का उतरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया।

3.3 भारतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र

हमारे देश के नीति निर्माताओं के सामने सबसे बड़ा सवाल यह था कि औद्योगिक विकास के लिए सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की क्या भूमिका होनी चाहिए। आजादी के बाद भारत के उद्योगपतियों के पास अपने उद्योगों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पूंजी की कमी थी और देश में उत्पादन को बेचने के लिए इतना बड़ा बाजार भी नहीं था कि उत्पादन को बेचा जा सके व उद्योगों को प्रोत्साहन मिल सके। इस कारण राज्यों को औद्योगिक क्षेत्र को प्रोत्साहन देने में व्यापक भूमिका निभानी पड़ी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकार ने यह निर्णय लिया कि सरकार अर्थव्यवस्था में बड़े तथा भारी उद्योगों पर पूरा नियंत्रण करेगी जो अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण थे।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956

भारी उद्योगों पर नियंत्रण करने के लिए राज्य के लक्ष्य के अनुसार औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 बनाया गया। इस नीति को दूसरी पंचवर्षीय योजना के आधार पर बनाया गया। दूसरी योजना में समाज को समाजवादी स्वरूप का आधार तैयार करने का प्रयास किया गया। इस नीति के अनुसार, उद्योगों को तीन भागों में बांटा गया। प्रथम भाग में वे उद्योग आते हैं जिस पर राज्य का अनन्य स्वामित्व होता था। दूसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे जिनमें निजी क्षेत्र तथा सरकार मिलकर संयुक्त प्रयास कर सकते थे, परंतु इनको शुरू करने की जिम्मेवारी राज्य सरकार की होती तथा तीसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे जो निजी क्षेत्र के अंतर्गत आते थे।

निजी क्षेत्रों में आने वाले उद्योगों का भी एक वर्ग ऐसा था जो लाइसेंस पद्धति के माध्यम से राज्य के नियंत्रण में रखा गया। नए उद्योगों को तब तक अनुमति नहीं दी जाती थी जब तक सरकार से लाइसेंस नहीं प्राप्त कर लिया जाता था। इस नीति का प्रयोग पिछड़े क्षेत्रों के उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया। यदि कोई उद्योग आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्र में लगाया जाना था तो इसके के लिए सरकार से लाइसेंस लेना आसान था। इस नीति का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय असमानता को कम करना था, ताकि सभी क्षेत्रों का समान रूप से विकास हो सके।
वर्तमान उद्योगों को भी उत्पादन बढ़ाने और नई वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस लेना पड़ता था। सरकार यह सुनिश्चित करती थी कि उत्पादित वस्तुओं की मात्रा अर्थव्यवस्था द्वारा अपेक्षित मात्रा से अधिक न हो तथा उत्पादन बढ़ाने का लाइसेंस केवल तभी दिया जाता था जब सरकार को इस बात विश्वास हो जाता था कि अर्थव्यवस्था के लिए वस्तुओं की बड़ी मात्रा में आवश्यकता है।

लघु उद्योगः—1955 में ग्राम तथा लघु उद्योग समिति बनी। गांवों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए लघु उद्योगों का प्रयोग किया गया। लघु उद्योग की परिभाषा किसी इकाई की परिसंपत्तितयों के लिए दिए जाने वाले अधिकतम निवेश के संदर्भ मे दी जाती है। 1950 में लघु औद्यौगिक इकाई उसे कहा जाता था, जिसमें पांच लाख रु. का अधिकतम निवेश होता है। आजकल यह सीमा एक करोड़ रु. का अधिकतम निवेश है।

ऐसा माना जाता था कि लघु उद्योग अधिक श्रम प्रधान होते हैं। इसमें बड़े उद्योगों के मुकाबले अधिक श्रम का प्रयोग किया जाता है। इससे रोज़गार के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। ये बड़े औद्योगिक इकाइयों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करते हैं। लघु उद्योगों के विकास के लिए बड़े उद्योगों से इनकी रक्षा करनी आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए अनेक उत्पादों को आरक्षित किया गया। उन वस्तुओं को आरक्षित किया गया जिसका निर्माण लघु उद्योगों कर सकते थे तथा इनके विकास के लिए अन्य रियायतें भी दी गई थी, जैसे—कम उत्पाद शुल्क, कम ब्याज पर ऋण आदि।

टूल बाक्स — 05
लघु उद्योग वह इकाई जिसमें पांच लाख रु. का अधिकतम निवेश होता है उसे लघु औद्यौगिक इकाई कहते हैं।

व्यापार नीति आयात प्रतिस्थापन

प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार की विशेषता अंतर्मुखी थी। तकनीकी रूप से इस नीति को आयात प्रतिस्थापन कहा जाता है। इस नीति का उद्देश्य घरेलू आवश्यकतों की पूर्ति के लिए आयात के बदले घरेलू उत्पादन से पूरा करना है। उदाहरण के लिए किसी भी वस्तु को बाहर से आयात करने की बजाए उन्हें भारत में निर्मित करने के लिए उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाए। सरकार ने इस उद्देश्य के लिए ऐसी नीति बनाई, ताकि विदेशी प्रतिस्थापन से घरेलू उद्योगों की रक्षा हो। आयात संरक्षण दो प्रकार से होता है– प्रशुल्क तथा कोटा। प्रशुल्क आयात करने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता है जिससे आयात होने वाली वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। इससे उपभोक्ता इन वस्तुओं का प्रयोग करने के लिए हतोत्साहित होता है। कोटे में वस्तुओं की मात्रा सीमित होती है जिन्हें एक विशेष मात्रा में ही आयात किया जा सकता है। प्रशुल्क तथा कोटे से आयात कम मात्रा में होता है तथा विदशी फर्मों से देश की फर्मों की रक्षा होती है तथा लोगों को स्वदेशी का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

संरक्षण की नीति इस बात पर आशय है कि विकासशील देशों के उद्योग अधिक विकसित देशों के उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने के लायक नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसा माना जाता है कि यदि घरेलू उद्योगों का संरक्षण किया जाता है तो समय के साथ वे प्रतिस्पर्धा करना भी सीख लेगें। हमारे योजनाकारों को भी यह आशंका थी कि यदि आयातों पर प्रतिबंध लगाया जाता है तो विलासिता की वस्तुओं के आयात पर विदेशी मुद्रा खर्च होने की संभावना बढ़ जाएगी। 1980 के दशक के मध्य तक निर्यात–संवर्धन पर कोई गंभीर विचार नहीं किया गया था।

योजना	समय	योजना का उद्देश्य
पहली योजना	1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1956	1. कृषि उत्पादन में वृद्वि 2. उत्पादन, कृषि तथा धन का समान वितरण।
दूसरी योजना	1 अप्रैल 1956 से 31 मार्च 1961	1. औद्योगिक उत्पादन में वृद्वि 2. भारी उद्योगो का विकास
तीसरी योजना	1 अप्रैल 1961 से 31 मार्च 1966	1. अनाज उत्पादन में आत्म निर्भरता 2. रोज़गार के अवसर पैदा करना 3. असमानता में कमी करना
चौथी योजना	1 अप्रैल 1969 से 31 मार्च 1974	1. विकास की गति का तेज करना 2. मूल्य स्थिरता 3.
पांचवी योजना	1 अप्रैल 1974 से 31 मार्च 1979	1. समाज के कमज़ोर वर्ग के ध्यान के साथ जीवन स्तर का उंचा उठाना।
छठी योजना	1 अप्रैल 1980 से 31 मार्च 1985	1. गरीबी को हटाना 2. असमानता की कमी 3. बुनियादी ढ़ांचे का विकास
सातवीं योजना	1 अप्रैल 1985 से 31 मार्च 1990	1. रोज़गार के अवसर को बढ़ाना। 2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना।
आठवीं योजना	1 अप्रैल 1992 से 31 मार्च 1997	1. सदी के अंत तक मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग 2. प्रांरभिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाना 3. बुनियादी ढ़ांचे को मजबूत बनाना।

नौवीं योजना	1 अप्रैल 1997 से 31 मार्च 2002	1. कृषि और ग्रामीण विकास 2. मूल्य स्थिरता के साथ विकास। 3. जनसंख्या वृद्धि की जांच
दसवीं योजना	1 अप्रैल 2002 से 31 मार्च 2007	1. बेहतर स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं के माध्यम से जीवन में सुधार। 2. समान विकास के माध्यम से असमानता में कमी।
ग्यारहवीं योजना	1 अप्रैल 2007 से 31 मार्च 2012	1. कई लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करना न केवल विकास, बल्कि गरीबी को कम करना। 2. शिक्षा की गुणवत्ता और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार। 3. दूसरी हरित क्रांति की रणनीति। 4. नौकरी की उच्च गुणवता पैदा करना 5. पर्यावरण की सुरक्षा
बारहवीं योजना	1 अप्रैल 2012 से 31 मार्च 2017	तेज, सतत और समावेशी विकास

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 औद्योगिक नीति 1956 में उद्योगों को कितने भागों में बांटा गया?
प्र.8 प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार की विशेषता अंतर्मुखी थी। क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
प्र.9 लघु उद्योग की दो विशेषताएं बताएं?

3.4 पंचवर्षीय योजनाओं का प्रभाव

पहली सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारत ने औद्योगिक क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त की है। औद्योगिक क्षेत्रों के विकास से भारत की जी.डी.पी. का अनुपात 1950—51 में 11.8 से बढ़कर 1990—91 में 24.6 प्रतिशत हो गई। भारत की जी.डी.पी. में बढ़ोतरी उद्योगों के विकास का सूचक है। इस समय के दौरान औद्योगिक विकास की दर 6 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि दर प्रशंसनीय है। भारत का औद्योगिक विकास अब केवल सूती तथा पटसन उद्योग तक सीमित नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र प्रायः सार्वजनिक क्षेत्र के कारण विविधतापूर्ण बन गया था। लघु उद्योगों के संवर्धन से उन लोगों को अवसर प्राप्त हुए जिनके पास व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए बडे फर्मों को प्रारंभ करने हेतु पूंजी नहीं थी। विदेशी प्रतिस्पर्धा के प्रति संरक्षण से उन इलेक्ट्रोनिकी व ऑटोमोबइल क्षेत्रों में देशी उद्योगों का विकास हुआ, जिनका विकास संभव नहीं था।

टूल बाक्स — 06
आयात संरक्षण के दो प्रकार होते हैं
• प्रशुल्क • कोटा

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान के बावजूद अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उद्यमों के निष्पादन की कड़ी आलोचना की है। शुरू में सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता अधिक थी अब यह पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है। सरकारी क्षेत्रों ने कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं पर एकाधिकार रखते हुए उत्पादन जारी रखा है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। दूरसंचार सेवा इसका उदाहरण है। इस उद्योग को सार्वजनिक क्षेत्र से आरक्षण प्राप्त है जबकि निजी क्षेत्र भी इस सेवा को उपलब्ध करा सकते हैं। 1990 के दशक में निजी क्षेत्र द्वारा सेवा उपलब्ध नहीं होने कारण लोगों को टेलीफोन कनेक्शन लेने के लिए लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इसका दूसरा उदाहरण माडर्न ब्रेड की स्थापना है जो ब्रेड निर्माण करने वाली एक फर्म थी और निजी क्षेत्र को इसका निर्माण करने की अनुमति नहीं थी। 2001 में यह फर्म निजी क्षेत्र को बेच दी गई। भारत की अर्थव्यवस्था को विकसित करने के चार दशक बाद भी इन दोंनों के बीच अंतर नहीं किया गया है कि (क) सार्वजनिक क्षेत्र क्या कर सकता है तथा (ख) निजी क्षेत्र क्या कर सकता है। आज भी केवल सार्वजनिक क्षेत्र ही राष्ट्रीय सुरक्षा प्रदान कर सकता है। जैसे सरकार होटलों की व्यवस्था कर सकती है। लेकिन कुछ विद्वानों का मानना है कि सरकार को उन क्षेत्रों से हट जाना चाहिए जो कार्य निजी क्षेत्र कर सकता है। सरकार को केवल उन्हीं संसाधनों का संकेद्रण करना चाहिए जिनको निजी क्षेत्र उपलब्ध नहीं कर सकता है। भारत के अनेक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को भारी हानि सहन करनी पड़ी है, लेकिन सरकार द्वारा नियंत्रण होने के कारण इन्हें बंद करना आसान नहीं था। भले ही इसके कारण राष्ट्र के सीमित संसाधनों का निकास होता रहे। इसका अर्थ यह था कि निजी क्षेत्र को लाभ होता रहे। उसके बाद कामगारों की नौकरियों की सरंक्षा के लिए उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

किसी उद्योग को शुरू करने के लिए आवश्यक लाइसेंस का कुछ औद्योगिक घरानों द्वारा दुरूप्रयोग किया गया। ये बड़े औद्योगिक घराने नई फर्म शुरू करने के लिए लाइसेंस नहीं, बल्कि प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए लाइसेंस प्राप्त कर लेते थे। कई बड़ी कंपनियां उत्पादन के लायक नहीं होने पर भी लाइसेंस लेने में कामयाब हो जाती थी। उद्योगपति अपने उत्पादन के विषय में विचार करने की अपेक्षा लाइसेंस प्राप्त करने के लिए संबंधित मंत्रालयों मे लॉबी बनाने में समय व्यतीत करते थे।

विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण की आलोचना इस आधार पर की जा रही है कि यह उस स्थिति के बाद भी जारी रहा, जबकि यह सिद्ध हो चुका था कि इससे कोई विशेष लाभ के स्थान पर हानि अधिक होगी। आयातों पर प्रतिबंध के कारण भारतीय उपभोक्ताओं को उन वस्तुओं को खरीदना पड़ता था जिनका उत्पादन भारतीय उद्योग करते थे। उत्पादकों को यह पता था कि उनके पास एक आबद्ध बाजार है, जिनके कारण भारतीय उद्योगों को उत्पाद की गुणवता सुधारने की प्रेरणा नहीं थी। जब ये उद्योग घटिया वस्तुओं को ऊंची कीमत पर बेच सकते थे इसलिए उनको अपनी गुणवत्ता सुधारने की आवश्यकता नहीं थी। आयातों की प्रतिस्पर्धा ने हमारे उत्पादकों को और अधिक दक्ष बनने को बाध्य किया। कुछ विशेषज्ञों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों का मुख्य लक्ष्य लाभ कमाना नहीं था, बल्कि देश के विकास को बढ़ाना था। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों का मूल्यांकन जनता के कल्याण के आधार पर किया जाना चाहिए। उनका मूल्यांकन उनके द्वारा कमाए गए लाभों के आधार पर नहीं किया जा सकता। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि हमें विदेशी प्रतिस्पर्धा से उत्पादनों का संरक्षण तब तक करना चाहिए जब तक धनी राष्ट्र ऐसा करते रहें। इन सभी विरोधों के कारण अर्थशास्त्रियों ने हमारी नीति में परिवर्तन करने का आग्रह किया। अन्य समस्याओं सहित इस समस्या के कारण सरकार ने 1991 में आर्थिक नीति प्रारंभ की।

भारत सरकार ने 12वीं पंचवर्षीय योजना की विकास दर 8.2 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। परंतु 27 दिसंबर 2012 को राष्ट्रीय विकास काऊसिलिंग ने 8 प्रतिशत विकास दर का अनुमान लगाया। इस योजना के मुख्य उद्देश्यः–

(क) गरीबी को 10 प्रतिशत तक कम करना।

(ख) निजी निवेश को बढाना।
(ग) आय की असमानता को कम करना।
(घ) क्षेत्रीय असमानता को कम करना।
(ङ) संसाधनों को बढ़ाना।
(च) रोज़गार की उपलब्धता।
(छ) पूंजी बाजार को नियमित करना।
(ज) नई तकनीक व खुली अर्थव्यवस्था के द्वारा ग्रामीण जनता का विकास।
(झ) जनता को सूचनाएं प्रदान करना व उनको उनके अधिकार व ताकत से परिचीत करवाना।
(ञ) वैश्वीकरण के सहयोग से औद्योगिकरण व प्रतिस्पर्धा से तकनीकी सुधार लाना।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.10	पंचवर्षीय योजनाओं का प्रभाव क्या है?
प्र.11	आयात संरक्षण के दो प्रकार क्या हैं?
प्र.12	भारत सरकार की 12वीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

सारांश

12वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत विकास दर 9 प्रतिशत प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है। सन 2012–13 जो कि इस पंचवर्षीय योजना का पहला वर्ष था में विकास दर 6.5 से 7 प्रतिशत तक रही। स्वास्थ्य पर सकल घरेलू उत्पाद का 2.5 प्रतिशत खर्च किया गया। सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान करीब 58 प्रतिशत है और हमारी अर्थव्यवस्था को स्थिर रखने में सहायक है। प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति अच्छी रही है। हमारे उद्योग स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की स्थिति की तुलना में विविधतापूर्ण हो गए। हरित क्रांति से हमारा देश खाद्य उत्पादन मे आत्मनिर्भर बन गया। भूमि सुधारों का परिणाम यह हुआ है कि जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। आत्मनिर्भरता के नाम पर उत्पादकों का सरंक्षण विदेशी प्रतिस्पर्धा से किया गया और इससे उन्हें उनके उत्पादित वस्तुओं की गुणवता में सुधार करने की प्रेरणा नहीं मिली। हमारी नीतियां अंर्तमुखी थी, अतः हम एक सशक्त निर्यात क्षेत्र विकसित करने में विफल रहे। बदलते हुए वैश्विक आर्थिक परिदृश्य के प्रसंग में यह सर्वत्र महसूस किया जा रहा था कि आर्थिक नीति में सुधार करने की आवश्यकता है। हमारी अर्थव्यवस्था को और अधिक सफल बनाने के लिए 1991 में एक नई आर्थिक नीति शुरू की गई।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 योजना की परिभाषा दीजिए?
प्र.2 भारत ने योजना को क्यों चुना?
प्र.3 योजनाओं के लक्ष्य क्या होने चाहिए?
प्र.4 उच्च पैदावार वाली किस्म के बीज क्या होते हैं?
प्र.5 विक्रय अधिशेष क्या है?
प्र.6 कृषि क्षेत्र में लागू किए गए भूमि सुधार की आवश्यकता और उनके प्रकारों की व्याख्या कीजिए?
प्र.7 हरित क्रांति क्या है? इसे क्यों लागू किया गया और किसानों को कैसे लाभ पहुंचा?
प्र.8 योजना उद्देश्य के रूप में समानता के साथ संवृद्धि की व्याख्या कीजिए?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 क्या रोज़गार सृजन की दृष्टि से योजना उद्देश्य के रूप में आधुनिकीकरण विरोधाभास पैदा करता है? व्याख्या कीजिए।

प्र.2 भारत जैसे विकासशील देश के रूप में आत्मनिर्भरता का पालन करना क्यों आवश्यक था?

प्र.3 किसी अर्थव्यवस्था का क्षेत्र गठन क्या होता है? क्या वह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के जी.डी.पी. में सेवा क्षेत्र को सबसे अधिक योगदान करना चाहिए?

प्र.4 योजना अवधि के दौरान औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र को ही अग्रणी भूमिका क्यों सौंपी गई थी?

प्र.5 इस कथन की व्याख्या करेंः हरित क्रांति ने सरकार को खाद्यान्नों के प्रापण द्वारा विशाल सुरक्षित भंडार बनाने के योग्य बनाया, ताकि वह कमी के समय उसका उपयोग कर सके।

प्र.6 सहायिकी किसानों को नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने को प्रोत्साहित तो करती है पर उसका सरकारी वित्त पर भारी बोझ पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर सहायिकी की उपयोगिता पर चर्चा करें।

प्र.7 हरित क्रांति के बाद भी 1990 तक हमारी 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र में ही क्यों लगी रही?

प्र.8 यद्यपि उद्योगों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र बहुत आवश्यक रहा है, पर सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उपक्रम ऐसे हैं जो भारी हानि उठा रहे हैं और इस क्षेत्र के अर्थव्यवस्था के संसाधनों की बर्बादी के साधन बने हुए हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की उपयोगिता पर चर्चा करें।

प्र.9 आयात प्रतिस्थापन किस प्रकार घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करता है?

प्र.10 औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 में निजी क्षेत्र का नियमन क्यों और कैसे किया गया था?

खंड–2
इकाई–4 जनसंख्या

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
4.0 प्रस्तावना
4.1 जनसंख्या–बोझ या मानव पूंजी
4.2 मानव पूंजी
4.3 जनसंख्या एवं आर्थिक संवृद्धि
4.4 भारत और मानवपूंजी
4.5 मानव पूंजी और मानव विकास
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- जनसंख्या
- मानव पूंजी
- जनसंख्या के विकास के स्त्रोत
- मानव पूंजी और मानव विकास

4.0 प्रस्तावना

एक देश में अधिक जनसंख्या होना अच्छा कारक है या नहीं? मनुष्य के पास ज्ञान संग्रह करने की और उसका प्रसारण करने की भी क्षमताएं है, इस ज्ञान का बखान मनुष्य बातचीत, लोकगीत और व्याख्यानों के माध्यम से कर सकता है। समय के साथ मनुष्य ने यह समझ लिया कि कार्यों को कार्यकुशलतापूर्वक करने के लिए अच्छे प्रशिक्षण तथा कौशल की आवश्यकता होती है। यह श्रम कौशल शिक्षा से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी कारणवश शिक्षित व कुशल व्यक्ति, अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा, अधिक आय सृजन करता है और देश की आर्थिक समृद्धि में उसका योगदान अधिक रहता है। शिक्षा से उपार्जन क्षमता बढ़ती है और अन्य भी अधिक मूल्यावान लाभ है। शिक्षा लोगों को समाज में उच्च स्थिति और गौरव प्रदान करती है। अच्छी शिक्षा प्राप्ति से व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बनाने के विकल्पों का चुनाव कर पाने के योग्य बनाता है। व्यक्ति को समाजिक परिवर्तनों को समझने की शक्ति मिलती है तथा वह शिक्षित व्यक्ति ही है जो समाज में नए परिवर्तनों को बढ़ावा दे सकता है। शिक्षित व्यक्ति को तकनीकों को समझने में आसानी हो सकती है और वह उसका प्रयोग कर सकता है। विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए मानव संसाधन का अत्यंत योगदान होता है।

4.1 जनसंख्या – बोझ या मानव पूंजी

किसी देश की जनसंख्या उस देश के लिए बोझ है या तरक्की का मार्ग? भारत और चीन जैसे देशों में अधिक जनसंख्या होने से हानि है या लाभ? इन प्रश्नों के उत्तर में ज़्यादातर लोग अधिक जंनसंख्या को बोझ ही बताएंगे, किंतु यदि यह जनसंख्या शिक्षित हो, प्रशिक्षित हो एवं

शारीरिक स्तर पर स्वस्थ हो तो वह उस देश के लिए अत्यंत बहुमूल्य सिद्ध हो सकती है। अधिक जनसंख्या से अधिक उत्पादकता हो सकती है, किंतु प्रभावकारी उत्पादकता के घटक हैं—शिक्षा, प्रशिक्षण एवं स्वस्थ शरीर।

टूल बाक्स– 1
जनसंख्या किसी देश, राज्य व क्षेत्र में किसी निर्धारित समय पर कुल लोगों की संख्या को जनसंख्या कहा जाता है।

4.2 मानव पूंजी

जिस प्रकार एक देश भौतिक संसाधनों को भौतिक पूंजी में परिवर्तित कर सकता है ठीक उसी प्रकार वह अपने मानव संसाधनों मानव पूंजी में परिवर्तित कर सकता है। ऐसा करने के लिए सही शिक्षा प्रणाली व प्रशिक्षण का होना आवश्यक है। समाज तथा देश के विकास के लिए मानव पूंजी की आवश्यकता है इस लक्ष्य को पाने के लिए जो ऐसे योग्य व्यक्ति चाहिए जो पहले स्वयं प्रशिक्षित हो तथा नई पीढ़ी को प्रशिक्षित करने में सक्षम हो तथा उस रूप में कार्य करने योग्य हों। देश को अन्य मानव पूंजी जैसे डॉक्टर, इंजीनियर आदि को तैयार करने के बेहतर प्रशिक्षक तथा प्रोफेसरों की आवश्यकता होती है। अतः मानव संसाधनों को मानव पूंजी के रूप में परिवर्तित करने के लिए मानव पूंजी में निवेश करने की आवश्यकता है।

टूल बाक्स –2
मानवपूंजी जनसंख्या को बेहतर बनाकर देश के विकास में योगदान को मानवपूंजी कहते हैं।

4.2.1 मानव पूंजी के स्त्रोत

(क) शिक्षा– हमारे माता पिता हमारी शिक्षा पर व्यय क्यों कर रहे हैं? व्यक्तियों द्वारा शिक्षा पर व्यय कुछ उसी प्रकार का खर्च है जैसे कोई कंपनी निश्चित अवधि में अपने दीर्घकालिक निश्चित लाभ को सुधारने के लिए पूंजीगत वस्तुओं पर करती है। इस शिक्षा से कोई भी व्यक्ति अपने भविष्य की आय को बढ़ाने के लिए शिक्षा पर निवेश करता है। शिक्षा की तरह स्वास्थ्य को भी किसी व्यक्ति के साथ–साथ देश के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आगत माना गया है।
(ख) चिकित्सा में निवेश– किसी कार्य को कौन व्यक्ति अच्छी तरह से कर सकता है एक बीमार व्यक्ति या स्वस्थ व्यक्ति चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में एक बीमार व्यक्ति कार्य करने के लायक नहीं होता। इससे उत्पादन में कमी आती है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वास्थ्य पर व्यय मानव पूंजी निर्माण का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है।
(ग) कार्य के दौरान प्रशिक्षण व प्रबंधन– कई उद्योग अपने कर्मचारियों के कार्य स्थल पर प्रशिक्षण में व्यय करती है। इसके कई तरीके हो सकते है। फर्म के अपने कार्य स्थल पर ही पहले से काम को जानने वाले कुशलकर्मी कर्मचारियों को काम सिखा सकते हैं। दूसरे कर्मचारियों को किसी अन्य संस्थान में प्रशिक्षण पाने के लिए भेजा जा सकता है। दोनों ही विधियों में संगठन अपने कर्मचारियों के प्रशिक्षण का कुछ व्यय वहन करती है। इसी कारण से फर्म इस बात पर जोर देगी कि प्रशिक्षण के बाद वे कर्मचारी एक निश्चित अवधि तक अवश्य संगठन के पास ही कार्य करें। इस प्रकार कंपनी प्रशिक्षण पर किए गए व्यय की उगाही अधिक उत्पादकता से हुए लाभ के रूप में कर पाने में सफल रहती है। कार्य के दौरान प्रशिक्षण पर

किया गया व्यय भी इस दृष्टि से मानव पूंजी का स्त्रोत बन जाता है। ऐसे खर्च की तुलना में श्रम उत्पादकता में वृद्धि से हुए लाभ कहीं अधिक होते हैं।

(घ) पलायन– कोई व्यक्ति अपने मूल स्थान की आय से अधिक आय वाले रोज़गार की तलाश में दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन का मुख्य कारण भी गांवों में बेरोज़गारी के कारण ही होता है। तकनीकी शिक्षा संपन लोग जैसे डॉक्टर आदि भी वेतनमान के लिए दूसरे देशों में चले जाते हैं। पलायनों की दोनों स्थितियों में परिवहन की लागत और उच्चतर निर्वाह लागत के साथ एक अनजाने सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में रहने की मानसिक लागते भी प्रवासी श्रमिकों को सहन करनी पड़ती है, किंतु नए स्थान पर उनको कमाई पलायन से जुड़ी लागतों से कही अधिक होती है। पलायन पर व्यय भी मानवीय पूंजी निर्माण का स्त्रोत है।

(ङ) सूचना– व्यक्ति श्रम बाजार तथा दूसरे बाजार जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए व्यय करते हैं। वे यह जानना चाहते हैं कि विभिन्न प्रकार के कार्यों में वेतनमान क्या है या फिर क्या शैक्षिक संस्थाएं सही प्रकार के कौशल में प्रशिक्षण दे रही है और किस लागत पर। यह जानकारी मानव पूंजी में निवेश करने से प्राप्त मानव पूंजी के भंडार का सही सदुपयोग करने की दृष्टि से बहुत उपयोगी होती है। इसीलिए श्रम बाजार तथा अन्य बाजारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने पर किया गया व्यय भी मानव पूंजी निर्माण का स्त्रोत है।

टूल बाक्स –3
मानवपूंजी के स्त्रोत
• शिक्षा • चिकित्सा • प्रशिक्षण • पलायन • सूचना

भौतिक पूंजी के आधार पर ही मानव पूंजी के वैचारिक आधार की रचना की गई है। दोनों प्रकार की पूंजी के बीच कुछ समरूपताएं और कुछ प्रभावशाली असमानताएं हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	जनसंख्या से क्या अभिप्राय है?
प्र.2	किसी देश कि अधिक जनसंख्या कब बोझ बन जाती है?
प्र.3	मानव पूंजी का क्या अर्थ है?
प्र.4	चिकित्सा मानव पूंजी का स्त्रोत कैसे है?

4.3 जनसंख्या और आर्थिक संवृद्धि

एक शिक्षत व्यक्ति का श्रम कौशल एक अशिक्षित व्यक्ति से अधिक होता है। इसी कारण वह अपेक्षाकृत अधिक आय अर्जित करता है इससे देश के विकास में सहयोग मिलता है तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। यही कारण है कि एक डाक्टर का राष्ट्रीय आय में योगदान एक मज़दूर से कहीं अधिक होगा यह स्वभाविक ही है कि किसी शिक्षित व्यक्ति का देश के विकास में योगदान अशिक्षित व्यक्ति से अधिक होता है। इसी प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति भी एक बीमार व्यक्ति की तुलना में अधिक समय तक बिना किसी रूकावट श्रम की पूर्ति कर सकता है। यह

वजह है कि स्वस्थ भी आर्थिक संवृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। अतः शिक्षित एवं स्वस्थय जनसंख्या उपार्जन क्षमता का संवर्धन करती है। मानव की सवंर्धित उत्पादकता या मानव पूंजी न केवल श्रम की उत्पादकता को बढ़ाती है, बल्कि यह साथ ही साथ परिवर्तन को प्रोत्साहित कर नवीन प्रौद्योगिकी का भी विकास करती है।

शिक्षा समाज में परिवर्तनों और वैज्ञानिक प्रगति को समझने में सहायक है। इसलिए शिक्षित श्रम शक्ति की उपलब्धता नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाने में सहायक होती है। मानव पूंजी की वृद्धि के कारण आर्थिक वृद्धि होती है।

टूल बाक्स –4
मानवपूंजी के आर्थिक मापन में समस्याएं
• शिक्षा का आर्थिक रूप से व्यक्त ना हो पाना • जनसंख्या के वास्तविक स्वास्थ्य स्तर का अज्ञान

भारत–जनसंख्या (2015) एक नजर	
कुल जनसंख्या – 1.27 अरब	
विश्व कि कुल जनसंख्या का प्रतिशत – 17.5 प्रतिशत	
जनसंख्या वृद्धि दर – 1.2 प्रतिशत	
औसत उम्र – 29 वर्ष	
जनसंख्या निर्भरता अनुपात – 0.4 प्रतिशत	
घनत्व – 383 व्यक्ति प्रति किलोमीटर स्केयर	
जन्म दर – 20.22 जन्म / 1000 जनसंख्या	
मृत्यु दर – 7.4	
जीवन प्रत्याशा – 65.89 वर्ष	
प्रजनन दर – 2.3	
उम्र संरचना	0–14 साल –31.2 प्रतिशत
	15–64 साल – 63.6 प्रतिशत
	65 से अधिक साल – 5.3 प्रतिशत
साक्षरता दर	74 प्रतिशत
गरीबी रेखा से नीचे की आबादी	22 प्रतिशत
बेरोजगारी दर	7.8 प्रतिशत

इसे सिद्ध करने के लिए कोई व्यावहारिक साक्ष्य अभी स्पष्ट नहीं है। इसका कारण मापन की समस्यायें हो सकती है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति कितने वर्ष स्कूल गया, राजकीय विद्यालयों में शिक्षक–शिक्षार्थी अनुपात और देश में स्कूल की नामांकन दर आदि के आधार पर शिक्षा का मापन उसकी गुणवता को आर्थिक रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार स्वास्थ्य

सेवाओं पर मौद्रिक व्यय, जीवन प्रत्याशा तथा मृत्यु दर आदि से देश की जनसंख्या के वास्तविक स्वास्थ्य स्तर का सही ज्ञान नहीं होता। यदि इन सूचकों का प्रयोग कर विकसित तथा विकासशील देशों में शिक्षा व स्वास्थ्य स्तरों प्रति व्यक्ति आय में सुधारों की तुलना करें तो हमें मानव पूंजी के परिवर्तनों में साहचर्य दिखायी पड़ता है किंतु प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में ऐसी कोई प्रवृति स्पष्ट नहीं होती। दूसरे शब्दों में विकासशील देशों में मानव पूंजी में बहुत तेज़ी वृद्धि से हो रही है, परंतु उनकी प्रतिव्यक्ति आय में उतनी तेज़ी से नहीं हो रही है। मानव पूंजी तथा आर्थिक संवृद्धि परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अर्थात एक ओर जहां प्रवाहित उच्च आय उच्च स्तर पर मानव पूंजी के सृजन का कारण बन सकती है तो दूसरी ओर उच्च स्तर पर मानव पूंजी निर्माण से आय की संवृद्धि में सहायता मिल सकती है।

4.4 भारत और मानवपूंजी

इस समय भारत का अधिकतम प्रतिशत जनसंख्या युवा है इसका अर्थ है। कि यदि इस वर्ग में सही निवेश किया जाता है तो राष्ट्र कि उन्नति में अत्यंत लाभकारी होगा। भारत की सातवीं पंचवर्षीय योजना में कहा गया था कि एक विशाल जनसंख्या वाले देश में विशेष रूप से मानव संसाधनों के विकास को आर्थिक विकास की युक्ति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान देना ही होगा। उचित शिक्षा तथा प्रशिक्षण से ही हम भारत की विशाल जनसंख्या आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने वाली परिसंपत्ति बन जाएगी। हम जानते हैं कि शिक्षा तथा स्वास्थ्य की देखभाल निजी तथा सामाजिक लाभों को उत्पन्न करती है। इसी कारण इन सेवाओं के बाजार में निजी और सार्वजनिक संस्थाओं का अस्तित्व है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य की देखभाल पर व्यय समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव डालते हैं और उन्हें आसानी से बदला नहीं जा सकता है। इसलिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य है। मान लीजिए जब भी किसी बच्चे को किसी स्कूल या फिर स्वास्थ्य केंद्र में भर्ती कराया जाता है और वहां आवश्यक सुविधाएं प्रदान नहीं की जाती है तो हम उस बच्चे को किसी अन्य संस्था में स्थानांतरित करने का निर्णय लेते हैं। इन सेवाओं के व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को सेवाओं की गुणवत्ताओं और लागतों के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं होती। इन परिस्थितियों में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करा रही संस्थाएं एकाधिकार प्राप्त कर लेती हैं और शोषण करने लगती हैं। यहां सरकार की भूमिका यह हो सकती है कि वह निजी सेवा प्रदायकों को उचित माानकों के अनुसार सेवाएं देने तथा उनकी उचित कीमत पर सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य करें।

हाल ही में भारतीय अर्थव्यवस्था पर दो स्वतंत्र अध्ययनों ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत अपनी मानव पूंजी निर्माण क्षमता के कारण बहुत तेजी से विकास कर पाएगा। ड्यूश नामक जर्मनी बैंक ने अपनी विश्व स्तरीय संवृद्धि रिपोर्ट में कहा है कि भारत 2020 तक विश्व के चार प्रमुख विकास केद्रों में से एक बनकर उभरेगा। उसी में आगे कहा गया, 'हमारा व्यावहारिक अन्वेषण इस मत का पक्षधर है कि आज की अर्थव्यवस्थाओं में मानव पूंजी उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में मानव पूंजी की वृद्धि का निर्णायक योगदान रहता है। भारत के संदर्भ में इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया है हमारी आशा है कि 2005–2020 की अवधि में भारत में 7 वर्ष से ऊपर शिक्षा के औसत वर्षों में 40 प्रतिशत की वृद्धि की संभावित है....।

विश्व बैंक ने अपनी एक ताजा रिपोर्ट भारत और ज्ञान अर्थव्यवस्था–शक्तियों और अवसरों का सदुपयोग मे कहा है कि भारत अपने आपको एक ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर सकता है, यदि यह भी उतने ज्ञान का प्रयोग करे, जितना आयरलैंड करता है तो निश्चय ही भारत की प्रतिव्यक्ति आय 2020 में वर्तमान अनुमान 1,000 अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 3,000 डॉलर हो सकती है। इस रिपोर्ट मे आगे कहा गया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था मे इस प्रकार के संक्रमण को संभव बनाने वाले सारे मुख्य तत्व जैसे सुचारू रूप से कार्य कर रहा लोकतंत्र तथा

विस्तृत एवं विविधतापूर्ण वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय आधारभूत संरचनाएं विद्यमान हैं। इस प्रकार इन दोनों ही रिपोर्टों में बताया गया है कि भारत मे आगे चलकर मानव पूंजी निर्माण ही इसकी अर्थव्यवस्था को आर्थिक संवृद्धि के उच्च पथ पर ले जाएगा। हाल ही में केंद्र सरकार ने भारतीय युवा वर्ग के कौशल का विकास करने के लिए 'स्किल डैवलैपमैंट योजना' का आरंभ किया है जिसके अंतर्गत युवा पीढ़ी को किसी भी कार्य में कुशल बनाने का प्रावधान है। इस तरह से पढ़े लिखे युवा कार्य प्रशिक्षण से राष्ट्र के विकास के सहयोग करेंगें।

टूल बाक्स –5
स्किल डैवलेपमैंट
प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 2014 में द्वारा शुरू की गई युवा वर्ग के प्रशिक्षण कि योजना।

4.5 मानव पूंजी और मानव विकास

ये दोनों पारिभाषिक शब्द मिलते–जुलते भले ही प्रतीत होत है, पर इनके बीच स्पष्ट अंतर है। मानव पूंजी की अवधारणा शिक्षा और स्वास्थ्य को श्रम की उत्पादकता बढ़ाने का माध्यम मानती है। मानव विकास इस बात आधारित है कि शिक्षा तथा स्वास्थ्य मानव कल्याण के अभिन्न अंग हैं, क्योंकि जब लोगों को शिक्षा तथा सुदीर्घ स्वस्थ जीवन यापन की क्षमता आती है तभी वह ऐसे अन्य चयन करने में सक्षम हो पाते है, जिन्हें वे महत्वपूर्ण मानते है। मानव पूंजी का विचार मानव को किसी साध्य की प्राप्ति का साधन मानता है। यह साध्य उत्पादकता में वृद्धि का है। इस मतानुसार शिक्षा और सेवाओं के निर्गत में वृद्धि न हो। मानव विकास से श्रम की उच्च उत्पादकता में सुधार नहीं हो, किंतु इनके माध्यम से मानव कल्याण का संवर्धन तो होना ही चाहिए। अतः श्रम की उत्पादकता में सुधार के पक्ष को अनदेखा करते हुए भी बुनियादी शिक्षा और बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का अपना अलग महत्व हो जाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का बुनियादी शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं पर अधिकार सिद्ध हो जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज के प्रत्येक सदस्य को साक्षर तथा स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार होता है।

भारत में शिक्षा क्षेत्र के अंतर्गत संघ और राज्य स्तर पर शिक्षा मंत्रालय तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद आती है। स्वास्थ्य क्षेत्र के अंतर्गत संघ और राज्य स्तर पर स्वास्थ्य मंत्रालय और विभिन्न संस्थाओं के स्वास्थ्य विभाग तथा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद आदि कार्य कर रही हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में जहां जनसंख्या का एक विशाल वर्ग गरीबी रेखा से नीचे जीवन बिता रहे हैं, हममें से कई लोग बुनियादि शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं पर पर्याप्त व्यय नहीं कर सकते हैं। यही नहीं हमारी अधिकांश जनसंख्या अति विशिष्ट स्वास्थ्य देखभाल और उच्च शिक्षा का भार वहन नहीं कर पाती। जब बुनियादि शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को नागरिकों का अधिकार मान लिया जाता है तो यह जरूरी है कि सभी नागरिकों को विशेषकर सामााजिक दृष्टि से दलित तथा गरीब वर्गों को सरकार निःशुल्क सेवाएं प्रदान करे। शत प्रतिशत साक्षरता और भारतीयों की औसत उपलब्धियों में प्राप्त वृद्धि के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारे पिछले कई वर्षों से अपने शिक्षा तथा स्वास्थ्य क्षेत्र पर व्यय में वृद्धि करती आ रही हैं।

सरकार द्वारा किए गए शिक्षा पर कुल व्यय को अधिक सार्थक रूप से समझने के लिए हम इस खर्च को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है– (क) कुल सरकारी व्यय में इसका प्रतिशत तथा (ख) सकल घरेलू उत्पाद में इसका प्रतिशत।

कुल सरकारी खर्च में शिक्षा पर व्यय का प्रतिशत सरकारी योजनाओं में शिक्षा के महत्व का सूचक है। सकल घरेलू उत्पाद में शैक्षिक खर्च को प्रतिशत यह व्यक्त करता है कि हमारी आय का कितना भाग देश की शिक्षा के विकास के लिए खर्च हो रहा है। 1952 से 2010 के बीच कुल

सरकारी व्यय में शिक्षा पर व्यय 7.92 प्रतिशत से बढ़कर 11.1 प्रतिशत हो गया है। इस संपूर्ण समयाधि में शैक्षिक व्यय मे वृद्धि समान नहीं रही है। इसमे अनियमित रूप से उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। यदि इस सरकारी खर्च के साथ हम व्यक्तियों के द्वारा किया गया निजी व्यय तथा परोपकारी संस्थाओं के शैक्षिक खर्च को शामिल कर लें तो शिक्षा पर कुल खर्च का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्राथमिक शिक्षा पर खर्च होता है। उच्चतर शैक्षिक संस्थाओं पर होने वाले खर्च सबसे कम है। यद्यपि औसत रूप से सरकार उच्च शिक्षा पर बहुत कम खर्च करती है, लेकिन उच्च शिक्षा पर खर्च प्राथमिक शिक्षा की तुलना मे अधिक आता है। जैसे–जैसे हम विद्यालय शिक्षा का प्रसार करेगें, वैसे–वैसे हमें उच्च शैक्षिक संस्थाओं से प्रशिक्षित और अधिक शिक्षकों की आवश्यकता होगी। इसलिए शिक्षा के सभी स्तरों पर व्यय में वृद्धि करना चाहिए। वर्ष 2005 में राज्यों में होने वाले प्रतिव्यक्ति शिक्षा खर्च में काफी अंतर है। जहां हिमाचल प्रदेश में इसका उच्च स्तर 2005 रु. है वहीं बिहार में यह मात्र 515 रु. है। इस प्रकार की विषमताओं के कारण ही विभिन्न राज्यों में शिक्षा के अवसरों और शैक्षिक उपलब्धियों के स्तर में बहुत भारी अंतर हो जाता है।

टूल बाक्स –6
शिक्षा का अधिकार–2009
जनसंख्या के चहुमुखी विकास का आधार है शिक्षा। 2009 में सविंधान के तहत 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का अधिकार दिया गया।

विभिन्न आयोगों के द्वारा शिक्षा खर्च के स्तर के साथ यदि शिक्षा खर्च के साथ तुलना की जाए तो इसकी अपर्याप्तता समझ में आ सकती है। 1964–66 में नियुक्त शिक्षा आयोग ने सिफारिश की थी कि शैक्षिक उपलब्धियों की वृद्धि दर में उल्लेखनीय सुधार लाने के लिए सकल घरेलू सुधार का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए। वर्ष 2009 में भारत सरकार ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम का कानून बनाया है, जिसके अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाती है। 1998 में भारत सरकार द्वारा नियुक्त तापस मजूमदार समिति के अनुमान लगाया था कि देश के 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को स्कूली शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने के लिए के दस वर्षों की अवधि में लगभग 1.3 लाख करोड़ रु. खर्च करना होगा। सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत की तुलना में 4 प्रतिशत का खर्च का स्तर बहुत कम है। आने वाले वर्षों में 6 प्रतिशत के लक्ष्य तक पहुंचने की आवश्यकता है, जैसा कि सिद्धांत रूप में स्वीकार किया गया है। हाल ही भारत सरकार ने सभी केंद्रीय करों पर 2 प्रतिशत शिक्षा कर लगाना प्रारंभ किया है। शिक्षा कर से प्राप्त राजस्व को प्राथमिक शिक्षा पर खर्च करने के लिए सुरक्षित रखा है। साथ ही सरकार ने उच्च शिक्षा संवर्धन के लिए भी एक विशाल धन राशि स्वीकार करने की बात की है। उच्च शिक्षा के लिए एक नई ऋण योजना की भी घोषणा की गई है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	जनसंख्या का आर्थिक समृद्धि में क्या योगदान है?
प्र.6	शिक्षा से राष्ट्र में आर्थिक विकास कैस संभव है ?
प्र.7	यदि सरकार द्वारा मुफ्त स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं तो क्या राष्ट्र समृद्व होगा?
प्र.8	जनसंख्या में निवेश कैसे संभव है?

भारत में सब के लिए शिक्षा अभी भी एक सपना ही है। हालांकि बच्चों तथा बड़ों की साक्षरता दर में सुधार हो रहा है, किंतु आज भी देश में निरक्षरों की संख्या उतनी ही है जितनी आज़ादी के समय भारत की जनसंख्या थी। भारत की संविधान सभा ने 1950 में संविधान को पारित करते समय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में स्पष्ट किया था कि सरकार संविधान पारित होने के

दस साल के अंदर 14 वर्ष की आयु के बच्चों के निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करेगी। इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेते तो अब तक शत–प्रतिशत साक्षरता हो गई होती।

लिंग समता पहले से बेहतरः–

अब साक्षरता में पुरूषों और महिलाओं के बीच का अंतर कम हो रहा है जो लिंग समता की दिशा में एक सकारात्मक विकास है। नारी शिक्षा को भारत में और प्रोत्साहन दिए जाने के कई कारण है। जैसे–शिक्षा नारी की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक स्तर में सुधार और साथ ही स्त्री शिक्षा, प्रजनन दर और स्त्रियों व बच्चों के स्वास्थ्य देखभाल पर अनुकूल प्रभाव डालती है। इसलिए साक्षरता स्तर को सुधारने के अपने प्रयासों मे कमी नहीं आने देनी चाहिए। अभी हमें शत–प्रतिशत वयस्क साक्षरता दर प्राप्त करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए इसके लिए हमे कई कठिनाइयों को अभी पार करना बाकी है।

उच्च शिक्षा लेने वालों की कमीः–

भारत में शिक्षा का पिरामिड बहुत ही नुकीला है जो हमें यह दिखाता है कि उच्च शिक्षा का स्तर तक बहुत कम लोग ही पहुंच पाते हैं। यही नहीं शिक्षित लोगों की बेरोज़गारी दर भी उच्चतम है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के आकड़ों के अनुसार शिक्षा प्राप्त युवाओं में वर्ष 2007–08 में बेरोज़गारी दर 18.1 प्रतिशत थी। जबकि केवल प्राथमिक शिक्षा प्राप्त वर्ग में बेरोज़गारी मात्र 11.6 प्रतिशत पायी गई। अतः सरकार को उच्च शिक्षा के लिए अधिक धन का आबंटन करना चाहिए तथा उच्च शिक्षा संस्थानों के स्तर में सुधार लाना चाहिए, ताकि पढ़े रहे छात्र रोज़गार योग्य कौशल प्राप्त कर सकें।

सारांश

ऐसा जरूरी नहीं कि अधिक जनसंख्या किसी राष्ट्र पर बोझ हो। मानव पूंजी तथा मानव विकास के आर्थिक सामाजिक लाभों से तो सभी परिचित हैं। भारत में केंद्र और राज्य सरकारें शिक्षा तथा स्वास्थ्य क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था का प्रावधान करती आ रही हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं समाज के सभी वर्गों को सुनिश्चित रूप से सुलभ कराई जानी चाहिए, ताकि आर्थिक संवृद्धि के साथ–साथ समता की प्राप्ति भी हो सके। भारत के पास वैज्ञानिक और तकनीकी जन–शक्ति है। समय की मांग है कि गुणात्मकता में सुधार करें तथा इस प्रकार की परिस्थितियों का भी निर्माण करें कि उन्हें अपने देश में पर्याप्त रूप से प्रयुक्त किया जा सकें।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 किसी देश में मानवीय पूंजी के दो प्रमुख स्त्रोत क्या होते हैं?

प्र.2 किसी देश की शैक्षिक उपलब्धियों के दो सूचक क्या होंगे?

प्र.3 भारत में शैक्षिक उपलब्धियों में क्षेत्रीय विषमताएं क्यों दिखाई दे रही है?

प्र.4 मानव पूंजी निर्माण और मानव विकास के भेद को स्पष्ट करें?

प्र.5 मानव पूंजी की तुलना में मानव विकास किस प्रकार से अधिक व्यापाक है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 मानव पूंजी के निर्माण में किन कारकों का योगदान रहता है?

प्र.7 सरकारी संस्थाएं भारत में किस प्रकार स्कूल एवं अस्पताल की सुविधाएं उपलब्ध करवाती है?

प्र.8 शिक्षा को किसी राष्ट्र के विकास में एक महत्वपूर्ण आगत माना जाता है क्यों?

प्र.9 पूंजी निर्माण के निम्नलिखित स्त्रोतों पर चर्चा कीजिए?

(क) स्वास्थ्य आधारिक संरचना (ख) प्रवसन पर व्यय

प्र.10 मानव संसाधनों के प्रभावी प्रयोग के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा पर व्यय संबंधी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता का निरूपण करें।

प्र.11 मानव पूंजी में निवेश आर्थिक संवृद्धि में किस प्रकार सहायक होता है?

प्र.12 पता करें कि मानव विकास सूचक की रचना कैसे की जाती है। मानव विकास सूचक के अनुसार भारत की विश्व में क्या स्थिति है?

प्र.13 क्या निकट भविष्य में भारत एक ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था बनने जा रहा है?

खंड–2
इकाई–5 गरीबी

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
5.0 प्रस्तावना
5.1 गरीबी तथा गरीबी रेखा का अर्थ
5.2 भारत में गरीबी की प्रवृति और आकार
5.3 गरीबी के कारण
5.4 गरीबी दूर करने के उपाय
5.5 सरकार के गरीबी उन्नमूलन कार्यक्रम
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- गरीबी व गरीबी रेखा का अर्थ
- सापेक्ष व निरपेक्ष निर्धनता व उनमें अंतर
- भारत में गरीबी का आकार और प्रवृत्ति
- गरीबी के कारण
- गरीबी दूर करने के उपाय
- सरकार द्वारा गरीबी दूर करने के लिए उठाए कदम
- अगली योजना व गरीबी दूर करने के उपाय

5.0 प्रस्तावना

गरीबी समाज में सबसे बड़ी चुनौती है जो भारत जैसे अल्पविकसित देश को सहन करनी पड़ रही है। यह मानवता पर एक अभिशाप है तथा सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि इसकी प्रकृत्ति संचयी होती है। यह समाज के वर्ग को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे अनाज, कपड़े, आवास, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से वंचित रखती है।

गरीबी वास्तव में सामाजिक व आर्थिक बुराई है जो असमानता के साथ निकट संबंध रखती है। यह मानव जीवन की कुशलता तथा उत्पादकता को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करती है जो उनकी आय को निम्न रखती है। इसीलिए एक निर्धन, निर्धन ही रहता है और वह निर्धनता के दुष्चक्र में ही फंसा रहता है।

5.1 गरीबी तथा गरीबी रेखा का अर्थ

"गरीबी एक सामाजिक बुराई है जिससे समाज का एक वर्ग अपनी आधारभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता।" न्यूनतम आवश्यकताएं अनाज, कपड़े, घर, शिक्षा तथा अन्य आधारभूत मानवीय आवश्यकताएं है। मनुष्य को यदि इन न्यूनतम आवश्यकतों का स्तर भी प्राप्त न हो तो उसे दुःख तथा कष्ट होता है।

"गरीबी रेखा आय वितरण में एक ऐसा विभाजन बिंदु है जो जनसंख्या निर्धन तथा गैर–निर्धन वर्ग में बांटता है।" गरीबी रेखा के नीचे लोग निर्धन कहलाते हैं तथा इससे ऊपर मध्य वर्ग तथा धनी वर्ग होता है। गरीबी रेखा इस प्रकार आय वितरण की असमानता से निकली धारणा है यद्यपि आय अथवा व्यय का यह विभाजन बिंदु विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार से निर्धारित होता है।

टूल बाक्स – 01
भारतीय नियोजन आयोग के अनुसार "गरीबी रेखा न्यूनतम पौष्टिकता स्तर के आधार पर प्रति व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी लेकर ,खींची गई है।"

5.1.1 गरीबी रेखा निर्धारित करने का ढंग

निर्धनता रेखा आय वितरण अथवा निजी उपभोग व्यय स्तर के आधार पर भी निर्धारित की जा सकती है परंतु आमतौर पर निजी उपभोग व्यय को ऐसा मापने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसे निम्न ढंग से निर्धारित किया जाता हैः–

(i) रहने के लिए निम्न पौष्टिक स्तर निर्धारित करो।

(ii) न्यूनतम कैलोरिज प्राप्त करने के लिए, खरीदी जाने वाली वस्तुओं की लागत की गणना करो।

(iii) न्यूनतम कैलोरिज प्राप्त करने के लिए प्रति व्यक्ति, उपभोग व्यय निर्धारित करो

(iv) ऐसा उपभोग व्यय गरीबी रेखा कहलाता है।

अन्य लोगों के अनुसार, "वह व्यक्ति जो ग्रामीण क्षेत्र में 229 रूपये तथा 264 रूपयें शहरी क्षेत्र में (1993–94 की कीमतों पर) खर्च करते हैं गरीबी रेखा पर आते हैं। इसके नीचे व्यय करने वाले लोग गरीब कहलाते हैं।"

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं आमतौर पर एक डॉलर तथा दो डालर प्रतिदिन के आधार बना कर गरीबी रेखा की परिभाषा देते है। "जिनकी आय 2 डालर प्रतिदिन से कम है वह गरीब व्यक्ति है तथा जिनकी आय एक डालर प्रतिदिन से भी कम है वह अति गरीब है।"

दादा भाई नौरोजी ने निर्धनता रेखा की परिभाषा जेल में रहने की लागत स्वीकार की है। लोगों को अपने दैनिक जीवन मे कम–से–कम वह सुविधाएं अवश्य मिलनी चाहिए जो एक कैदी को जेल में मिलती है। व्यय के इस स्तर से कम निर्धनता का शाप होता है।

टूल बाक्स – 02
गरीबी रेखा
गरीबी रेखा के नीचे लोग गरीब कहलाते हैं। इससे ऊपर मध्य वर्ग व धनी वर्ग का होता है। इस प्रकार आय का तीन प्रकार का विवरण होता है।

गरीबी रेखा के प्रकार

(क) सापेक्ष निर्धनता

यह विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों तथा विभिन्न देशों के तुलनात्मक अध्ययन को संबोधित करती है। वह देश अथवा वर्ग जिसका जीवन रहन–सहन का स्तर, ऊंचे रहन–सहन के स्तर में रहने वाले लोगों से निम्न है, उन्हें निर्धन अथवा सापेक्ष रूप से निर्धन स्वीकार किया जाता है। 2014 में प्रकाशित वर्ल्ड रिपोर्ट ने कुछ देशों के समंक इस प्रकार से प्रस्तुत किए है।

कुछ चुने देशों की प्रति व्यक्ति आय (डॉलर में)

देश	प्रति व्यक्ति आय(डॉलर में)
जर्मनी	38980
जापान	43740
यू.एस.ए.	34580
यू.के.	37600
चीन	1740
भारत	720

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	गरीबी रेखा का अर्थ बताएं?
प्र.2	एक सामान्य व्यक्ति के लिए न्यूनतम पौष्टिकता कितनी होनी चाहिए?
प्र.3	गरीबी रेखा कितने प्रकार की होती है?

इन समंको से हम सुरक्षित ढ़ंग से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत जैसे देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका जैस देशों की तुलना में काफी कम है। इसलिए भारत विकसित देशों की तुलना में एक गरीब देश है। इसीलिए इसे एक अल्पविकसित देश स्वीकार किया जाता है।

(क) निरपेक्ष निर्धनता

निरपेक्ष निर्धनता समाज के उस वर्ग को संबोधित करती है जिसके पास जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं भी नहीं होती अथवा वह जीवन के न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने में असफल रहते हैं। इसे निम्न दो विधियों के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है :—

(i) न्यूनतम कैलोरिज विधि

(ii) न्यूनतम उपभोग व्यय विधि

(i) न्यूनतम कैलोरिज विधिः—योजना आयोग 1977 ने निर्धनता रेखा को कैलोरिज के उपभोग के आधार पर परिभाषित किया। कैलोरिज की प्राप्ति अनाज संबंधी वस्तुओं के उपभोग पर निर्भर करती है। इसने 2400 कैलोरिज प्रति दिन प्रति व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र के लिए तथा 2100 कैलोरीज प्रति व्यक्ति प्रतिदिन शहरी क्षेत्र के लिए परिभाषित की। इस स्तर के नीचे उपभोग करने वाले लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं।

टूल बाक्स — 03
सापेक्ष व निरपेक्ष गरीबी रेखा
सापेक्ष गरीबी रेखा से अभिप्राय यह विभिन्न वर्गों क्षेत्र व देशों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। निरपेक्ष गरीबी रेखा से अभिप्राय है जिसमें जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नहीं होती।

नई गरीबी रेखा के आधार पर

वर्ष	गरीब की संख्या	गरीबी की प्रतिशत
1960—61	17 करोड़	34
1970—71	25 करोड़	46
1980—81	33.5 करोड़	48
1990—91	31.5 करोड़	36
1999—2000	26 करोड़	26
2009—10	35.46 करोड़	29.8
2011—12	26.93 करोड़	21.9

(ii) न्यूनतम उपभोग व्यय विधिः—भारत में गरीबी निर्धारित करने के बहुत से अनुमान प्रति व्यक्ति, प्रति मास न्यूनतम उपभोग व्यय पर आधारित है। यह ग्रामीण तथा शहरी वर्ग के लिए अलग–अलग राशि होती है। 1993–94 की कीमतों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए न्यूनतम उपभोग व्यय 229.80 रूपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए प्रति व्यक्ति व्यय 264 रू. निर्धारित किया गया है। इस स्तर के नीचे रह रहे लोग गरीबी रेखा से नीचे स्वीकार किए जाते है।

निरपेक्ष और सापेक्ष निर्धनता में अंतर

इन दोनों में अंतर निम्नलिखित हैः–

निरपेक्ष गरीबी	सापेक्ष गरीबी
1. अर्थ के आधार पर–इसका अभिप्राय उन लोगों की कुल संख्या से है, जो गरीबी रेखा से नीचे रहते है। 2. माप के आधार पर–इसे दो आधार पर मापा जा सकता है– (a) मासिक उपभोग व्यय मापदंड (b) कैलोरीज मापदंड	1. अर्थ के आधार पर–यह दो समाजों या राष्ट्रों के बीच तुलनात्मक अध्ययन है। 2. माप के आधार पर– इसे भी दो आधार पर मापा जा सकता है– (a) तुलना के आधार पर (b) प्रति व्यक्ति आय के रूप में डॉलर मापदंड

5.2 भारत में गरीबी की प्रवृत्ति और आकार

भारत में गरीबी का अनुमान जनगणना अनुपात के आधार पर किया जाता है। गरीबी का अनुमान 1973–74 से उपभोग व्यय (तुलनात्मक प्रतिदर्श सर्वेक्षणों से प्रतिदर्श विधि) विधि द्वारा लगाया गया है। योजना आयोग ने गरीबी के कई अनुमान लगाए हैं। गरीबी का अनुमान प्रकृति और आकार के आधार पर निम्न प्रकार से लगाया जा सकता हैः–

गरीबी की प्रवृत्तिः–पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी को समाप्त करने के लिए अनेक कार्यक्रम लागू किए गए, परंतु फिर भी गरीबों की संख्या में वृद्धि होती गई। भारत में 1973–74 में 32.1 करोड़ लोग निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे थे। सन् 1973 से 1993 के दशकों तक गरीबों की संख्या लगभग स्थिर रही, परंतु 1999–2000 में गरीबों की संख्या कम होकर 26 करोड़ और 2009–10 में यह बढ़कर 35.46 करोड़ हो गई। ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों की संख्या शहरी क्षेत्रों से अधिक रही, परन्तु 1999–2000 में दोनों क्षेत्रों में गरीबों की संख्या में कमी हुई है।

दसवीं पंचवर्षीय योजनाः– इस योजना में अंतिम वर्ष 2007 तक गरीबों की संख्या को कम करके 22 करोड़ तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

भारत में राज्य स्तर पर गरीबी की प्रवृत्ति

भारत में विभिन्न राज्यों में गरीबों की संख्या विभिन्न है। यह अनुमान लगाया गया है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उतरांचल, मध्यप्रदेश इत्यादि राज्यों में अन्य राज्यों की अपेक्षा गरीबों की संख्या अधिक है। प्रतिशत के हिसाब से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत बिहार में सबसे अधिक है और पंजाब में सबसे कम है।

टूल बाक्स – 04
गरीबी की प्रवृत्ति साल 1999–2000 गरीबों की संख्या में कमी आई थी पंजाब में सबसे कम व बिहार में अपेक्षानुसार अधिक गरीबी पाई गई।

भारत के विभिन्न राज्यों में गरीबी की प्रवृति

अधिक गरीबी वाले राज्य	कम गरीबी वाले राज्य

बिहार = 33.7% उड़ीसा = 32.6% मध्य प्रदेश = 31.7% उत्तर प्रदेश = 29.4%	पंजाब = 8.3% हरियाणा = 11.2% हिमाचल प्रदेश = 14.7%

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	सापेक्ष व निरपेक्ष गरीबी रेखा में अंतर बताएं?
प्र.5	सन 1999–2000 में गरीबी कितनी थी क्या यह 2009–10 से कम हुई है?
प्र.6	भारत में गरीबी किस राज्य में अधिक है?

5.2.1 गरीबी का आकार

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार का मुख्य लक्ष्य गरीबी को कम करना रहा है। इसके लिए विभिन्न योजनाओं में काफी व्यय किया जाता गया फिर भी 2011–2012 में 21.9% जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रही है।

वास्तव में 1973–74 में गरीबी को प्रतिशत 54.9 था, यह 1999–2000 में कम होकर 26% रह गया। किंतु 2004–05 में कुल गरीबी के प्रतिशत में भी आधे से अधिक की कमी हुई।

भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत या गरीबी का आकार

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	भारत
1973–74	26.1	6.0	32.1
1987–88	23.2	7.5	30.7
1993–94	24.4	7.6	32.0
1999–2000	19.3	6.7	26.0
2004–05	21.8	21.7	21.8
2009–10	–	–	29.8
2011–12	25.7	13.7	21.9

5.3 गरीबी के कारण

भारत में व्याप्त गरीबी के कारण निम्नलिखित हैं:–

(क) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि:–भारत में जनसंख्या का भार बहुत अधिक है। जनसंख्या की दर 1.9% वार्षिक रही है अर्थात देश में प्रतिवर्ष 1 करोड़ 70 लाख तक जनसंख्या बढ़ जाती है। अब हमारे देश की जनसंख्या बढ़ते–बढ़ते विस्फोटक स्थिति तक पहुंच चुकी है। इस वृद्धि का परिणाम यह हुआ कि प्रति व्यक्ति आय कम हुई है। परिणामस्वरूप देश में गरीबी बढ़ रही है।

(ख) पूंजी का अभाव:– भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण लोगों की बचत करने की क्षमता कम है। परिणामस्वरूप देश में पूंजी का अभाव है। पूंजी के अभाव में न तो कृषि का विकास ही संभव होता है और न ही उद्योगों का विकास। पूंजी निर्माण कम होने के कारण देश में उत्पादन–स्तर और आय–स्तर बहुत नीचा है। इस प्रकार पूंजी का अभाव गरीबी का कारण रहा है।

(ग) प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग न होनाः—भारत में प्राकृतिक साधनों की प्रचुर मात्रा है, परंतु पूंजी के अभाव, उद्यम की कमी तथा तकनीकी ज्ञान के उपलब्ध न होने के कारण देश के इन प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत निम्न रहा है और यह देश की गरीबी का कारण बना है।

(घ) आय का असमान वितरणः—भारत में आय का असमान वितरण है। 57 वर्षों के आयोजन के बावजूद भी देश में अमीर तथा गरीब का अंतर बढ़ता जा रहा है। देश में केवल 20 औद्योगिक घरानों के हाथों में देश की आधे से अधिक संपत्ति है, जबकि अधिकांश लोग दरिद्रता और गरीबी से जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(ङ) कीमतों में वृद्धिः—भारत में सामान्य कीमत स्तर बढ़ता जा रहा है। जब कीमतें बढ़ती हैं तो मुद्रा की क्रय शक्ति घट जाती है। परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग में गरीबी और बढ़ जाती है। भारत में पिछले अनेक वर्षों से बराबर ऐसा हो रहा है और रूपये का मूल्य घटता जा रहा है। इस प्रकार स्फीतिक दशाओं ने भारत की गरीबी को और बढ़ाया है।

(च) विकास की धीमी गतिः—भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की दर बहुत निम्न रही है। आयोजन काल के 57 वर्षों तक औसतन विकास की दर केवल 3.5% से 5% वार्षिक के बीच रही है। योजना काल में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर मात्र 2 प्रतिशत रही जो कि बहुत कम है।

(छ) बेरोज़गारीः—भारत की निर्धनता का एक प्रमुख कारण बेराज़गारी की समस्या है। भारत के शहरों तथा गांवो में खुली व छिपी हुई बेरोज़गारी आमतौर से देखने को मिलती है। रोज़गार कार्यालयों में पंजीकृत बेराज़गारों की संख्या एक करोड़ से भी अधिक है। भारत में इस समय लगभग 6 करोड़ व्यक्ति बेरोज़गार हैं।

(ज) कृषि का पिछड़ापनः—कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पेशा है। देश के 65% लोग कृषि पर आश्रित है और जनसंख्या में वृद्धि के साथ—साथ कृषि पर जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में कृषि उपज बहुत कम होती थी और भारतीय कृषि की अवस्था बहुत पिछड़ी हुई थी। कृषि के पिछड़ेपन के कारण प्रति एकड़ उपज बहुत कम होती है और कृषकों की प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम रह जाती है। परिणामस्वरूप देश में गरीबी बढ़ती है।

(झ) औद्योगिक पिछड़ापनः— भारत की अर्थव्यवस्था असंतुलित और एकांकी है अर्थात यह मुख्यतः कृषि प्रधान है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता के कारण देश की अर्थव्यवस्था अनिश्चित तथा कमजोर रही है। ब्रिटिश शासनकाल में उनकी स्वार्थी नीति के परिणामस्वरूप उद्योगों का विकास नहीं हुआ, बल्कि बहुत से भारतीय उद्योग नष्ट हो गए। हमारे देश में भारी और मूलभूत उद्योगों का अभाव रहा है। इन उद्योगों के अभाव से न केवल धनोत्पादन, रोजगार एवं व्यापार आदि पिछड़ी अवस्था में रहे हैं और देश गरीब रहा है, बल्कि औद्योगिक पिछड़ापन कृषि के पिछड़ेपन का भी कारण रहा है।

(ञ) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणालीः—भारत में अधिकांश लोग अनपढ़ हैं और शिक्षित लोगों को भी ठीक प्रकार की शिक्षा नहीं मिली है। यहां की शिक्षा प्रणाली रोज़गार प्रेरक नहीं है। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा पाने के बाद भी व्यक्ति बेरोज़गार रहता है।

(ट) राजनीतिक कारणः—भारत की गरीबी का एक महत्वपूर्ण कारण राजनीतिक रहा है। लगभग 200 वर्षो के ब्रिटिश शासन तथा अंग्रज़ों द्वारा औपनिवेशिक नीति ने देश की अर्थव्यवस्था को असहाय, क्षीण एवं गरीब बना दिया। उन्होंने ऐसी नीति अपनाई कि भारतीय उद्योग नष्ट हो गए। औद्योगिक विकास और कृषि विकास कार्यों की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया तथा विभिन्न तरीकों से भारतीय संपत्ति को लूटकर इंग्लैंड ले गए और अंत में भारत बहुत गरीब और आश्रित देश बनकर रह गया।

(ठ) सामाजिक कारणः— सामाजिक कारण भी भारत की गरीबी का महत्वपूर्ण तत्व रहा है। भारतवर्ष अनेक जातियों, भाषाओं और धर्मों वाला देश है, परिणामस्वरूप यहां अलग—अलग सामाजिक संस्थाएं है जो अनेक रीति—रिवाजों, रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास से ग्रस्त है। संयुक्त परिवार के कारण परिश्रम का हनन हुआ, उत्तराधिकार के नियम के कारण कृषि में उपविभाजन

तथा विखंडन की समस्या पैदा हुई। धार्मिक विचार, भाग्यवादिता तथा पर्दा–प्रथा के कारण देशवासी धनोत्पादन कार्यों में पूर्ण योगदान नहीं दे पाते। इन सब कारणों से देशवासी गरीब रहे हैं। अतः भारत गरीबी के दुष्चक्रों में फंसा हुआ है।

5.4 गरीबी निवारण के सुझाव या गरीबी को दूर करने के उपाय

भारत की गरीबी को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:–

(क) जनसंख्या पर नियत्रणः–गरीबी को दूर करने के लिए जनसंख्या नियत्रण अति आवश्यक है। जनसंख्या नियत्रण के लिए परिवार नियोजन एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह अति आवश्यक है कि लोगों को परिवार नियोजन उपायों के बारे में शिक्षित करके जनसंख्या पर नियत्रण किया जाए।

(ख) उत्पादन में वृद्धिः– गरीबी की समस्या का वास्तविक हल यह है कि सभी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया जाए। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि–सुधार किए जाएं, उन्नत बीज, रासायनिक खाद, उन्नत कृषि यंत्रों का प्रयोग और सिंचाई के साधनों की सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पादन की आधुनिक विधियों को अपनाना चाहिए तथा देश में कुटीर एवं लघु उद्योगों को विकास करना चाहिए, ताकि शीघ्र उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ रोज़गार के अवसर निकल सकें।

(ग) आय का समान वितरणः–गरीबी निवारण के लिए देश में आय और संपत्तित का समान वितरण होना चाहिए। आय की असमानताओं का प्रमुख कारण लोगों को कार्य करने के समान अवसरों का न मिलना है। अतः आय के समान वितरण के लिए गरीब व्यक्तियों को रोज़गार के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। सरकार को अधिकतम आय की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए तथा न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देनी चाहिए। सरकार प्रगतिशील कर प्रणाली तथा सार्वजनिक व्यय नीति में अनुकूल परिवर्तन करके आय तथा धन की असमानताओं को कम करती है।

(घ) पूंजी निर्माणः– विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाने के लिए देश में बचत और निवेश की दरों को बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों में फिजूलखर्ची की आदत को रोका जाए तथा निवेश के अधिक अवसर प्रदान किए जाएं। पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने से आर्थिक विकास की दर तीव्र होगी, राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी और देश की गरीबी दूर होगी।

(ङ) शिक्षा–प्रणाली में परिवर्तनः–देश में शिक्षा का प्रसार करना चाहिए। शिक्षा का प्रसार करके जन जागृति लाई जा सकती है। शिक्षा व्यक्ति को केवल विवकेशील ही नहीं बनाती, बल्कि व्यक्ति के दृष्टिकोण को भी व्यापक बनाती है। शिक्षित व्यक्तियों को आसानी से रोज़गार मिल सकता है। वे अपनी आय के स्तर को बढ़ा सकते हैं तथा अन्त में उच्च रहन सहन का स्तर प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए शिक्षा प्रणाली में मौलिक परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा रोज़गार प्रेरक होनी चाहिए तथा उच्च शिक्षा केवल मेधावी छात्रों के लिए सुरक्षित होनी चाहिए।

(च) उपयुक्त वातावरणः–देश में से गरीबी दूर करने के लिए यह अति आवश्यक है कि सामाजिक वातावरण को आर्थिक विकास के अनुकूल बनाया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों को शिक्षित किया जाए। उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील तथा वैज्ञानिक हो, जाति–प्रथा के दोष, सामाजिक कुरीतियां अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता दूर हो। यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक, प्रशासनिक एवं वैज्ञानिक व्यवस्थाएं आर्थिक विकास के अनुकूल हो।

(छ) कीमत वृद्धि पर रोकः– यदि कीमत वृद्धि का वर्तमान सिलसिला चलता रहा तो देश प्रतिदिन गरीब होता चला गया जाएगा। इसलिए बढ़ रही कीमतों पर तुरंत रोक लगाने की आवश्यकता है। इसके लिए काले धन पर रोक, कृषि तथा उपभोगता पदार्थो में वृद्धि, सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाना, जमाखोरी और चोर–बाजारी पर नियत्रण किया जाना चाहिए।

(ज) रोज़गार में वृद्धिः–गरीबी का मुख्य कारण बेरोज़गारी है। ग्रामीण क्षेत्र में मौसमी बेरोजगारी को कम करने के लिए कुटीर तथा लघु उद्योगों में बेरोज़गारी को कम करने के किए बहुफसलीय

खेती को अपनाना चाहिए। शहरी क्षेत्रों में उद्योगों में बेरोज़गारी कम करने के लिए नए उद्योगों की स्थापना करने की आवश्यकता है। इसके लिए सस्ती साख सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। शिक्षित बेरोज़गारी कम करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक बल देना चाहिए। वास्तव में, शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करके उसे व्यवसाय के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। इस प्रकार ग्रामीण तथा शहरी दोनों प्रकार की बेरोज़गारी को कम करके गरीबी को कम किया जा सकता है।

(झ) अधिक निवेशः– भारत मे कुछ राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, इत्यादि में अधिक–से–अधिक निवेश करने की आवश्यकता है। इन राज्यों में विशेष सुविधाएं प्रदान करके प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को भी आकर्षित किया जा सकता है। इससे न केवल इन राज्यों में गरीबी का अनुपात कम होगा, अपितु देश का असंतुलन विकास भी होगा।

टूल बाक्स – 05

गरीबी दूर करने के उपाय

- जनसंख्या पर नियत्रण
- उत्पादन में वृद्धि
- आय का समान वितरण
- पूंजी निर्माण
- शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन
- उपयुक्त वातावरण
- कीमत वृद्धि पर रोक
- रोज़गार में वृद्धि
- अधिक निवेश
- उचित तकनीक का प्रयोग
- कार्यक्रमों का प्रभावपूर्ण ढ़ंग से लागू करना
- तीव्र आर्थिक विकास

(ञ) उचित तकनीक का प्रयोगः–भारत में श्रम–प्रधान के स्थान पर पूंजी प्रधान तकनीक का अधिक प्रयोग हो रहा है। इससे बेरोज़गारी बढ़ने के साथ गरीबी भी बढ़ रही है। वास्तव में, भारत मे मध्यवर्ती तकनीक को अपनाना चाहिए। इससे अधिक श्रमिकों को रोज़गार मिलेगा और गरीबी कम होगी तथा दूसरी ओर अधिक विकास भी होगा।

(ट) कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढ़ंग से लागू करनाः–भारत सरकार द्वारा समय–समय पर गरीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रम बनाए जाते है। परंतु इन कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप यह कार्यक्रम गरीब वर्ग तक नहीं पहुंच पाते अर्थात गरीब वर्ग को विशेष लाभ नहीं होता। इसलिए गरीबी उन्मूलन के लिए सभी कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढ़ंग से लागू करने की आवश्यकता है।

(ठ) तीव्र आर्थिक विकास– भारत में आर्थिक विकास की दर निम्न है। नौवीं योजना में आर्थिक विकास की दर 5.4% रही। इस धीमी आर्थिक विकास दर के कारण ही गरीबी में वृद्धि हो रही है।

उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि गरीबी उन्मूलन के अनेक उपाय है। इन सभी उपायों को एक साथ अपनाकर ही गरीबी को दूर किया जा सकता है।

पुनर्वितरण उपाय

गरीबी एक सापेक्ष धारणा है। यह आय तथा असमानता के कारण पैदा होती है। भारत सरकार को इसे दूर करने के लिए निम्न कदम उठाने चाहिएः–

(i) गरीब वर्ग के लिए अधिक मजदूरी तथा स्व–रोज़गार के अवसर।

(ii) श्रमिकों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर न्यूनतम अप्रत्यक्ष कर तथा आय एवं धन पर प्रगतिशील कर।

(iii) भूमि जोतों पर उच्चतम सीमा तथा भूमिहीन किसानों में कुछ वित्त सहित अतिरिक्त भूमि का आबंटन।

(iv) प्रत्येक श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी की गारंटी।

(v) बाल्य तथा औरत श्रमिकों के शोषण के प्रति कठोर उपाय।

(vi) निशुल्क सामाजिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य तथा शिक्षा का ग्रामीण तथा शहरी निर्धन वर्ग के लिए पर्याप्त विस्तार।

(vii) गरीब वर्ग को मजदूरी वस्तुएं सस्ती दरों पर उपलब्ध करवाना।

(viii) गरीब वर्ग को सस्ती साख सुविधाएं प्रदान करना ताकि वह स्व–रोज़गार अवसर पैदा कर सकें।

5.5 सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

गरीबी निवारण हेतु भारत सरकार ने समय–समय पर अनेक कदम उठाएं है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी हटाना था। छठी योजना में भी गरीबी हटाने के लक्ष्य को प्राथमिकता दी गई। दसवीं योजना तक गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के अनुपात को 20% तक करने का लक्ष्य रखा गया।

गरीबी की समस्या को हल करने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्यक्रम बनाए गए हैं :–

(क) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजनाः–यह योजना 1999 में आरंभ की गई। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता तथा बेरोज़गारी को समाप्त करना है। इस योजना में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा अन्य कार्यक्रमों को शामिल किया गया है। इसका मुख्य लक्ष्य बड़ी संख्या में लघु उद्यमों की स्थापना करना है। सामूहिक रूप से उद्यमों को स्थापित करने के लिए स्वयं सहायता समूहों का भी प्रावधान है। इस योजना के अंतर्गत निर्धनों को रोज़गार प्रदान करने के लिए ऋण तथा अनुदान दिया जाता है। केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 75:25 के अनुपात में इस योजना के लिए व्यय किया जाता है। इसके अंतर्गत स्वरोज़गार प्राप्त करने वालों में 50% अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, 40% महिलाएं और 3% विकलांग होंगे। 2005 तक लगभग 51 लाख स्वरोज़गारियों को लाभ हुआ है। इस योजना पर 31 दिसंबर 2007 तक 19340. 32 करोड़ रूपए व्यय हुए।

(ख) स्वर्ण जयंती शहरी स्वरोज़गार योजनाः– इस योजना को 1 दिसंबर, 1997 से आरंभ किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य शहरों में बेरोज़गारों को स्वरोज़गार तथा मजदूरी प्रदान करवाना है। इसके अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों तथा नौवी कक्षा तक पढ़े–लिखे लोगों को शामिल किया गया है। इस योजना में 75% केन्द्र तथा 25% राज्य द्वारा व्यय किया जाता है। दिसंबर 2007 तक इस योजना से 325 लाख लोगों को लाभ मिला।

(ग) संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजनाः–यह योजना सितंबर 2001 में आरंभ की गई। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

- ग्रामीण क्षेत्र में रोज़गार तथा खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करवाना,
- स्थायी सामाजिक, सामुदायिक तथा आर्थिक परिसंपत्तितयों का निर्माण करना।

इस योजना में व्यय 75% केंद्र तथा 25% राज्य द्वारा किया जाता है। रोज़गार आश्वासन योजना तथा जवाहर ग्राम योजना को अप्रैल 2002 से संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना में सम्मिलित कर दिया गया है। 31 दिसंबर 2007 तक इस योजना से 11.6 करोड़ मानव दिनों का रोज़गार प्राप्त हुआ। पर 1 अप्रैल 2008 से इस योजना को राष्ट्रीय ग्रामीण योजना में शामिल कर लिया गया।

टूल बाक्स – 06
सरकार द्वारा गरीबी निवारण के उपाय
• स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना • स्वर्ण जयंती शहरी स्वरोज़गार योजना • संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना • प्रधानमंत्री रोज़गार योजना • प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना • लघु तथा कुटीर उद्योग • प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना • राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम • अंत्योदय अन्न योजना • अन्नापूर्णा योजना • सार्वजनिक वितरण प्रणाली • वाल्मीकी अंबेडकर आवास योजना • समन्वित बाल विकास योजना • मध्य दिवस भोजन योजना • इंदिरा आवास योजना

(घ) प्रधानमंत्री रोज़गार योजनाः– यह योजना शहरी क्षेत्र में 1993–94 में आरंभ की गई। इस योजना का 1994–95 में ग्रामीण क्षेत्र में भी विस्तार किया गया। इसमें शिक्षित बेरोज़गार युवकों को रोज़गार प्रदान करवाया जाता है। 2004–2005 तक इस योजना से 3.75 लाख लोगों को लाभ पहुंचा।

(ङ) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजनाः– यह योजना 2000–2001 में आरंभ की गई। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना है। इसमें ग्रामीण स्तर पर विकास के लिए पांच क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैः–

(क) स्वास्थ्य, (ख) प्राथमिक शिक्षा, (ग) पीने का पानी, (घ) आवास, (ङ) ग्रामीण सड़कें, (च) 2001–02 में ग्रामीण विद्युतीकरण को भी जोड़ा गया है। इस योजना पर 2004–05 में 2800 करोड़ रूपए व्यय किए गए।

(च) लघु तथा कुटीर उद्योगः–सरकार का उद्देश्य निर्धनता तथा बेरोज़गारी को कम करना है। इसके लिए लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए गए हैं। इन उद्योगों के अंतर्गत 2004–05 में लगभग 283 लाख लोगों को रोज़गार मिला। स्वयं रोज़गार योजना को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त धन खर्च किया जा रहा है। 2005–06 में लघु उद्योगों की कारोबार सीमा 3 करोड़ रूपए से बढ़कर 4 करोड़ रू. कर दी गई। इससे लघु उद्योगों में और अधिक रोजगार के अवसर बढ़ेगे।

(छ) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजनाः– यह योजना 25 दिसंबर 2000 को आरंभ की गई। यह केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना है। इसमें सड़क निर्माण के साथ निर्धनों को मजदूरी भी प्राप्त होती है। सन 2004–05 में इस योजना पर 2468 करोड़ रूपए व्यय किए गए। 2005 तक लगभग 61 हजार सड़क निर्माण कार्य पूरे किए जा चुके हैं। लगभग 13,000 इलाकों को सड़क संपर्क प्राप्त हुआ है। इस योजना के अनुसार 7 वर्ष की अवधि में 60,000 करोड़ रूपए खर्च करने का लक्ष्य है। आशा की जाती है कि इस कार्यक्रम के पूरा होने के पश्चात 10 करोड़ गरीबों को गरीबी रेखा से ऊपर लाए जाने की संभावना है अर्थात इस योजना से 10 करोड़ गरीबों को लाभ होगा।

31 दिसंबर 2007 तक इस योजना के अधीन 1.43 लाख कि.मी. सड़कें 27382 करोड़ रूपए खर्च करके पूरी कर ली गई।

(ज) राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रमः— यह कार्यक्रम 1995—96 में आरंभ किया गया। इसका लक्ष्य निर्धनों को तीन प्रकार की सेवाएं प्रदान करना है—(i) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेन्शन योजना, (ii) राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, (iii) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, इनमें सारा व्यय केंद्रीय सरकार द्वारा किया जाता है, परंतु 11 अप्रैल 2001 से एन.एम.बी.एस. को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को सौंप दिया जाता है।

(झ) अंत्योदय अन्न योजनाः— वह योजना प्रधानमंत्री ने 25 दिसम्बर, 2001 को आरंभ की इसमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों में से 1 करोड़ सबसे अधिक गरीब परिवारों की पहचान की गई है। ऐसे परिवार को 2 रूपये किलो गेहुं और 3 रूपये किलो चावल की दर से 35 किलोग्राम खाद्यन्न की मात्रा उठाई गई है।

2005—06 में अत्योदय अन्न योजना को दायरा बढ़ा दिया गया है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले 2.5 करोड़ परिवार इसमें शामिल किए जाएगे। इससे 63 मिलियन मानव दिनों को रोज़गार पैदा होगा। अब इस परियोजना को राज्यों को सौप दिया गया है।

(ञ) अन्नापूर्णा योजनाः—यह योजना 1 अप्रैल 2000 से आरंभ हुई हैं। यह शत प्रतिशत केंद्रीय प्रयोजित योजना है।

उद्देश्यः—

(i) वरिष्ठ नागरिकों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है। ऐसे नागरिक जो वृद्ध अवस्था पेंशन के अंतर्गत आते हैं, परंतु उन्हें पेन्शन नहीं मिलती।

(ii) प्रति व्यक्ति 10 किलाग्राम खाद्यान्न निःशुल्क दिया जाता है। 2002—2003 में यह योजना राज्य योजना को दे दी गई है।

(ट) सार्वजनिक वितरण प्रणालीः— खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए चार लाख उचित दरों की दुकानों से निर्धनों को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध करवाए गए। कुछ राज्यों में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में ऐसी व्यवस्था की गई। इस पर सरकार के बजट का लगभग 3 प्रतिशत व्यय किया जाता है। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था से निर्धनों को कुछ हद तक सहायता प्राप्त हुई है।

(ठ) वाल्मीकी अंबेडकर आवास योजनाः—इस कार्यक्रम को गंदी बस्तियों में रहने वाले हरिजन वर्ग के लोगों के लिए दिसंबर 2001 मे आरंभ किया गया। इसमें निर्मल भारत अभियान कार्यक्रम के अधीन इन लोगों के रहन—सहन के स्तर को ऊंचा उठाना था। 31 दिसंबर, 2004 तक इस योजना के लिए 753 करोड़ रू. खर्च करा गया। जिससे 3,50,084 घरों को 49,312 नई किस्म के टाएलेट सीट प्रदान किए गए। अब इस योजना को इंदिरा आवास योजना में शामिल कर लिया गया है।

(ड़) समन्वित बाल विकास योजनाः— इस योजना के अंतर्गत माताओं तथा 6 वर्ष से नीचे के बच्चों को कुछ सहायता प्राप्त हुई है।

(ढ़) मध्य दिवस भोजन योजनाः— इस योजना के अंतर्गत स्कूलों में बच्चों को मुफ्त दोपहर का भोजन दिया जाता है।

(ण) इंदिरा आवास योजनाः— इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों तथा निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे श्रमिकों को निःशुल्क घर प्रदान करना है। यह योजना केंद्र तथा राज्यों में 75:25 पर लागत सहन करने को आधार बना कर अपनाई गई, जिसमें इन घरों को बनाने की 75 प्रतिशत लागत केंद्र सहन करेगा। 2007—08 वित्तीय वर्ष में 4,032.7 करोड़ रू. से 21.27 लाख घर बनाने की योजना थी। किंतु नवंबर 2007 तक केवल 9.39 लाख घर बना कर विभिन्न राज्यों मे इस वर्ग को बांटे गए।

दसवीं योजना में निर्धनता दूर करने के उपाय

भारत सरकार ने सामाजिक सेवाओं के विकास के लिए इस योजनाकाल में 3,47,391 करोड़ रू. रखे गए जो कि सार्वजनिक व्यय का 22.8 प्रतिशत है। इसमें निर्धन वर्ग को ऊपर

उठाने के लिए इस राशि को शिक्षा, चिकित्सा तथा सार्वजनिक सेहत, गृह तथा शहरी विकास पर खर्च किए जाएगा। इसका उद्देश्य निर्धनता अनुपात को प्रतिशत आधार पर कम करना है।
दसवीं योजना में निर्धनता उन्मूलन के लिए निम्न कार्यक्रम अपनाए जा सकते हैं:—

(i) ग्रामीण क्षेत्रों मे गैर—कृषि रोज़गार प्रदान करने के लिए तथा छोटे तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(ii) सीमांत तथा छोटे किसानों, कारीगरों और अप्रशिक्षित श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(iii) स्त्री वर्ग की निर्धनता उन्मूलन स्कीमों को लागू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, विशेषकर आपदा प्रभावित क्षेत्रों में काम के लिए अनाज स्कीम जारी करना।

(iv) ग्राम सभाओं को फंड्स तभी दिए जाने चाहिए जब जनता का भी कुल खर्च में 5 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक योगदान हो।

(v) संकटकालीन क्षेत्रों में मजदूरी रोज़गार प्रोग्राम लागू किया जाना चाहिए। उत्पादक कामों के चलाने तथा उनके रख—रखाव पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए; जैसे ग्रामीण सड़कें, वाटरशेड विकास, तालाबों की सफाई व ठीक देखभाल, अधिक वन उगाना, सिंचाई तथा नालियों की व्यवस्था। मजदूरी का भुगतान अधिकतर, नकदी के साथ कुछ खाद्यान्न के रूप में होना चाहिए।

(vi) स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना को सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम में बदल लेना चाहिए और बिना किसी आर्थिक सहायता दिए इनका संचालन बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा करना चाहिए।

निर्धनता को दूर करने के लिए ग्यारहवीं योजना में अपनाने वाले कदम

1. सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर 8 से 10 प्रतिशत प्रति वर्ष तक बढ़ाना, ताकि सन 2016—17 तक लोगों की प्रति व्यक्ति आय दुगनी हो सके।
2. कृषि क्षेत्र का सकल राष्ट्रीय उत्पाद 4 प्रतिशत प्रति वर्ष तक बढ़ाना, ताकि विकास का लाभ सभी वर्गों तक पहुंच सके।
3. 70 मिलियन लोगों के लिए अतिरिक्त रोज़गार के अवसर पैदा किए जाएंगे।
4. अकुशल श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी को कम से कम 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जाएगा।
5. ग्रामीण निर्धन वर्ग के लिए 60 लाख घरों का निर्माण किया जाएगा।

सारांश

भारत जनसंख्या में दुनिया में दूसरे नंबर पर आता है। जनसंख्या 1.9 प्रतिशत से बढ़ रही है। गरीबी का मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि है। इसके अतिरिक्त साधनों का पूर्ण उपयोग, पूंजी का अभाव, सरकार द्वारा उठाए गए कम कार्यक्रम भी इसका कारण है। गरीबी को दूर करने के लिए सरकार को एक अच्छी प्रणाली बनानी चाहिए। कीमत वृद्धि को रोकना चाहिए और लोगों में सरकार की योजनाओं के प्रति जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए ताकि जल्द से जल्द भारत गरीबी से मुक्त हो पाए और एक विकसित देश बने।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 भारत में निर्धनता की मात्रा तथा प्रकृति स्पष्ट करो।

प्र.2 भारत में निर्धनता की समस्या की मात्रा का वर्णन कीजिए।

प्र.3 भारत में निर्धनता सम्बन्धी प्रवृतियों की व्याख्या कीजिए।

प्र.4 भारत के निर्धनता हटाओं कार्यक्रम पर संक्षिप्त नोट लिखिए।
प्र.5 भारत में निर्धनता के कारणों की विवेचना कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
प्र.6 भारत में निर्धनता वृद्धि के कारण कौन से थे? इसे कम करने के लिए उपाय या सुझाव दें।
प्र.7 निम्न पर नोट लिखिए
(i) भारत मे निर्धनता की प्रवृत्ति और आकार
(ii) निरपेक्ष तथा सापेक्ष निर्धनता
(iii) निर्धनता को दूर करने के पुरर्वितरण उपाय
(iv) दसवीं तथा ग्यारहवीं योजना तथा निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम
(v) निर्धनता रेखा क्या है?
प्र.8 भारत में निर्धनता की समस्या का वर्णन कीजिए। इस समस्या का समाधान करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?
प्र.9 भारत में निर्धनता की मात्रा तथा प्रकृति स्पष्ट कीजिए। इसके क्या कारण है। इसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है?
प्र.10 भारत में निर्धनता की समस्या की मात्रा का वर्णन कीजिए। सरकार ने इसे दूर करने के लिए क्या कदम उठाएं है?
प्र.11 भारत में निर्धनता सम्बन्धी प्रवृतियों की व्याख्या कीजिए। इसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

खंड –2

इकाई–6 क्षेत्रीय असंतुलन/क्षेत्रीय असमानता

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
6.0 प्रस्तावना
6.1 क्षेत्रीय असंतुलन का अर्थ
6.2 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन की विशेषताएं
6.3 क्षेत्रीय असंतुलन के कारण
6.4 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के उपाय
6.5 क्षेत्रीय अंसतुलन के प्रभाव
6.6 क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के लिए सरकार द्वारा अपनाए गए उपाय
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे :–

- क्षेत्रीय असंतुलन का अर्थ
- भारत मे क्षेत्रीय असंतुलन के संमक
- क्षेत्रीय असंतुलन के कारण
- भारत में क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के सुझाव
- भारत में क्षेत्रीय असंतुलन के प्रभाव
- क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा किए गए उपाय

6.0 प्रस्तावना

संसार के विभिन्न देशों का विकास एक समान नहीं हुआ। कुछ देश विकसित हैं, जबकि कुछ अल्पविकसित है। इसी प्रकार एक देश में विभिन्न क्षेत्रों में भी एक जैसा विकास नहीं होता। अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में असंतुलन विकास का अभाव होता है। जैसे कि कुछ क्षेत्र अधिक विकसित होते हैं, जबकि कुछ क्षेत्र कम विकसित होते हैं, इसे ही क्षेत्रीय असंतुलन कहा जाता है।

6.1 क्षेत्रीय असंतुलन का अर्थ

सामान्यतः एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में असंतुलन विकास नहीं होता। परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। इसे ही क्षेत्रीय असंतुलन कहा जाता है। भारत में संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता है, परंतु भारत में क्षेत्रीय विकास के स्थान पर क्षेत्रीय असंतुलन चरम सीमा पर है। उदाहरण के तौर पर आर्थिक दृष्टि से भारत में दो प्रकार के राज्य हैं:–

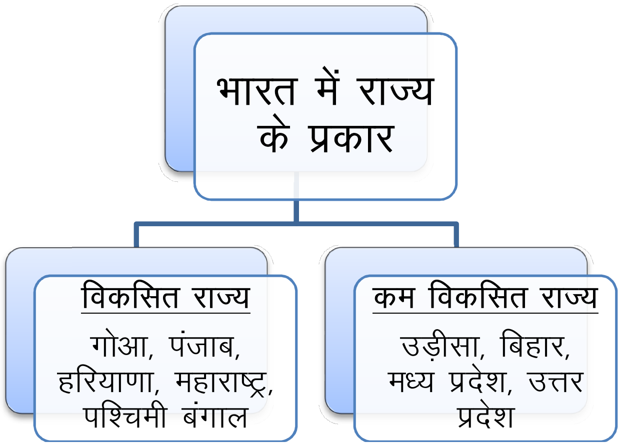

टूल बाक्स – 01
क्षेत्रीय असंतुलन जब एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलित विकास नहीं होता, कुछ क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। इसे क्षेत्रीय असंतुलन कहा जाता है।

6.2 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन की विशेषताएं

(i) जनसंख्या में वृद्धि में असंतुलनः– 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर 1.6 प्रतिशत वार्षिक है। यह वृद्धि दर विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न है। 15 राज्यों में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर राष्ट्रीय औसत से अधिक है। शेष 13 राज्यों में यह कम है। मेघालय में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि सबसे अधिक (2.49 प्रतिशत) है। परंतु नागालैंड में सबसे कम (–0.05 प्रतिशत) है। केंद्रीय शासित प्रदेश दादर और नगर हवेली में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि सबसे अधिक (4.51 प्रतिशत) है। परंतु लक्षद्वीप में सबसे कम (0.61 प्रतिशत) है। इस प्रकार भारत के विभिन्न राज्यों मे जनसंख्या की वृद्धि दर में असंतुलन है।

टूल बाक्स – 02	
2011 की जनसंख्या जनसंख्या वृद्धि में असंतुलन	
भारत	1.6%
मेघालय	2.49% सबसे अधिक
दादर और नगर हवेली	4.51%
नागालैंड	–0.05% सबसे कम
लक्षद्वीप	0.61%

(ii) जनसंख्या के घनत्व में असमानता– भारत में विभिन्न राज्यों में जनसंख्या के घनत्व के संबंध में असंतुलन की स्थिति है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। भारत में बिहार में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक (1102 व्यक्ति) तथा अरूणाचल प्रदेश में सबसे कम (17 व्यक्ति) है। कुल 28 राज्यों में से 10 राज्यों का जनसंख्या का घनत्व राष्ट्रीय औसत से अधिक है। शेष 18 राज्यों में यह कम है। केंद्र शासित

प्रदेशों में यह दिल्ली में सबसे अधिक (9340 व्यक्ति) है तथा अंडेमान और निकोबार में सबसे कम (46 व्यक्ति) है।

टूल बाक्स – 03		
2011 की जनसंख्या के घनत्व में असमानता		
भारत	**382**	
बिहार	1102	सबसे अधिक
दिल्ली	9340	
अरूणाचल प्रदेश	17	सबसे कम
अंडेमान और निकोबार	46	

(iii) साक्षरता दर में असंतुलनः– भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 73 प्रतिशत है। साक्षरता की दृष्टि में भी भारत के विभिन्न राज्यों में असमानता है। भारत में केरल राज्य में साक्षरता दर सबसे अधिक (93.91%) है। सबसे कम बिहार (63.82%) में है। भारत में 17 राज्यों में साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से अधिक है। शेष 12 राज्यों में यह राष्ट्रीय औसत से कम है। केंद्र शासित प्रदेशों में केवल दादर और नगर हवेली में साक्षरता दर सबसे कम (77.65%) है तथा लक्षद्वीप में सबसे अधिक (92.28%) है।

टूल बाक्स – 04		
2011 की जनसंख्या साक्षरता दर में असंतुलन		
भारत	73%	
केरल	93.91%	सबसे अधिक
लक्षद्वीप	92.28%	
बिहार	63.82%	सबसे कम
दादर और नगर हवेली	77.65%	

(iv) शहरी जनसंख्या में असंतुलन :–शहरी जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत में विभिन्न राज्यों मे असंतुलन है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 68.84% जनसंख्या गांवों में तथा 31.16% जनसंख्या शहरों में रहती है। यह प्रतिशत भी भिन्न–भिन्न राज्यों में भिन्न है। गोवा में यह सबसे अधिक 62.17% है। कुल 10 राज्यों में शहरों में रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत राष्ट्रीय औसत से अधिक है, जैसे– तमिलनाडु (48.45%), महाराष्ट्र (45.23%), गुजरात (42.58%), कर्नाटक(38.57%), पश्चिमी बंगाल (31.89%)। इसके विपरीत 19 राज्यों में यह प्रतिशत राष्ट्रीय औसत के कम है, जैसे– हिमाचल प्रदेश (10.04%), मध्य प्रदेश (27.63%), छत्तीसगढ़ (23.24%), उड़ीसा (16.68%), बिहार (11.30%)। इस प्रकार शहरी जनसंख्या के कारण भी क्षेत्रीय असंतुलन हैं।

टूल बाक्स – 05		
2011 की शहरी जनसंख्या में असंतुलन		
भारत	31.16%	
गोवा	62.17%	सबसे अधिक
दिल्ली	97.50%	
हिमाचल प्रदेश	10.04%	सबसे कम
दादर और नगर हवेली	46.62%	

टूल बाक्स – 06

क्षेत्रीय असंतुलन की विशेषताएं

- जनसंख्या वृद्धि में असंतुलन
- जनसंख्या घनत्व में असमानता
- साक्षरता दर में असंतुलन
- शहरी जनसंख्या में असमानता
- प्रति व्यक्ति आय में असमानता
- कृषि क्षेत्र में असमानता
- औद्योगिक क्षेत्र में असमानता
- प्राकृतिक साधनों के प्रयोग में असमानता
- विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में असमानता
- वित्तीय व्यवस्था में असमानता
- मानव विकास सूचकांक में असमानता

(v)प्रति व्यक्ति आय में असमानताः—भारत में विभिन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय में काफी असमानताएं है। यह निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट होता है :—

टूल बाक्स – 07			
प्रति व्यक्ति आय (चालू कीमतों पर) 2012–13			
अधिक विकसित राज्य		कम विकसित राज्य	
राज्य	प्रति व्यक्ति आय (रूपये में)	राज्य	प्रति व्यक्ति आय (रूपये में)
1. सिक्किम	142625	1. बिहार	28317
2. हरियाणा	122660	2. उत्तर प्रदेश	33269
3. महाराष्ट्र	107670	3. मणीपुर	36290
4. तमिलनाडु	98550	4. असम	42036

केंद्र शासित प्रदेशों में यह दिल्ली में सबसे अधिक रु. 201083 है ।

(vi) कृषि क्षेत्र में असमानताः— भारत में कृषि क्षेत्र में भी विषमता है। पंजाब तथा हरियाणा कृषि क्षेत्र में अधिक विकसित राज्य है। इन दोनों राज्यों द्वारा कुल गेहुं के उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग उत्पन्न किया जाता है। इन राज्यों में हरित क्रान्ति का प्रभाव दिखाई देता है, परंतु कुछ राज्यों में हरित क्रांति का कोई प्रभाव नजर नहीं आता, जैसे कि बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि। इसलिए ये राज्य कृषि दृष्टि से पिछड़े हुए राज्य हैं।

टूल बाक्स – 08
कृषि क्षेत्र में असमानता सबसे अधिक विकसित राज्य : पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश सबसे कम विकसित राज्य : बिहार, मध्य प्रदेश

(vii) औद्योगिक क्षेत्र में असमानताः— भारत में औद्योगिक क्षेत्र में भी क्षेत्रीय असंतुलन है। औद्योगिक दृष्टि से महाराष्ट्र सबसे अधिक विकसित राज्य है। इसके द्वारा कुल औद्योगिक उत्पादन के 25 प्रतिशत भाग का उत्पादन किया जाता है। पंजाब में बड़े उद्योगों की अपेक्षा लघु उद्योग काफी मात्रा में है। इसलिए पंजाब का भी औद्योगिक क्षेत्र में विशेष स्थान है। कुल 12

राज्यों (महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक) में कुल कारखाना उत्पादन का 83 प्रतिशत भाग पैदा होता है। इस प्रकार ये 12 राज्य औद्योगिक दृष्टि से काफी विकसित है। शेष राज्य तथा संघीय प्रदेश केवल 17 प्रतिशत भाग उत्पन्न करते हैं। इसलिए ये राज्य औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए है।

टूल बाक्स – 09
औद्योगिक क्षेत्र में असमानता
महाराष्ट्र सबसे अधिक विकसित राज्य कुल 12 राज्य 83 प्रतिशत भाग उत्पादन करते हैं। शेष राज्य 17 प्रतिशत भाग उत्पादन करते हैं।

(viii) प्राकृतिक साधनों के प्रयोग में असमानताः– भारत में अनेक राज्य जैसे उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से काफी संपन्न हैं। परंतु ये राज्य पिछड़े हुए राज्य कहलाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन राज्यों में विभिन्न प्राकृतिक साधनों, जैसे– वन, जल, खनिज भूमि का पूर्ण रूप से प्रयोग नहीं होता है वास्तव में इन राज्यों में प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग नहीं हो पाता। इसलिए ये राज्य साधन सम्पन्न होते हुए भी विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए रहते हैं।

(ix) अधोसंरचना में असंतुलनः– अधोसंरचना के अंतर्गत यातायात, संचार, विद्युत, सिंचाई की सुविधाएं तथा निर्माण कार्य आते है। अधोसंरचना की दृष्टि से भारत में काफी असमानताएं हैं। पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, इत्यादि राज्यों में अधोसंरचना की स्थिति काफी अच्छी है। इसलिए इन राज्यों में तीव्र गति से विकास हो रहा है। शेष राज्यों में अधोसंरचना की स्थिति संतोषजनक नहीं है। परिणामस्वरूप इन राज्यों में विकास गति भी धीमी है।

(x) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में असमानताः– 1991 में नई आर्थिक नीति को अपनाया गया। तब से अब तक भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में काफी वृद्धि हुई है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का सबसे अधिक हिस्सा कुछ राज्यों जैसे देहली, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, तथा आंध्र प्रदेश को प्राप्त हुआ है। इसलिए इन राज्यों में विकास तीव्र गति से हो रहा है। यही कारण है कि उड़ीसा, बिहार, उत्तरांचल, झारखंड इत्यादि राज्य पिछड़ गए हैं।

(xi) वित्तीय व्यवस्था में असमानताः–कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, इत्यादि राज्यों की सरकारों ने लोगों को लुभाने के लिए ऐसी नीतियां लागू की हैं जिससे सरकारी खजाने खाली हो गए। पंजाब, सरकार ने भी पंजाब में किसानों को बिजली तथा पानी मुफ्त देकर राज्य की आर्थिक स्थिति खराब कर दी है। इन राज्य सरकारों ने गैर विकासात्मक व्यय को कम करने तथा आय के साधनों को बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। इसलिए ये पिछड़े रह गए हैं। इसके विपरीत गोआ, कर्नाटक, तमिलनाडु इत्यादि राज्यों ने बेहतर प्रदर्शन किया है। इनकी वित्तीय स्थिति अच्छी है। इसलिए ये राज्य विकास के पथ पर अग्रसर है। वास्तव में राजस्व का बहुत बड़ा भाग कर्मचारियों के वेतन, पेन्शन भुगतान, ब्याज तथा सब्सिडी का भुगतान करने पर व्यय कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप राज्यों की केंद्रीय सरकार पर निर्भरता तथा सरकारी वित्तीय भुगतानों के कारण। कुछ राज्य पिछड़े हुए बन कर रह गए हैं।

(xii) मानव विकास सूचकांक में असंतुलनः– यू.एन.डी.पी. की रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास के तीन मुख्य अंग हैं–(i) साक्षरता, (ii) जीवन प्रत्याशा, (iii) जीवन स्तर, इन तीनों के आधार पर मानव विकास सूचकांक तैयार किया जाता है। 2011 में भारत के मानव विकास के सूचकांक

का मूल्य 0.504 था। यदि 2011 की रिपोर्ट के अनुसार 15 राज्यों में मानव विकास के सूचकांक की तुलना करें तो पता चलता है कि विभिन्न राज्यों में काफी असमानताएं हैं। केरल में मानव विकास सूचकांक का मूल्य सबसे अधिक (0.625) है तथा उड़ीसा में सबसे कम (0.442) है।

टूल बाक्स – 10		
2011 में मानव विकास सूचकांक		
भारत	**0.504**	.
केरल	0.625	सबसे अधिक
पंजाब	0.569	
उड़ीसा	0.442	सबसे कम
बिहार	0.447	

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	क्षेत्रीय असंतुलन का अर्थ क्या है?
प्र.2	भारत में विकसित राज्य कौन से हैं ?
प्र.3	क्षेत्रीय असंतुलन की दो विशेषताएं बताएं?
प्र.4	1991 की आर्थिक नीति का क्षेत्रीय असंतुलन पर क्या प्रभाव पड़ा है?

6.3 क्षेत्रीय असंतुलन के कारण

क्षेत्रीय असंतुलन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :–

(i) जनसंख्या का असमान वितरणः– देश के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या के वितरण में असमानता है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन की संभावना अधिक बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त जिन राज्यों में जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होती है वहां विकास की गति धीमी रहती है। जहां जनसंख्या की वृद्धि दर कम है वहां विकास तीव्र गति से होता है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि क्षेत्रीय असंतुलन को जन्म देती है।

(ii) प्राकृतिक साधनों का असमान वितरण :– कुछ राज्यों में प्राकृतिक साधन जैसे वन, जल, मिट्टी खनिज पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। जबकि कुछ राज्यों में इनका अभाव है। इस प्रकार प्राकृतिक साधनों के असमान वितरण के कारण देश में विकास के संबंध में विभिन्न राज्यों में असमानताएं उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

(iii) निर्धनताः– देश के कुछ राज्यों में निर्धनता अधिक है जिससे उनका विकास रूक जाता है जैसे उड़ीसा और बिहार राज्य सबसे अधिक निर्धन है। परिणामस्वरूप वहां विकास की गति भी धीमी है। इसके विपरीत कुछ राज्यों में निर्धनता बहुत कम है, जैसे पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि। इन राज्यों में विकास की गति भी तीव्र है। इस प्रकार निर्धनता में विषमता के कारण इन राज्यों में विकास की गति भिन्न है। इस प्रकार निर्धनता में विषमता के कारण देश में क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो जाता है।

(iv) आर्थिक संरचना की असमानताः– राष्ट्र का आर्थिक विकास, आर्थिक संरचना जैसे यातायात, संचार, विद्युत, शक्ति, इत्यादि पर निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में इन सुविधाओं का अभाव होता है, वे राज्य अधिक पिछड़े हुए रहते हैं। परिणामस्वरूप राज्यों में आर्थिक संतुलन उत्पन्न हो जाता है।

(v) सामाजिक अधोसंरचना की असमानताः– यू.एन.डी.पी. की रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास के तीन अंग हैं (i) स्वास्थ्य, (ii) शिक्षा, (iii) आय। यह कहा गया है कि स्वास्थ्य तथा शिक्षा की सुविधाओं के द्वारा आय में वृद्धि की जा सकती है। परंतु दोनों प्रकार की (स्वास्थ्य तथा शिक्षा

की) सुविधाओं की विभिन्न राज्यों में असमानता हैं। कुछ राज्यों में ये सुविधाएं अधिक प्रदान होती हैं, जबकि कुछ राज्यों में कम। परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

(vi) औद्योगिकरण की गतिः– कुछ क्षेत्रों में औद्योगिकरण तेजी से हो रहा है। वहां विकास की गति भी तेज है। जिन क्षेत्रों में औद्योगिकरण की गति धीमी है वे राज्य पिछड़े हुए रह गए हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ रहा है।

(vii) नई कृषि तकनीकः– कुछ राज्यों ने हरित क्रांति अर्थात नई कृषि तकनीकों को अपनाया है जैसे पंजाब, हरियाणा। ये क्षेत्र अधिक विकसित हो गए है। जो राज्य इसे नहीं अपना सके, वे पिछड़े हुए रह गए है। इस प्रकार असंतुलन और भी बढ़ता गया।

(viii) निजी निवेशः– जिन क्षेत्रों में अधिक सुविधाए होती हैं, उद्योगपति निजी निवेश उन्हीं क्षेत्रों में करना पसंद करते हैं। पिछड़े हुए क्षेत्रों में निजी निवेश का अभाव होता है। परिणामस्वरूप पिछड़े हुए क्षेत्र विकसित नहीं हो पाए और असंतुलन निरंतर बढ़ता गया।

(ix) सरकारी नीति :– योजनाकाल के दौरान सरकार ने विकसित क्षेत्रों में अधिक निवेश किया ताकि परिणाम शीघ्र प्राप्त हो सकें। पिछड़े हुए क्षेत्रों की ओर कम ध्यान दिया गया। अर्थात सरकारी नीति ने भी क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा दिया।

(x) राजनैतिक कारणः– जिन राज्यों में राजनैतिक स्थिरता रही हैं वहां विकास भी तीव्र गति से हुआ है। जिन प्रदेशों में अस्थिरता रही है वहां विकास की गति भी धीमी रही है। इस प्रकार राजनैतिक अस्थिरता ने भी असंतुलन को उत्पन्न किया है।

(xi) सामाजिक कारणः– जो क्षेत्र रूढ़िवादी है वहां के लोगों ने नई तकनीक तथा परिवर्तन को स्वीकार नहीं किया, ऐसे क्षेत्र पिछड़े हुए रहे। जिन क्षेत्रों के लोगों ने परिवर्तनों को स्वीकार किया है वहां विकास भी तीव्र गति से हुआ है। इस प्रकार क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ा है।

(xii) प्रत्यक्ष विदेशी निवेशः– जो क्षेत्र प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, तकनीकी ज्ञान इत्यादि प्राप्त कर रहे हैं उनका विकास भी तीव्रता से हो रहा है। इसके विपरीत जो क्षेत्र ये सुविधाएं प्राप्त नहीं कर पा रहे वे विकास की दृष्टि से पिछड़ रहे हैं। इससे क्षेत्रीय असंतुलन उत्पन्न हो रहा है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	मानव विकास सूचकांक क्या है?
प्र.6	सरकारी नीति क्षेत्रीय असमानता को कैसे प्रभावित करती है ?
प्र.7	क्या सामाजिक कारण क्षेत्रीय असंतुलन को प्रभावित करते हैं?

6.4 भारत में संतुलन को कम करने के सुझाव या उपाय

क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय या सुझाव दिए जा सकते हैं–

(i) पिछड़े हुए क्षेत्रों की सही पहचानः– क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए केंद्रीय सरकार को सभी राज्यों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए। मूल्यांकन की ऐसी नीति अपनाई जानी चाहिए, ताकि पिछड़े हुए क्षेत्रों की उचित ढंग से पहचान हो सके।

(ii) प्रत्येक राज्य के लिए विशेष कार्यक्रमः– पिछड़े हुए क्षेत्रों की पहचान करने के पश्चात प्रत्येक राज्य के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करने की आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े हुए राज्यों के विकास के लिए वहां के प्राकृतिक साधनों के विकास की योजनाएं आरंभ करनी चाहिए।

(iii) पिछड़े हुए क्षेत्रों को विशेष सुविधाएंः– सरकार को पिछड़े हुए प्रदेशों में अधिक से अधिक उद्योगों की स्थापना करनी चाहिए। उन्हें विशेष प्रकार की सुविधाएं व रियायतें प्रदान करनी चाहिए। जैसे आयकर में छूट, आसान लाइसेंसिग नीति, उत्पादन कर में छूट तथा बिक्री कर में छूट इत्यादि।

(iv) पिछड़े हुए राज्यों को अधिक अनुदानः– पिछड़े हुए राज्यों को विकास करने के लिए अधिक अनुदान तथा सहायता की आवश्यकता है। यह कार्य केंद्रीय सरकार द्वारा किया जा सकता है। केंद्रीय सरकार के दिए गए अनुदान को पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए लगाया जा सकता है। इससे पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास की संभावनाएं बढ़ेगी।

(v) कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकासः– संतुलन क्षेत्रीय विकास के लिए कुटीर तथा लघु उद्योगों का विकास अधिक लाभदायक हो सकता है। इन उद्योगों की स्थापना में कम पूंजी लगानी पड़ती है। इस प्रकार बडे–बड़े उद्योगों की एकाधिकार प्रवृत्तियों को रोका जा सकता है।

(vi) कृषि का विकासः– हरित क्रांति का लाभ कुछ सीमित प्रदेशों विशेषकर हरियाणा तथा पंजाब का हुआ। पिछड़े हुए राज्यों में हरित क्रांति का लाभ प्राप्त करने के लिए उचित ऋण सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में उन्नत किस्म के बीज, रासायिक खादों, सिंचाई तथा ट्रैक्टरों इत्यादि की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। इन सुविधाओं के माध्यम से इन क्षेत्रों में कृषि का विकास किया जा सकता है।

(vii) औद्योगिक विकासः– वर्तमान उद्योगों द्वारा क्षेत्रीय असमानताएं दूर नहीं की जा सकती। क्षेत्रीय समानताएं नए उद्योगों के विकास की संभावनाओं पर निर्भर करती है। इस प्रकार नए उद्योगों के विकास से न केवल औद्योगिक विकास होगा, अपितु उद्योगों की स्थापना में क्षेत्रीय असमानताएं भी कम हो सकेगी।

(viii) अधोसंरचना का विकासः– सरकार को पिछड़े हुए क्षेत्रों में अधोसंरचना का विकास करना चाहिए। इसके अंतर्गत यातायात एवं संचार की सुविधाओं को उपलब्ध करवाना चाहिए। इससे पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास की अधिक संभावना हो सकती है तथा संतुलित विकास की संभावना भी बढ़ सकती है।

टूल बाक्स – 11
क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के उपाय
• पिछड़े क्षेत्रों की सही पहचान • प्रत्येक राज्य के लिए विशेष कार्यक्रम • पिछड़े क्षेत्रों को विशेष सुविधाएं • पिछड़े राज्यों को विशेष अनुदान • कुटीर व लघु उद्योगों का विकास • कृषि का विकास • औद्योगिक विकास • अधोसंरचना का विकास • सार्वजनिक उपक्रमों का विकास • कोषों की उपलब्धता

(ix) सार्वजनिक उपक्रमों का विकासः– सरकार को पिछड़े हुए क्षेत्रों में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना करनी चाहिए। इससे उन क्षेत्रों में सहायक उद्योगों की स्थापना हो सकेगी। परिणामस्वरूप कुछ हद तक क्षेत्रीय असमानता कम हो सकेगी।

(x) कोषों की उपलब्धता– पिछड़े हुए क्षेत्रों की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के आधार पर विकास कार्य करने चाहिए। इसके लिए केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को पर्याप्त कोष प्रदान करने चाहिए। इन क्षेत्रों में अधिक निवेश वाली परियोजनाएं केंद्रीय सरकार द्वारा आरंभ करनी चाहिए। सही समय पर कोषों की उपलब्धता द्वारा ही पिछड़े क्षेत्रों का विकास संभव हो सकता है।

उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय असंतुलन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा प्राकृतिक दृष्टि से देश के लिए हितकर नहीं होता। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए संतुलित क्षेत्रीय विकास अत्यंत आवश्यक है। विभिन्न उपायों को एक साथ अपनाकर, असंतुलन को समाप्त करके, संतुलित क्षे़त्रीय विकास किया जा सकता है।

6.5 क्षेत्रीय असंतुलन के प्रभाव

भारत में क्षेत्रीय या प्रादेशिक असंतुलन के काफी प्रभाव पड़ते है। मुख्य प्रभाव निम्नलिखित है–

(i) साधनों के पूर्ण उपयोग का अभावः– क्षेत्रीय असंतुलन के परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्र विकसित नहीं हो पाते। अविकसित क्षेत्रों में साधनों का अल्प प्रयोग होता है। इस प्रकार साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता।

(ii) साधनों के उचित उपयोग का अभावः–क्षेत्रीय असंतुलन के कारण निजी उद्यमी सीमित प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग नहीं करते। जिससे उस क्षेत्र में साधनों का अपव्यय होता है। इससे प्राकृतिक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। यह असंतुलन देश के हित में नहीं होता।

(iii) बेरोज़गारी में वृद्धिः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण विकसित क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर अधिक होते हैं। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में बेरोज़गारी कम होती है। इसके विपरीत पिछड़े हुए क्षेत्रों में रोज़गार के अवसरों में कम वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप बेरोज़गारी अधिक फैलती है।

(iv) जीवन स्तर में अंतरः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण पिछड़े हुए क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय कम होती है। परिणामस्वरूप जीवन स्तर भी निम्न होता है। विकसित क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय अधिक होने के कारण जीवन स्तर भी ऊंचा होता है। इस प्रकार क्षेत्रीय असंतुलन के जीवन स्तर में भी काफी अंतर उत्पन्न हो जाता है।

(v) आय तथा धन की असमानताः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण आय तथा धन की असमानता भी बढ़ती है। निर्धन लोग और निर्धन बन जाते हैं तथा धनी लोग अधिक धनी बनते जाते हैं। गांवों तथा शहरों के बीच में भी आय तथा धन के वितरण की असमानता बढ़ती जाती है।

(vi) सामाजिक लागतों में वृद्धिः– क्षेत्रीय असमानता के कारण किसी विशेष क्षेत्र में औद्योगिकरण बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। इसका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिक अनेक प्रकार की बीमारियों के शिकार हो जाते है। उनके इलाज के लिए स्वास्थ्य केंद्रों तथा अस्पतालों की स्थापना बड़े पैमाने पर करनी पड़ती है। इससे सामाजिक लागत में वृद्धि होती है।

(vii) आधारभूत सुविधाओं का अभावः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण कुछ क्षेत्रों में अधिक विकास होता है। ऐसे विशेष क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे आवास की समस्या, बिजली की समस्या, यातायात की समस्या, जलापूर्ति की समस्या इत्यादि। इस प्रकार आधारभूत सुविधाओं की कमी हो जाती है।

(viii) असामाजिक क्रियाओं में वृद्धिः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण अविकसित क्षेत्रों में रोज़गार के कम अवसर उपलब्ध होते हैं। परिणामस्वरूप सभी व्यक्तियों को रोज़गार प्राप्त नहीं होता। इससे असामाजिक क्रियाओं में वृद्धि होती है, जैसे– चोरी, रिश्वतखोरी इत्यादि।

(ix) राजनैतिक अस्थिरताः– क्षेत्रीय असंतुलन के कारण राजनैतिक अस्थितरता भी बढ़ जाती है। भारत में कुछ राज्यों में आंतकवाद और उग्रवाद का मुख्य कारण क्षेत्रीय असंतुलन ही है।

(x) प्राकृतिक विपदा का डरः– यदि कुछ क्षेत्रों में प्राकृतिक विपदा जैस बाढ़ भूकंप आ जाए तो इसका संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पर यदि सभी क्षेत्रों का विकास एक समान हो तो एक क्षेत्र में आने वाली प्राकृतिक विपदा का देश की संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर कम प्रभाव पड़ेगा।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय असंतुलन के बहुत ही बुरे प्रभाव पड़ते हैं। क्षेत्रीय असंतुलन आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा प्राकृतिक दृष्टि से देश के लिए हानिकारक है। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए क्षेत्रीय असंतुलन को कम किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.8	क्षेत्रीय असंतुलन के दो प्रभाव बताएं।
प्र.9	क्षेत्रीय असंतुलन का और असामाजिक क्रियाओं क्या संबंध है?

6.6 क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा अपनाए गए उपाय

क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के लिए या क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सरकार ने विभिन्न प्रकार के प्रयास किए है। सरकार द्वारा किए गए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैंः–

(क) एक्ट लागू करनाः– भारत सरकार द्वारा सन 1951 में औद्योगिक विकास एवं नियमन एक्ट पास कर दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य औद्योगिक केंद्रीयकरण वाले क्षेत्रों में नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करने पर प्रतिबंध लगाना था।

(ख) सार्वजनिक उपक्रमों का विकासः–भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास किया। इन उद्योगों को अविकसित क्षेत्रों या कम विकसित क्षेत्रों में स्थापित करने पर बल दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि ऐसे क्षेत्रों में छोटी इकाइयों के रूप में सहायक उद्योगों की स्थापना हो सके।

(ग) केंद्रीय सब्सिडी योजनाः–क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के लिए यह योजना 1970 में आरंभ की गई। इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधान किए गएः–

(i) सरकार द्वारा निजी, सार्वजनिक, सयुक्त तथा सहकारी सभी क्षेत्रों के उद्योगों को सब्सिडी दी जाएगी।

(ii) यह सब्सिडी आयकर से मुक्त होगी।

(iii) इस योजना के अंतर्गत केंद्रीय सरकार विशेष रूप से 102 पिछड़े हुए जिलों में स्थापित होने वाले उद्योगों को सहायता देगी। ऐसे उद्योगों को पूंजी निवेश का 15 लाख रूपए या 15 प्रतिशत, जो भी कम हो, सब्सिडी के रूप में दिया जाता है।

(iv) आरंभ में यह सब्सिडी प्रत्येक पिछड़े राज्य के एक पिछड़े हुए जिले को ही दी जाती थी। अब यह बढ़कर प्रत्येक पिछड़े राज्य के 2 से 6 जिलों तथा विकसित राज्य के 1 से 3 जिलों में कर दी गई है।

(घ) यातायात सब्सिडी योजनाः– केंद्रीय सरकार द्वारा यह योजना 1971 में आरंभ की गई। वर्तमान में यह योजना पहाड़ी राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, असम, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, मिजोरम तथा उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में लागू है। उन राज्यों को उद्योगों के लिए कच्चा माल लाने तथा तैयार ले जाने के लिए यातायात लागत का 50 प्रतिशत सब्सिडी के रूप में प्रदान किया जाता है।

टूल बाक्स – 12

क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा किए गए उपाय

- औद्योगिक विकास एक्ट लागू करना
- सार्वजनिक उपक्रमों का विकास
- केंद्रीय सब्सिडी योजना
- यातायात सब्सिडी योजना

- आयात की सुविधाएं
- आयकर से छूट
- औद्योगिक बस्तियां
- भूमि व भवन व्यवस्था
- विद्युत उत्पादन में छूट
- विक्रय कर में छूट
- पूंजी निवेश सब्सिडी योजना
- अधोसंरचना का विकास
- सहयोग देना
- सस्ती ऋण सुविधाएं
- तकनीकी सहायता
- लघु उद्योगों को सुविधाएं

(ङ) आयात की सुविधाएंः—भारत में पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों के लिए कच्चा माल, मशीनों इत्यादि के आयात की आवश्कता पड़ती है। ऐसे उद्योगों को आसान आयात लाइसेन्स देने की सुविधा दी गई है।

(च) आयकर से छूटः—भारत सरकार ने 31 मार्च, 1973 के पश्चात् पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित होने वाले उद्योगों अथवा होटलों के लाभों का 20 प्रतिशत आयकर से मुक्त घोषित कर दिया है। ऐसी छूट पहले दस वर्षों तक दी जाएगी।

(छ) औद्योगिक बस्तियांः—सरकार ने देश के विभिन्न राज्यों में विशेष तौर पर पिछड़े हुए राज्यों में औद्योगिक बस्तियां स्थापित की हैं। इन बस्तियों में सभी प्रकार की सेवाएं जैसे विकसित भूमि, विद्युत तथा जरूरी सेवाएं, रियायती दरों पर दी जाती है। मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(i) उद्योगों का विकेंद्रीकरण,

(ii) बड़े नगरों की अपेक्षा छोटे नगरों के पास औद्योगिक बस्तियां स्थापित करना,

(iii) सहायक उद्योगों को प्रोत्साहित करना।

(ज) भूमि एवं भवन व्यवस्थाः— कई राज्यों में पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने के लिए कई प्रकार की रियायतें दी जाती हैं, जैसे—

(i) आसान शर्तों पर लंबी अवधि के लिए भूमि पट्टे पर दी जाती है।

(ii) औद्योगिक बस्तियों में बनाए जाने वाले भवनों के लिए आंशिक अनुदान की व्यवस्था की गई है।

(iii) कई राज्यों में भूमि के मूल्य का 25 से 50 प्रतिशत अनुदान के रूप में देने की सुविधा है। शेष राशि किश्तों के रूप में ली जाती है।

(झ) विद्युत उत्पादन में छूटः—कई राज्य सरकारों ने पिछड़े हुए क्षेत्रों में विद्युत उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए विद्युत शक्ति की दर मे छूट देने की व्यवस्था की है। ऐसी छूट पिछड़े हुए या अविकसित क्षेत्रों में स्थापित विद्युत उत्पन्न करने वाली इकाइयों को दी जाती है। जैसे उत्तर प्रदेश सरकार ने 5 वर्ष तक उन इकाइयों को विद्युत कर से छूट दे रखी है जो इकाइयां पिछड़े हुए क्षेत्रों में 85 लाख से अधिक पूंजी निवेश करती हैं।

(ञ) विक्रय कर में छूटः— सभी राज्य सरकारें उन औद्योगिक इकाइयों को विक्रय कर में छूट या कुछ रियायतें देती हैं जो इकाइयां पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित की जाती है। जैसे राजस्थान सरकार ने ऐसी इकाइयों पर पांच वर्षों तक विक्रय कर से छूट दे रखी है।

(ट) पूंजी निवेश सब्सिडी योजनाः—यह योजना पांचवी पंचवर्षीय योजना में आरंभ की गई। इसका उद्देश्य उन क्षेत्रों में इस योजना को लागू करना था, जिनमें केंद्रीय सब्सिडी योजना लागू नहीं की

गई थी। इसमें पूंजी निवेश का 15 प्रतिशत अथवा 15 लाख रूपए जो कम है, सब्सिडी के रूप में उद्यमकर्ताओं को सरकारों द्वारा दिया जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में स्थापित इसकी व्यवस्था 20 प्रतिशत तक की गई है।

(ठ) अधोसंरचना का विकासः– इसके अंतर्गत यातायात, संचार, विद्युत, जलापूर्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि सुविधाएं आर्थिक और सामाजिक संरचना में आती है। राज्य सरकारें पिछड़े हुए क्षेत्रों में अधोसंरचना का विकास कर रही है, ताकि कुछ हद तक क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सके।

(ड़) सहयोग देनाः– राज्य सरकारें औद्योगिक इकाइयों को पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित करने के लिए विशेष सहायता प्रदान करती है। जैसे प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करने में पूर्ण सहयोग देना तथा राज्य वित्तीय निगमों से सस्ती ब्याज दरों पर ऋण सुविधाएं प्रदान करना इत्यादि।

(ढ़) सस्ती ऋण सुविधाएंः–भारत के वित्त निगम पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने के लिए सस्ती ब्याज दर पर ऋण प्रदान करते हैं। ऐसी ऋण सुविधाएं महत्वपूर्ण निगमों द्वारा दी जाती है। जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम।

(ण) तकनीकी सहायताः–भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा राज्यों तथा अन्य वित्तीय निगमों के सहयोग से संगठनों की स्थापना की गई है। इन संगठनों का उद्देश्य नए उद्यमियों को तकनीकी सहायता प्रदान करना है। ऐसे सात संगठन जम्मू, कानपुर, कोचीन, गोहाटी, हैदराबाद, भुवनेश्वर, तथा पटना में स्थापित किए गए है। इन संगठनों द्वारा लघु एवं मध्यम इकाइयों तथा राज्य स्तर के निगमों को तकनीकी एवं औद्योगिक प्रबंध के लिए सलाह दी जाती है। इन संगठनों द्वारा नए उद्यमकर्ताओं को प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

(प) लघु उद्योगों को सुविधाएंः– राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के द्वारा पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित होने वाली लघु औद्योगिक इकाइयों को मशीनें उपलब्ध करवाई जाती हैं। ये मशीनें किराया खरीद पद्धति के आधार पर दी जाती हैं। इसके अंतर्गत पिछड़े क्षेत्रों में मशीन की कीमत का 10 प्रतिशत भाग आरंभ में लिया जाता है। परंतु विकसित क्षेत्रों में यह भाग 15 प्रतिशत है। शेष राशि आसान किस्तों में ली जाती है। ऐसी राशि पर पिछड़े हुए क्षेत्रों में ब्याज की दर भी कम निर्धारित की गई है।

सांराश

क्षेत्रीय असंतुलन के जानने के बाद यह प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय असंतुलन के बहुत बुरे प्रभाव पड़ते हैं। क्षेत्रीय असंतुलन आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और प्राकृतिक दृष्टि से देश के लिए हानिकारक है। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, इसलिए क्षेत्रीय असंतुलन को कम किया जाना और सरकार द्वारा दिए गए उपायों को ठीक ढ़ंग से लागू की करना बहुत आवश्यक है। केंद्र की योजनाओं में क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया है। इसके प्रारंभ में लिखा गया है, "विभिन्न राज्यों में आर्थिक विकास अलग–अलग है। जिन राज्यों में अधोसंरचना का ढांचा कम हैं, वह पीछे रह रहे है।" धनी राज्यों तथा निर्धन राज्यों में इस अन्तर को कम करने के प्रयत्न किए जाएंगे।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 क्षेत्रीय असंतुलन से क्या अभिप्राय है?

प्र.2 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन के कारण कौन–से है? इसे कम करने के सुझाव दें।

प्र.3 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्र.4 क्षेत्रीय असंतुलन के कारण बताएं।
प्र.5 क्षेत्रीय असंतुलन का क्या अर्थ है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

प्र.7 क्षेत्रीय असंतुलनों को हटाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों का समीक्षात्मक परीक्षण कीजिए।

प्र.8 क्षेत्रीय असंतुलन क्या है? भारत में क्षेत्रीय असंतुलन को दर्शाए तथा बताइए कि इसे ठीक करने हेतु सरकार ने क्या कदम उठाए हैं?

प्र.9 क्षेत्रीय असंतुलन के क्या कारण रहे है?

प्र.10 निम्नलिखित पर नोट लिखें।

(i) पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत क्षेत्रीय असंतुलन

(ii) क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सुझाव।

(iii) क्षेत्रीय संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम।

प्र.11 भारत में क्षेत्रीय असंतुलन के मुख्य सूचकों का वर्णन करो।

प्र.12 क्षेत्रीय असंतुलन के कारण बताए। इसे कम करने के लिए सरकार द्वारा किए गए उपायों का वर्णन करें।

प्र.13 क्षेत्रीय असंतुलन का क्या अर्थ है? इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन कीजिए।

खंड–3
इकाई–7 औद्योगिक नीति एंव औद्योगिक विकास

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
7.0 प्रस्तावना
7.1 स्वतंत्रता से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति
7.2 स्वतंत्रता से बाद भारत की औद्योगिक नीति
7.3 औद्योगिक नीति 1991
7.4 औद्योगिक लाइसेंसिंग नीतियां
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे :–

- औद्योगिक नीति का अर्थ
- पहली औद्योगिक नीति 1948
- दूसरी औद्योगिक नीति 1956
- तीसरी औद्योगिक नीति 1977
- चौथी नीति 1980
- 1991 औद्योगिक नीति दोष व सुधार
- औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था

7.0 प्रस्तावना

औद्योगिक नीति से अभिप्राय सरकार के उस चिंतन से है, जिसके अंतर्गत औद्योगिक विकास का स्वरूप निश्चित किया जाता है तथा जिसको प्राप्त करने के लिए नियमों व सिद्धांतो को लागू किया जाता है। अन्य शब्दों में औद्योगिक नीति से अभिप्राय सरकार द्वारा की जाने वाली घोषणा से है, जिसके द्वारा वह उद्योगों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति का स्पष्टीकरण करती है। इसमें औद्योगिक लाइसेंसिग नीति, विदेशी निवेश नीति, श्रम–प्रबंधनीति, श्रमिक मजदूरी नीति, औद्योगिक वस्तुओं के कर संबंधी नीति आदि सभी तत्व शामिल किए जाते हैं जिनका औद्योगिक पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।
औद्योगिक नीति में उन सभी सिद्धांतो, विधियों व नियमों का समावेश होता है जो देश के उद्योगों को प्रभावित करते हैं। औद्योगिक नीति के माध्यम से सरकार उन सभी बातों की पूर्ण जानकारी जनता को देती है, जिन्हें वह भविष्य में उद्योगों की स्थापना, प्रबंध एवं विकास के संबंध में अपनाना चाहती है।

टूल बाक्स – 01
<u>औद्योगिक नीति</u>
औद्योगिक नीति के अंतर्गत सरकार उद्योगों से संबंधित अपनी नीतियों की घोषणाएं करती है।

7.1 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति

स्वतंत्रता–प्राप्ति से पूर्व ब्रिटिश शासनकाल में सरकार की किसी प्रकार की कोई औद्योगिक नीति नहीं थी। ब्रिटिश सरकार का भारतीय उद्योगों के विकास के प्रति कोई ध्यान नहीं था। उन दिनों भारत में कच्चा माल इंग्लैंड जाया करता था और वहां के कारखाने में निर्मित होकर भारत में बेचा जाता था। अंग्रेज़ी सरकार तो केवल यही चाहती थी कि भारत इंग्लैंड में बनी वस्तुओं के लिए अच्छी मंडी बना रही। उस समय केवल उन्हीं उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया जिन पर निर्यात व्यापार निर्भर था। यह स्वतंत्र व्यापार का युग था। विदेशी प्रतियोगिता के सामने हमारे विश्वविख्यात कुटीर उद्योग न ठहर सके। अतः उस काल में भारतीय उद्योगों की विकास गति मंद रही। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि, "ब्रिटेन के औद्योगिक विकास की नींव भारत के उद्योग–धन्धों की मृत्यु–शैय्या पर ही रखी गई है।"

प्रथम महायुद्ध के समय इस नीति में कुछ परिवर्तन हुआ। युद्ध की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। सन 1916 में एक भारतीय औद्योगिक आयोग देश में औद्योगिक संभावनाओं की जांच करने के लिए नियुक्त किया गया। 1923 में संरक्षण की नीति अपनाई गई और कुछ देशी उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए प्रयत्न किए गए। किंतु ये प्रयत्न औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं थे। 1945 में औद्योगिक नीति का प्रथम विवरण पत्र तैयार किया गया। इसमें 20 प्रमुख उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण व कईं भारी उद्योगों पर सरकारी स्वामित्व का समर्थन किया गया। इसी बीच स्वतंत्रता संग्राम तीव्र होने से यह प्रयत्न अधूरा ही बना रहा।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	औद्योगिक नीति से क्या अभिप्राय है?
प्र.2	संरक्षण नीति कब बनाई गई और क्यों ?
प्र.3	महात्मा गांधी ने ब्रिटेन के औद्योगिक विकास के बारे में क्या कहा था?

7.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की औद्योगिक नीति

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। देश में जन प्रिय सरकार की स्थापना होने पर लोगों में नए विश्वास व आशा की लहर आई, परंतु उस समय विरासत में मिला औद्योगिक ढांचा अस्त–व्यस्त था। स्फीतिकारी प्रवृतियां, विदेशियों द्वारा पूंजी समेटने, विभाजन के कारण कच्चे माल की कमी, पूंजी का अभाव, श्रमिकों और मालिकों के झगड़े आदि के कारण, देश औद्योगिक संकट से गुजर रहा था। अतः भारत सरकार ने स्थिति सुधारने के उद्देश्य से दिसंबर, 1947 में तत्कालीन उद्योग मंत्री डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में एक औद्योगिक सम्मेलन बुलाया, जिसमें औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव पारित किया गया।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात अब तक पांच औद्योगिक नीतियों की घोषणा हो चुकी है।

(i) पहली औद्योगिक नीति 1948 में, (ii) दूसरी 1956 में, (iii) तीसरी 1977 में, (iv) चौथी 1980 में तथा (v) पांचवी 1991 में।

टूल बाक्स – 02
<u>भारत की पहली औद्योगिक नीति</u>
भारत की पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल 1948 को घोषित की गई उस समय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी उद्योग मंत्री थे।

I. प्रथम औद्योगिक नीति, 1948

6 अप्रैल, 1948 को भारत सरकार ने अपनी पहली औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति का आधार मिश्रित अर्थव्यवस्था था, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के सह–अस्तित्व को बनाए रखने पर बल दिया गया जो विश्व मंच पर आर्थिक प्रणाली का एक नया प्रयोग था। इस नीति की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थी :–

(क) उद्योगों का वर्गीकरण–इस नीति में उद्योगों को चार श्रेणियों में बांटा गया।

(i) सार्वजनिक क्षेत्रः–सार्वजनिक क्षेत्र पहले वर्ग के अंतर्गत आता है। इस वर्ग में उन उद्योगों को शामिल किया गया जिन पर राज्य का पूर्ण अधिकार होता था। इसमें अस्त्र–शस्त्र, परमाणु शक्ति तथा रेलवे परिवहन आदि के उद्योग शामिल किए गए थे।

(ii) सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रः– इस क्षेत्र में 6 प्रमुख उद्योगों, जैसे–(i) लोहा व इस्पात, (ii) कोयला, (iii) हवाई जहाज, (iv) खनिज तथा उद्योग, (v) टेलीफोन, तार व बेतार यंत्र, (vi) समुद्री जहाज निर्माण उद्योग–को रखा गया। इन उद्योगों की वर्तमान इकाइयों को निजी क्षेत्र में रखा गया, किंतु नई इकाइयों की स्थापना केवल सरकार द्वारा ही की जानी थी। साथ ही यह भी घोषणा की गई कि "निजी क्षेत्र में कार्यरत इकाइयों का 10 वर्ष तक राष्ट्रीयकरण नहीं होगा। 10 वर्षों के बाद इस संबंध में निर्णय लिया जाएगा।"

(iii) नियंत्रित निजी क्षेत्रः– इस श्रेणी में वे मूल उद्योग रखे गए जिन पर सरकार का नियंत्रण रखना राष्ट्रीय हित में है। इसमें 18 उद्योगों को शामिल किया गया, जिनमें प्रमुख हैं–चीनी, सूती वस्त्र, जूट, मोटर ट्रैक्टर यंत्र एवं उपकरण, रसायन तथा खाद इत्यादि। यद्यपि इन उद्योगों को निजी क्षेत्र में रखा गया फिर भी सरकार द्वारा इन पर नियंत्रण को आवश्यक समझा गया।

(iv) निजी तथा सहकारी क्षेत्रः– इस वर्ग में शेष सभी उद्योग रखे गए जिन्हें निजी स्वामित्व अथवा सहकारी आधार पर चलाया जाएगा। परंतु यदि किसी उद्योग की प्रगति संतोषजनक नहीं होगी तो सरकार हस्तक्षेप कर सकेगी।

(ख) कुटीर एवं लघु उद्योगः– इस औद्योगिक नीति, 1948 में कुटीर एवं लघु उद्योगों के महत्व पर प्रकाश डाला गया। इससे देश में औद्योगिकरण बढ़ता है और तकनीकी ज्ञान में वृद्धि होती है। यह भी स्पष्ट किया गया कि सरकार इन उद्योगों के विकास का प्रयत्न करेगी, किंतु इनके विकास की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों को सौंपी गई।

(ग) विदेशी पूंजीः–इस नीति में विदेशी पूंजी के प्रति उदारतापूर्ण रूख अपनाया गया, क्योंकि इस समय देश को विदेशी पूंजी की आवश्यकता थी। इससे देश में औद्योगिकरण बढ़ता है और तकनीकी ज्ञान में वृद्धि होती है। यह भी स्पष्ट किया गया कि इन उद्योगों में स्वामित्व तथा प्रबंध में मुख्य भाग भारतीयों का होगा।

(घ) कर नीतिः– सरकार की कर नीति ऐसी होगी जिससे एक ओर तो आर्थिक शक्ति के केंद्रयीकरण को रोका जा सके, दूसरी ओर बचत तथा निवेश को प्रोत्साहन मिल सके।

(ङ) प्रशुल्क नीतिः– प्रशुल्क नीति इस प्रकार की होगी जिससे अनावश्यक विदेशी प्रतियोगिता को रोका जा सके तथा उपभोक्ता पर अनुचित भार डाले बिना देश के साधनों का समुचित प्रयोग किया जा सके।

टूल बाक्स – 03
<u>पहली औद्योगिक नीति की विशेषताएं</u> • उद्योगों का वर्गीकरण 4 श्रेणियों में किया गया • कुटीर एवं लघु उद्योगों को महत्व दिया गया • विदेशी नीति • कर नीति

● श्रम नीति

(च) श्रम नीतिः– सरकार ने यह अनुभव किया कि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हेतु श्रमिकों व मिल–मालिकों के बीच मधुर सम्बन्धों का होना अनिवार्य है। अतः श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलाने, लाभ तथा प्रबंध में श्रमिकों का भाग दिलाने की बात कही गई।

नीति की आलोचनात्मक समीक्षा–

औद्योगिक नीति, 1948 की मुख्य आलोचनाएं इस प्रकार की गई :–

(क) औद्योगिक प्राथमिकताओं का अभावः–इस नीति में औद्योगिक प्राथमिकताओं को निश्चित नहीं किया गया, जबकि देश में साधनों की सीमितता के कारण औद्योगिक विकास के लिए एक निश्चित प्राथमिकता क्रम होना चाहिए था।

(ख) राष्ट्रीयकरण का भयः–इस नीति में 10 वर्षों बाद निजी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की धमकी दी गई थी, जिससे निजी उद्यमियों ने अपने कारखानों की पुरानी मशीनों व यंत्रों को नहीं बदला और अन्य विस्तार कार्य भी स्थगित कर दिए।

(ग) अव्यावहारिक वितरणः–सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के बीच उद्योगों का वितरण अव्यावहारिक था।

(घ) उचित वितरण की उपेक्षाः– केवल उत्पादन वृद्धि पर ही बल दिया गया परंतु उत्पादन के उचित वितरण की उपेक्षा की गई

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	पहली औद्योगिक नीति में उद्योगों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है?
प्र.5	पहली औद्योगिक नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?
प्र.6	पहली औद्योगिक नीति की क्या विशेषताएं हैं?

II. दूसरी औद्योगिक नीति, 1956

इस नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीः–

(i) उद्योगों का वर्गीकरण– इस नीति के अनुसार उद्योगों को तीन भागों में बांटा गयाः

अनुसूची (अ) सार्वजनिक क्षेत्र– इस वर्ग में 17 उद्योग शामिल किए गए जिनके विकास का दायित्व एकमात्र सरकार पर था। इस वर्ग में शामिल किए गए 17 उद्योग इस प्रकार थे–अस्त्र–शस्त्र, अणु शक्ति, लोहा व इस्पात, लोहे व इस्पात के पिंडों की ढ़लाई व तैयारी, भारी मशीनरी, बिजली के यंत्र, कोयला उद्योग, खनिज तेल, जिप्सम तथा सोने की खानें, तांबा, सीसा व जस्त की खानें, वायु परिवहन, रेल परिवहन, जलयान, विद्युत–निर्माण, एयरक्राप्ट निर्माण, टेलीफोन, तार व बेतार यंत्र।

अनुसूची (ब) निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र– इस क्षेत्र में 12 उद्योग शामिल थे। इन लोगों का स्वामित्व अधिकाधिक सरकार के हाथों में होना था तथा नई इकाइयों को लगाने में पहल सरकार की थी। इसके साथ–साथ निजी उद्यम को भी इस क्षेत्र में विकास के अवसर दिए जाने थे। इस भाग में रखे गए उद्योग इस प्रकार थे–अन्य खनिज, एल्युमीनियम व अन्य अलौह धातुएं, मशीनी औजार, लौह मिश्रित धातुएं, रसायन उद्योग, औषधियां, उर्वरक, कृत्रिम रबर, रासायनिक घोल, सड़क–परिवहन, समुद्री परिवहन इत्यादि।

अनुसूची (स) निजी क्षेत्र–शेष सभी उद्योग इस श्रेणी में रखे गए जिनके विकास व स्थापना का कार्य निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया।

(ii) लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकासः–इस नीति में लघु एवं कुटीर उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। यह स्पष्ट किया गया कि सरकार इन उद्योगों का विकास करने के लिए बड़े उद्योगों के उत्पादन की सीमा निर्धारित करेगी, विभेदात्मक कर प्रणाली अपनाकर कुटीर व लघु उद्योगों को प्रत्यक्ष सहायता देगी।

(iii) विदेशी पूंजीः— इस नीति में भी विदेशी पूंजी का स्वागत किया गया। इस नीति में यह स्पष्ट किया गया कि सरकार देशी व विदेशी पूंजी में कोई भेद—भाव नहीं करेगी। राष्ट्रीय हित में विदेशी पूंजी का राष्ट्रीकरण करने पर उचित मुआवजा दिया जाएगा।

(iv) श्रमिकों के लिए उचित सुविधाएंः— इस नीति में उद्योगों में लगे श्रमिकों व अन्य कर्मचारियों को विशेष सुविधाएं देने की व्यवस्था की गई। औद्योगिक शांति की स्थापना पर बल दिया गया। श्रमिकों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए तथा उनकी काम करने की दशाओं में सुधार लाने पर भी विशेष जोर दिया गया।

(v) संतुलित क्षेत्रीय विकासः— इस नीति में यह स्पष्ट किया जो क्षेत्र औद्योगिक रूप से पिछड़े हैं, उनका पर्याप्त औद्योगिक विकास किया जाएगा।

(vi) निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में सहयोगः— इस नीति में स्पष्ट किया कि उद्योगों का वर्गीकरण पूर्णतः जटिल नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर विभाजन में परिवर्तन किया जा सकता है।

टूल बाक्स — 04
दूसरी औद्योगिक नीति की विशेषताएं
• उद्योगों को तीन वर्गों में बांटा गया • लघु व कुटीर उद्योगों पर बल • विदेशी पूंजी का स्वागत • श्रमिकों को विशेष सुविधाएं • पिछड़े क्षेत्रों का पर्याप्त औद्योगिक विकास • निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों मे सहयोग

नीति की आलोचनात्मक समीक्षा

औद्योगिक नीति, 1956 की निम्नलिखित आधारों पर कटु आलोचना की गईः—

(i) निजी क्षेत्र की उपेक्षाः— इस नीति में निजी क्षेत्र का दायरा संकुचित करके सरकार ने उनके साथ अन्याय किया है। इसमें भी राष्ट्रीयकरण की धमकी परोक्ष रूप से विद्यमान है।

(ii) अस्पष्ट नीतिः—यह नीति अस्पष्ट व अनिश्चित है। इसमें राष्ट्रीयकरण की नीति को स्पष्ट नहीं किया गया है। साथ ही यह भी कहा गया कि सरकार किसी भी उपक्रम अथवा उद्योग को अपने अधिकार में ले सकती है।

(iii) राजकीय पूंजीवाद को बढ़ावाः— आधारभूत उद्योगों की स्थापना में सार्वजनिक क्षेत्र को जो महत्व दिया गया है, उससे राजकीय पूंजीवाद को भी बढ़ावा मिलता है।

(iv) आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरणः— आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण निजी क्षेत्र की अपेक्षा राजनीतिज्ञों और पदाधिकारियों के हाथों में था जो देश के हित में नहीं था।

(v) श्रम हितों की रक्षाः—इन नीतियों में श्रमिकों के हितों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

(vi) अस्पष्ट विदेशी पूंजी नीतिः—विदेशी पूंजी के विषय में इस नीति के अंतर्गत कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं की गई।

(vii) स्थिरता का अभावः— इस नीति में स्थिरता का अभाव है। नीति में बार—बार परिवर्तन लाने से निजी क्षेत्र को ठेस पहुंचती है।

(viii) अवास्तविकः— इस नीति में सैद्धांतिक पहलू पर अधिक बल दिया गया है। समाजवादी समाज की स्थापना के जोश में आकर वास्तविकता को भुला दिया गया है।

III. तीसरी औद्योगिक नीति 1977

23 दिसंबर, 1977 को जनता सरकार के तत्कालीन उद्योग मंत्री श्री जॉर्ज फर्नाण्डीज ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की।

टूल बाक्स – 05
<u>तीसरी औद्योगक नीति की आवश्यकताएं</u>
• राष्ट्रीय आय में अपर्याप्त वृद्धि • बेरोज़गारी • गांव व शहरों में असमान विकास • बीमार उद्योग • आर्थिक शक्ति का केंद्रीयकरण • निवेशों में स्थिरता • बड़े औद्योगिक केंद्रों में जमाव होना

नई नीति की आवश्यकता– 1956 की औद्योगिक नीति की सफलता संतोषजनक नहीं थी, क्योंकि–

(i) पिछले 10 वर्षों में राष्ट्रीय आय में लगभग 1.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई। यह वृद्धि अपर्याप्त थी।

(ii) बेरोज़गारी बढ़ गई थी।

(iii) गांव तथा शहरों के बीच असमानताएं बढ़ गई थी।

(iv) निवेश दर में स्थिरता सी आ गई थी।

(v) बीमार उद्योगों की समस्या जटिल हो गई थी।

(vi) आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण हो गया था।

(vii) बड़े औद्योगिक केंद्रों में उद्योगों का जमाव हो गया था।

नई औद्योगिक नीति के पहले की कमियों को दूर करने की दिशा में कार्य करने की व्यवस्था की गई ताकि समयबद्ध आर्थिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य को पूरा किया जा सके।

विशेषताएं– इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(क) लघु व कुटीर उद्योगों को विशेष महत्वः–1977 की औद्योगिक नीति में लघु व कुटीर उद्योगों के विकास को सर्वाधिक महत्व दिया गया। नई औद्योगिक नीति में 504 वस्तुएं लघु व कुटीर उद्योगों के लिए सुरक्षित रखी गई, जबकि अभी तक इन वस्तुओं की संख्या केवल 180 थी। छोटे उद्योगों को कई तरह की रियायतों की घोषणा की गई। इन उद्योगों को गांवों में स्थापित किए जाने को प्रोत्साहन दिया गया। इन उद्योगों की सहायता के लिए प्रत्येक जिले में जिला उद्योग केन्द्र खोले गए।

बहुत छोटे क्षेत्र–लघु उद्योग क्षेत्र में से बहुत छोटे क्षेत्र को विशेष महत्व दिया गया। बहुत छोटा क्षेत्र वह है जिसमें किया गया निवेश एक लाख रूपये से कम है।

(ख) बड़े उद्योगों का क्षेत्र–यद्यपि इस नीति में छोटे उद्योगों को अधिक महत्व दिया गया, परंतु बड़े पैमाने के उद्योगों की भूमिका को स्पष्ट किया गया। बड़े उद्योगों का क्षेत्र निम्नलिखित चार वर्गों में बांटा गया:–

(i) आधारभूत उद्योग–जैसे इस्पात, अलौह धातुएं, सीमेंट, तेलशोधक कारखाने आदि जो लघु व कुटीर उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक हैं।

(ii) पूंजीगत उद्योग–जिसमें लघु व कुटीर उद्योगों को मशीनरी मिल सके।

(iii) उच्च तकनीक वाले उद्योग–जैसे खाद, कीटाणुनाशक दवाइयां, पेट्रो–केमिकल्स आदि।

(iv) अन्य उद्योग जो विकास के लिए आवश्यक हों तथा लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित नहीं हैं।

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिकाः–इस नीति में स्पष्ट किया गया कि सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका बढ़ती हुई होगी। इस क्षेत्र का उपयोग न केवल आधारभूत उद्योगों के लिए किया जाएगा, वरन

उपयोग वस्तुओं के उत्पादन में भी किया जाएगा ताकि उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएं उचित कीमतों पर उपलब्ध हो सकें।

(घ) देशी व विदेशी तकनीकः— इस नीति में स्पष्ट किया गया कि जहां तक संभव हो सके, भविष्य में औद्योगिक विकास देशी तकनीक पर ही आधारित होगी। विदेशी तकनीक का प्रयोग उन उद्योगों के लिए रखा जाएगा जहां भारतीय तकनीक अभी विकसित नहीं हो पाई है।

(ङ) विदेशी पूंजीः—विद्यमान विदेशी कंपनियों पर विदेशी विनिमय को कठोरता से लागू किया जाएगा। विदेशी विनियोग व तकनीक की अनुमति उन्हीं शर्तों पर दी जाएगी जो राष्ट्रीय हित में हो।

(च) बड़े औद्योगिक घरानेः—इस नीति में कहा गया कि बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा अपने उद्योगों के विस्तार एवं नई इकाइयों की स्थापना को एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार अधिनियम द्वारा ही अनुमति दी जाएगी। बड़े घरानों को अपने उद्योग के लिए स्वयं के साधनों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

(छ) संयुक्त उपक्रमः—भारतीय उद्योगपतियों द्वारा विदेशों में जो संयुक्त उपक्रम स्थापित किए जाएंगे, वे मुख्य रूप से तकनीकी जानकारी और प्रबंधकीय योग्यता पर ही आधारित होंगे, क्योंकि भारत में पूंजी का निर्यात न तो संभव ही है और न ही उचित।

(ज) पिछड़े क्षेत्रों का विकासः—नई औद्योगिक नीति में पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देते हुए क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने की बात कही गई। ग्रामीण भारत में आवश्यकता इस बात की है कि गांवों में अधिकाधिक विकास किया जाए। इस नीति के अनुसार जिन शहरों एवं कस्बों की आबादी 5 लाख से कम है, उनमें लघु व कुटीर उद्योगों का विकास किया जाएगा।

(झ) लाइसेंसिग नीति को सरल बनानाः—सरकार ऐसे तरीके अपनाएगी जिससे उद्योगों को लाइसेंस देने का कार्य सरल हो सके।

(ञ) बीमार मिलेंः—इस नीति में कहा गया है कि सरकार भविष्य में बीमार मिलों की उचित देखभाल के बाद ही अपने अधिकार में लेगी।

(ट) प्रबंध में श्रमिक की भागीदारीः—इस संबंध में सरकार की नीति यह होगी कि सरकार ऐसे उपायों को विकसित करेगी, जिससे कर्मचारियों में अपने उपक्रम के संचालन के प्रति लगाव उत्पन्न हो सके। इसके लिए सरकार को अंश—पूंजी में श्रमिक—भागिता, शॉप फ्लोर से लेकर बोर्ड स्तर तक निर्णय लेने में श्रमिकों के सहयोग की नीति पर जोर देगी।

(ठ) खादी एवं ग्राम उद्योगः—इस नीति में कहा गया है कि सरकार खादी कार्यक्रम के संबंध एवं इसके विपणन में सहायता देने के लिए वचनबद्ध है। सरकार यह भी प्रयास करेगी कि खादी व ग्राम उद्योगों को संगठित उद्योगों की प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े।

(ड़) मूल्य नीति :—मूल्य नीति के संबंध में सरकार उद्योगों को इस बात की अनुमति नहीं देगी कि वे अपनी क्षमता से कम कार्य पर अधिक लाभ उठाएं, परंतु जिन उद्योगों में मूल्य नियंत्रण है वहां नियंत्रित मूल्यों में उद्यमियों को पर्याप्त लाभ दिलाने के प्रयत्न किए जाएंगे।

(ढ़) विदेशी व्यापारः— उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों के विकास के लिए आयात के उदारीकरण की नीति अपनाई जाएगी। निर्यातों को बढ़ावा दिया जाएगा। आत्म निर्भरता के उद्देश्य की प्राप्ति की जाएगी।

टूल बाक्स — 06
पहली दो औद्योगिक नीतियों की अपर्याप्त सफलता के कारण 23 दिसंबर 1977 को तत्कालीन उद्योग मंत्री जॉर्ज फर्नाण्डीस ने तीसरी औद्योगिक नीति की घोषणा की।

नीति की आलोचनात्मक समीक्षा

इस नीति के संबंध में भी मिली—जुली प्रतिक्रियाएं देखी गई। कुछ लोगों ने इस नीति का समर्थन किया जबकि कुछ लोगों ने इसकी आलोचना की। इस नीति के समर्थकों का कहना है कि इस नीति से—

(i) पिछड़े क्षेत्रों का विकास होगा।

(ii) भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास होगा।

(iii) बड़े घरानों पर प्रतिबंध लगाने से एकाधिकारी प्रवृत्ति समाप्त होगी।

(iv) यह नीति अधिक स्पष्ट, विस्तृत एवं व्यावहारिक है।

लेकिन कुछ लोगों ने इस नीति की आलोचना इस प्रकार की हैः–

(i) जनता सरकार एक बिल्कुल नई नीति का निर्माण नहीं कर सकी।

(ii) बड़े उद्योगों के विस्तार पर प्रतिबंध लगाने से देश में वस्तुओं का अभाव होगा।

(iii) नई नीति में देश में शक्ति की कमी के विषय मे कुछ नहीं कहा है।

(iv) वर्तमान औद्योगिक झगड़ों को कम करने के विषय में कोई नए सुझाव नहीं दिए गए।

(v) बड़े औद्योगिक घरानों पर प्रतिबंध लगाना भी राष्ट्र हित में नहीं होगा, क्योंकि ये व्यक्ति प्रबंधकीय योग्यता में निपुण होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.7	तीसरी औद्योगिक नीति कब और किसके द्वारा घोषित की गई?
प्र.8	तीसरी औद्योगिक नीति में उद्योगों को कितने क्षेत्रों में बांटा गया?
प्र.9	तीसरी औद्योगिक नीति की आलोचनाएं क्या की गई?

IV. चौथी औद्योगिक नीति, 1980

24 जुलाई, 1980 को सरकार द्वारा चौथी औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। औद्योगिक नीति का निर्णय औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 के आधार पर किया गया। इस नीति की प्रमुख विशेषताएं या लक्ष्य निम्नलिखित थेः–

(i) उद्योगों की वर्तमान उत्पादन क्षमता का अधिकतम संभव उपयोग करना,

(ii) उद्योगों की उत्पादकता एवं क्षमता बढ़ाना।

(iii) अर्थव्यवस्था में अधिकतम संभव रोज़गार के अवसर उत्पन्न करना,

(iv) एकाधिकार और आर्थिक केंद्रीकरण का विरोध करना।

विशेषताएं

(क) **पूंजी सीमा में वृद्धिः**–सूक्ष्म इकाइयों की पूंजी सीमा एक लाख रूपये से बढ़कर दो लाख रूपये, लघु उद्योगो की सीमा दस लाख रूपये से बढा़कर बीस लाख रूपये तथा सहायक इकाइयों की सीमा 25 लाख रूपये तक कर दी गई।

(ख) **अधिक उत्पादन की अनुमतिः**–कुछ विशेष उद्योगों को लाइसेंस में अंकित उत्पादन सीमा से अधिक उत्पादन की अनुमति दी गई।

(ग) **आवश्यकताओं के अनुसार उद्योगः**–देश के प्रत्येक जिले में स्थानीय आवश्यकताओं और संसाधनों के अनुकूल कुछ बड़े उद्योग स्थापित किए, ताकि इन उद्योगों के आधार पर छोटे और सहायक उद्योग पनप सकें।

(घ) **छोटे और बड़े उद्योगों में विभाजन नहींः**–सरकार सक्षम, लघु, मध्यम, और बड़े उद्योगों के बीच कोई कृत्रिम विभाजन नहीं करेगी। सभी श्रेणियों के बीच आदान–प्रदान और विकास की संभावनाएं खुली रहने दी जाएगी।

(ङ) **राष्ट्रीयकरण का भय नहींः**–बीमार उद्योगों को केवल अत्यधिक कठिनाई के संदर्भ में ही राष्ट्रीयकृत करने का निर्णय लिया जाएगा। कमज़ोर उद्योगों को बीमार होने से बचाने के लिए सरकार समय–समय पर जरूरी सूचना एकत्रित करती रहेगी।

(च) **प्रबंधमें सुधारः**–सार्वजनिक उपक्रमों का कामकाज ठीक करने के लिए सरकार आवश्यक कदम उठाएगी जिनका प्रबंध सुधारने के लिए सरकार वित्त, तकनीकी, प्रबंध तथा औद्योगिक संबं0ण्धों के क्षेत्र में कुशल और योग्य व्यक्तियों का कैडर बनाने की दिशा में कदम उठाएगी।

(छ) निर्यात को प्रोत्साहन—सारा उत्पादन निर्यात करने वाले उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाएगा। इसके अलावा उत्पादन बढ़ाकर अतिरिक्त उत्पादन निर्यात करने की भी अनुमति दी जाएगी।
(ज) आधुनिक तकनीक का प्रयोगः—सरकार उन उद्योगों को आधुनिक तकनीक अपनाने को कहेगी जिनसे देश के निर्यातों में वृद्धि हो सके। आधुनिक तकनीक अपनाने से वस्तुओं की किस्म में सुधार होगा तथा उत्पादन लागत गिरेगी।
(झ) लाइसेंसिंग प्रणाली—औद्योगिक लाइसेंस का तरीका सरल किया जाएगा।
(ञ) अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध—अच्छे औद्योगिक संबंधों की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसके लिए त्रि—पक्षीय श्रम—सम्मेलन किए जाएंगे।
(ट) बीमार मिलेंः—सरकार ऐसी बीमार मिलों को जिनके सुधार की संभावना हो, स्वस्थ मिलों के साथ विलय की अनुमति देगी।

टूल बाक्स — 07

(ठ) उद्योगों का सामाजिक दायित्वः—उद्योगों को अपना सामाजिक दायित्व निभाना होगा। अर्थात उन्हें मूल्य वृद्धि और जमाखोरी को रोकने के लिए प्रयत्नशील रहना होगा।
(ड) संतुलित क्षेत्रीय विकासः—बड़े शहरों में जहां पहले ही उद्योग स्थापित है वहां नए उद्योग स्थापित नहीं किए जाएंगे। ऐसे क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना की जाएगी जहां उद्योगों का अभाव होगा। इस प्रकार क्षेत्रीय संतुलन किया जाएगा।

आलोचना

यद्यपि नई औद्योगिक नीति में अधिक उन्नति व विकास की संभावनाएं निहित है फिर भी यह दोषरहित नहीं है। इस नीति की प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:—
(क) आधारभूत परिवर्तन का अभावः—इस नीति में कोई आधारभूत परिवर्तन नज़र नहीं आता। इसका आधार 1956 की नीति ही है।
(ख) स्पष्ट दिशा—निर्देश का अभावः—यह नीति स्पष्ट नहीं है। इसमें यह नहीं बतलाया गया कि क्या उत्पादन किया जाना है और किसके लिए किया जाना है।
(ग) विदेशी पूंजी की अवहेलनाः— इसमें औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूंजी के योगदान की अवहेलना की गई है।
(घ) आधारभूत संरचना की उपेक्षाः— इन्फ्रास्ट्रक्चर, जैसे शक्ति, सिंचाई, यातायात आदि के विकास के लिए पर्याप्त निवेश की व्यवस्था नहीं की गई।
(ङ) मूल वस्तुओं की अपर्याप्त पूर्तिः—देश में पाई जाने वाली आधारभूत वस्तुओं; जैसे—सीमेंट, इस्पात, कोयले आदि की पूर्ति में वृद्धि करने के लिए कोई ठोस नीति प्रस्तुत नहीं की गई।
(च) निजी क्षेत्र के पक्ष में— इस नवीन नीति का झुकाव निजी क्षेत्र के पक्ष में है। इसमें निजी क्षेत्र के स्वतः विकास की सुविधा की गई है। अनाधिकृत अतिरिक्त क्षमता को नियमित करने की बात कही गई है। उनमें निवेश सीमा को बढ़ाने, राष्ट्रीयकरण के भय से मुक्ति व निर्यातोन्मुख उत्पादन को प्रोत्साहन देने व मितव्ययिता के लिए तकनीकी विकास आदि की सुविधा भी निजी क्षेत्र को दी गई है।
(छ) लाइसेंसिंग नियमों के उल्लघंन को प्रोत्साहनः— नवीन नीति में अनाधिकृत अतिरिक्त क्षमता को नियमित करने की बात कही गई है। इससे नियमों के उल्लघंन को प्रोत्साहन मिलेगा व एकाधिकारी प्रवृत्ति को बल मिलेगा।
(ज) पूंजी गहन उद्योगः—नवीन नीति में उन्नत तकनीक अपनाने की अनुमति देने की बात कही गई है। इससे पूंजी गहन उद्योगों की ओर झुकाव बढ़ेगा जिसका प्रभाव रोज़गार पर पड़ेगा।
(झ) राजनीति पर आधारितः—यद्यपि यह नीति व्यावहारिक है, लेकिन फिर भी इसे राजनीति से प्रेरित या राजनीतिक पर आधारित बताया जाता है।

संक्षेप में, यह नीति व्यावहारिक व सामाजिक है। उत्पादन क्षमता का पूरा–पूरा उपयोग व नियमित करने से भावी बचतों का विकास होगा। आय, उत्पादन व रोज़गार भी बढ़ेगा। निर्यातोन्मुख उद्योगों के विकास से विदेशी असंतुलन में कमी होगी। उन्नत तकनीक अपनाने से न केवल लागत में मितव्ययताएं ही मिलेंगी, बल्कि वस्तु की क्वालिटी में भी सुधार होगा। जिससे टूट–फूट कम होगी। गरीबी मिटाने या कम करने में भी सहायता मिलेगी। अर्थव्यवस्था में भी सुधार होगा।

7.3 नई औद्योगिक नीति, 1991

श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व में स्थापित कांग्रेस सरकार ने 24 जुलाई, 1991 को अपनी नई औद्योगिक नीति की घोषणा की है। यह नीति एक खुली और उदार औद्योगिक नीति है। इस औद्योगिक नीति का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्त करना है।

नीति के उद्देश्य

(i) पिछले चालीस वर्षों की उपलब्धियों को मजबूत बनाना और विकास के क्रम को आगे बढ़ाना,

(ii) पिछले चालीस वर्षों के दौरान देश के औद्योगिक ढांचे में जो कमियां दिखाई दी हैं उन्हें दूर करना,

(iii) उत्पादकता और रोज़गार के अवसरों में वृद्धि करना,

(iv) भारतीय उद्योगों की अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा क्षमता में सुधार लाना,

(v) सार्वजनिक क्षेत्र को लाभप्रद बनाना,

(vi) निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता देना।

टूल बाक्स –08
<u>औद्योगिक नीति 1991</u> 24 जुलाई 1991 को एक नई उदार औद्योगिक नीति को लागू किया गया जो कि एक अच्छी व प्रभावकारी नीति बनी।

नई औद्योगिक नीति की विशेषताएं या व्यूह रचना

(क) लाइसेंस की समाप्तिः–नई नीति में 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों के लिए लाइसेंस समाप्ति की घोषणा की दी गई। जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस जरूरी है वे हैं–कोयला, पैट्रोलियम, चीनी, सिगरेट, मोटरकार, बसें, अखबारी कागज, रक्षा उपकरण, औषधि एवं विलासिता की कुछ वस्तुएं। लेकिन 1999 में अब केवल 4 उद्योगों के लिए ही लाइसेंस प्रणाली लागू की है। इन उद्योगों के अतिरिक्त शेष उद्योगों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतियोगी और आधुनिक बनाने के अवसर दिए जाएंगे।

(ख) पंजीकरण की समाप्तिः– इस नई औद्योगिक नीति के अनुसार सभी पंजीकरण योजनाओं को समाप्त कर दिया जाएगा। उद्यमियों को नई परियोजनाओं तथा पर्याप्त विस्तार के लिए केवल एक सूचना ही देनी होगी।

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिकाः– इस नीति में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को संकुचित किया गया है। इसके लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 4 कर दी गई। इस नीति के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र में सैनिकों के साजो–सामान, परमाणु ऊर्जा, खनन तथा रेल परिवहन ही रहेगा। अन्य सभी क्षेत्र निजी उद्योगों के लिए खुल जाएंगे। सरकारी उपक्रमों के लिए अब तक

सुरक्षित क्षेत्र धीरे–धीरे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए जाएंगे। सार्वजनिक क्षेत्र के शेयरों का कुछ भाग म्यूचुअल फंड, वित्तीय संस्थाओं एवं कर्मचारियों और आम जनता को बेचने का प्रावधान किया गया है।

नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र का देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा। परंतु सरकार इनका संचालन व्यावसायिक आधार पर करेगी। सार्वजनिक उद्यम उन क्षेत्रों में भी उद्योग स्थापित करेगें जो उसके लिए सुरक्षित नहीं है।

(घ) बोर्ड का गठनः—इस नीति के अनुसार कुछ चुने हुए क्षेत्रों में सीधे विदेशी पूंजी निवेश के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड गठित होगा। इसका उद्देश्य भारत में उपक्रम स्थापित करने के लिए बड़ी अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के साथ सारी बातें तय करनी होगी। भारी मात्रा में विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित करने के लिए, आधुनिकतम तकनीक प्राप्त करने के लिए तथा भारत की पहुंच विश्व भर की मंडियों तक करने के लिए विशेष कार्यक्रम निर्धारित होगा।

(ङ) विदेशी पूंजी निवेशः—नई नीति के अनुसार विदेशी पूंजी–निवेश की सीमा को बढ़ा दिया गया। यह 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 51 प्रतिशत की दी गई। उच्च प्राथमिकता के 48 उद्योगों में 51 प्रतिशत तक पूंजी निवेश की अनुमति बिना रोक–टोक के दी जाएगी। निर्यात करने वाले व्यापारिक घरानों को 51 प्रतिशत तक विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति होगी। इस संबंध में विदेशी मुद्रा नियमन कानून में आवश्यक संशोधन कर दिए जाएगें। रिजर्व बैंक विदेशों को भेजे गए लाभांशों पर नजर रखेगा, ताकि बाहर भेजी गई विदेशी मुद्रा और उस कंपनी की निर्यात आय के बीच संतुलन बना रहे। नई नीति के अंतर्गत विदेशी पूंजी के अन्य मामलों के लिए पहले मंजूरी लेनी होगी।

(च) घाटे वाले सरकारी उद्योगः—औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड अथवा इसी प्रकार का अन्य विशेष संस्थान घाटे वाले सरकारी उद्योगों के लिए अलग से योजना तैयार करेगी। इसके कारण प्रभावित कर्मचारियों के हितों की रक्षा की जाएगी।

टूल बाक्स —09
<u>11 की नई औद्योगिक नीति की विशेषताएं</u> • लाइसेंस की समाप्ति • पंजीकरण की समाप्ति • सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका • बोर्ड का गठन • विदेशी पूंजी निवेश • घाटे वाले सरकारी उद्योग • विदेशी तकनीक • सरकारी प्रोत्साहन • कर्मचारियों को सुविधाएं • उद्योगों की स्थापना • एकाधिकारी कानून में संशोधन • लघु उद्योगों को आरक्षण • आयात सुविधाएं • प्रशासनिक नियंत्रणों का अभाव

(छ) **विदेशी तकनीकः**–कुछ चुने हुए उद्योगों में जहां आधुनिकतम तकनीक की आवश्यकता है, विदेशों से ऐसी तकनीक या विशेषज्ञ उपलब्ध करवाने की प्रक्रिया सरल बना दी जाएगी। इस संबंध में विदेशी मुद्रा भुगतान की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी।

(ज) **सरकारी प्रोत्साहनः**– नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत क्षेत्रीय असंतुलन को कम किया जाएगा। पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों को सरकार प्रोत्साहन देगी।

(झ) **कर्मचारियों को सुविधाएंः**–सामाजिक सुरक्षा योजना बनाई जाएगी, ताकि छंटनी किए गए कर्मचारियों और श्रमिकों का पुनर्वास हो सके। इसके लिए राष्ट्रीय नवीनीकरण निधि की स्थापना की जाएगी। इसके द्वारा तकनीकी परिवर्तन के दौरान प्रभावित श्रमिकों को सहायता दी जाएगी।

(ञ) **उद्योगों की स्थापनाः**–दस लाख तक की जनसंख्या वाले शहरों को छोड़ दिया जाएगा। अन्य नगरों से (ऐसे उद्योगों के अतिरिक्त जिनके लिए लाइसेंस अनिवार्य है) उद्योग लगाने के लिए केंद्रीय सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। दस लाख जनसंख्या वाले नगरों के मामले में इलेक्ट्रानिक्स और इसी तरह से गैर–प्रदूषणकारी उद्योगों को छोड़ दिया जाएगा। शेष सभी इकाइयां नगर की सीमा से 20 किलोमीटर दूर लगाने का प्रावधान होगा।

(ट) **एकाधिकारी कानून में संशोधनः**–एकाधिकारी कानून संशोधन कर लागू कर दिया गया है। निर्धारित पूंजी निवेश सीमा को समाप्त कर दिया है। इससे बड़ी कंपनियों और औद्योगिक घराने उद्योगों के विस्तार कर सकेगें। उन्हें नए उद्योग खोलने, कंपनियां खरीदने एवं विलय करने के लिए रोक–टोक नहीं होगी। परंतु इस नीति में अनुचित उद्योग एवं व्यापारिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए अधिक महत्व दिया जाएगा। इसके अंतर्गत किसी भी उपभोक्ता की शिकायत पर नए अधिकार प्राप्त एकाधिकार बोर्ड को किसी भी मामले की जांच का अधिकार होगा।

(ठ) **लघु उद्योगों को आरक्षणः**– नई नीति में लघु उद्योगों के लिए सुविधाओं की घोषणा अलग से की जाएगी। इनके लिए कुछ वस्तुओं का उत्पादन सुरक्षित रखा जाएगा। इन वस्तुओं का उत्पादन बड़े उद्योग नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार लघु उद्योगों के लिए विशेष व्यवस्था की जाएगी।

(ड़) **आयात सुविधाएंः**–इस नीति के अनुसार दो करोड़ रुपए से अथवा कुल पूंजी के 25 प्रतिशत से कम की उत्पादन मशीनों को आयात करने की स्वतंत्रता होगी। उत्पादन मशीनों के आयात के अन्य मामलों में औद्योगिक विकास मंत्रालय का औद्योगिक सचिवालय, विदेशी मुद्रा उपलब्धि के अनुसार आयात की अनुमति देगा।

(ढ़) **प्रशासनिक नियंत्रणों का अभावः**–वर्तमान उद्योगों को बिना किसी अतिरिक्त पूंजी निवेश के अपने लाइसेंस प्राप्त क्षेत्र की किसी भी वस्तु के उत्पादन की पूरी छूट दे दी जाएगी। नए उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रशासनिक नियंत्रणों से मुक्त कर दिया जाएगा।

मूल्यांकन– नई औद्योगिक नीति उदारवादी नीति है। इसका उद्देश्य भारतीय उद्योगों को अनावश्यक प्रशासनिक एवं कानूनी नियंत्रणों से स्वतंत्र करना है। इस नीति के कारण भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में क्रांतिकारी एवं आधारभूत परिवर्तन हुए हैं। इस नीति के मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं

(**i**) औद्योगिक लाइसेंसिग की समाप्ति के फलस्वरूप उद्योगों की स्थापना सरल

(**ii**) विदेशी पूंजी का देश में अधिक आगमन हो सकेगा

(**iii**) भारतीय उद्योग आन्तरिक तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रतियोगी हो सकेंगे

(**iv**) सार्वजनिक क्षेत्र अधिक लाभप्रद तथा कुशल बन सकेगा

(**v**) लघु उद्योगों का अधिक विकास हो सकेगा

(**vi**) सार्वजनिक क्षेत्र का घाटा कम होगा

(**vii**) निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा।

1991 की नई औद्योगिक नीति के गुण और दोष या नई औद्योगिक नीति के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क

भारत सरकार ने 24 जुलाई, 1991 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। यह एक उदारवादी नीति है। इसका मुख्य उद्देश्य उद्योगों को अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्त करना है। इस नीति में गुण और दोष दोनों है।

नई औद्योगिक नीति के गुण निम्नलिखित हैः–

1. **कम समय और लागतः**–14 उद्योगों को छोड़कर शेष उद्योगों की स्थापना के लिए पूर्व अनुमति की आवयश्यकता न रहने के कारण उनसे संबंधित परियोजना लागू करने के लिए कम समय व कम लागत आएगी।
2. **सीमित साधनों में वृद्धिः**–विदेशी निवेश तथा पूंजी तकनीकी समझौते से भारतीय अर्थव्यवस्था के सीमित साधनों में वृद्धि होगी। परिणामस्वरूप राष्ट्र का उत्पादन बढ़ेगा।
3. **उदारवादी अर्थव्यवस्थाः**–इसमें प्रशासनिक बाधाओं को हटाकर अर्थव्यवस्था को उदार बनाने की व्यवस्था है।
4. **कार्यकुशलता में वृद्धिः**–सार्वजनिक क्षेत्र का आकार संकुचित होगा। इसके साथ बीमार इकाइयों के बंद किए जाने से सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी।
5. **प्रतियोगिता शक्ति में वृद्धिः**–नई औद्योगिक नीति से भारतीय उद्योगों की प्रतियोगिता शक्ति में वृद्धि होगी। एकाधिकारी प्रवृति कम हो जाएगी।
6. **लघु उद्योगों के लिए अलग नीतिः**–इस नीति के आधार पर देश में पहली बार लघु स्तर के उद्योगों के विकास के लिए एक अलग नीति की घोषणा की गई। यह नीति 6 अगस्त, 1991 को घोषित की गई थी। सन 1991 से लघु उद्योगों की निवेश सीमा बढ़ाकर 1 करोड़ रूपए कर दी गई है। यह सीमा अति लघु इकाइयां के लिए 25 लाख रूपए तक कर दी गई है।
7. **श्रमिकों के कल्याण में वृद्धिः**–इस नीति में श्रमिकों के कल्याण में वृद्धि की बात कही गई। देश के विकास में श्रमिकों की भागीदार बनाने का भी प्रावधान रखा गया।

नई औद्योगिक नीति के दोषः–इस नीति के मुख्य दोष निम्नलिखित है :–

नई औद्योगिक नीति के गुण होते हुए भी कई अर्थशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों ने इसकी आलोचना की है। श्री मधु दण्डवते के अनुसार,"इस नीति ने एकाधिकारी घरानों की सीमा समाप्त कर दी है। इसके परिणामस्वरूप लघु उद्योगों को हानि उठानी पडेगी। बेरोजगारी तथा निर्धनता बढ़ेगी।" श्री चंद्रशेखर ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है,"यह नीति गांधीवादी से बिल्कुल अलग है।"

1. **निजी क्षेत्र को अधिक महत्वः**–इस नीति ने निजीकरण को आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया है। नीति की मान्यता कि निजीकरण से कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, वास्तविक नहीं है। मात्र निजीकरण से कार्य कुशलता में वृद्धि नहीं होती। यह तो प्रतियोगिता से होती है।
2. **सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्वः**–सार्वजनिक क्षेत्र के आकार को अनावश्यक रूप से संकुचित कर दिया गया। अनेक उद्योगों के निजीकरण के कारण तथा कुछ उद्योगों के बंद होने से सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व कम हो गया।
3. **क्षेत्रीय असमानता में वृद्धिः**–इस नीति से देश में क्षेत्रीय असमानताएं भी बढ़ेगी। लाइसेंसिंग नीति के उदारवादी होने के कारण तथा कुछ उद्योगों की स्थापना पर लगे प्रतिबंध हटने से उद्यमी अब विकसित क्षेत्रों में ही नए उद्योग लगाना पसंद करेंगे।
4. **आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण में वृद्धिः**–कई आलोचकों के अनुसार, नई नीति से देश में आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ी, क्योंकि नीति में एम.आर.टी.पी. एक्ट में संशोधन करके बड़े औद्योगिक घरानों को अपना विस्तार करने की स्वतंत्रता दे दी गई है।

5. **लघु उद्योगों पर विपरीत प्रभावः**—नई नीति विदेशी पूंजी को आकर्षित करेगी और इसके फलस्वरूप देश में प्रतियोगिता बढ़ी किंतु देश के लघु उद्योग इस प्रतियोगिता के सामने टिक न पाएंगे। परिणामस्वरूप लघु उद्योगों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
6. **बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधिक महत्वः**—बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अत्यधिक स्वंतत्रता देने से देश की आर्थिक सार्वभौमिकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
7. **आर्थिक असमानताओं में वृद्धिः**—राजनीतिक आलोचकों के अनुसार, इस नीति ने हमारी आर्थिक योजनाओं में निर्धारित सामाजिक उद्देश्यों, जैसे— निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक विस्तार, आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को रोकना, लघु उद्योगों को महत्व आदि की उपेक्षा की है। अतः इस नीति के फलस्वरूप देश में आर्थिक असमानताएं बढ़ी।
8. **विदेशी निवेश को अधिक महत्वः**— औद्योगिक नीति में विदेशी निवेश को अधिक महत्व दिया गया है। विदेशी पूंजी पर निर्भरता के कारण विदेशी ऋण में भी वृद्धि हो गई।

नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत किए गए सुधार

(क) उद्योगों की ऋण सीमा में वृद्धिः—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग की ऋण सीमा में वृद्धि कर दी गई है। उद्योगों के लिए पहले ऋण 5 करोड़ रूपये तक दिया जाता था उसे बढ़ाकर 50 करोड़ रूपए कर दिया गया।

(ख) सार्वजनिक क्षेत्र का संकुचनः—सार्वजनिक क्षेत्र के सुरक्षित उद्योगों की संख्या में कमी हो गई। 1999 से इनकी संख्या केवल 4 थी जो कि निम्नलिखित हैः (i) रेलवे परिवहन, (ii) रक्षा उत्पादन, (iii) परमाणु खनिज, (iv) परमाणु ऊर्जा, अब इनकी संख्या केवल 3 रह गई है। शेष सभी उद्योग निजी क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

(ग) लाइसेंस की कमीः—सन 1999 से अनिवार्य लाइसेंसिग केवल 6 उद्योगों के लिए कर दिया गया था। अब इनकी संख्या कम होकर 5 रह गई है।

(घ) शुल्कों में कमीः—पूंजीगत वस्तुओं की लागत कम करने के लिए उत्पादन शुल्कों में कमी की गई।

(ङ) बड़े उद्योगों का विस्तारः—बड़े उद्योगों का काफी विस्तार किया गया है; जैसे रेडीमेड कपड़े का उत्पादन केवल लघु उद्योगों के अंतर्गत होता था। अब बड़े उद्योग भी कर सकते है, परंतु उन्हें 1 करोड़ रूपए के अचल पूंजी के निवेश के साथ उत्पादन 50 प्रतिशत भाग निर्यात करना होगा।

(च) निर्यात को प्रोत्साहनः—100 प्रतिशत उत्पादन का निर्यात वाली इकाइयों के लिए वित्त मंत्रालयों के पास विशेष अधिकार था। सन 1993 से यह विशेष अधिकार विकास कमीशनर को दे दिया गए, ताकि निर्यात को प्रोत्साहन मिल सके।

(छ) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहनः—औद्योगिकरण के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। इसके लिए उन्हें विशेष रियायतें दी गई। परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि हुई। सन 1991—92 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 408 करोड़ रूपए का था जो सन 2006—07 में बढ़ कर 45098 करोड़ रूपए हो गया। इस प्रकार 1991—92 से 2006—07 तक 23204 करोड़ रूपए का विदेशी निवेश हुआ। इस अवधि के दौरान प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में 100 गुना वृद्धि हुई।

(ज) ब्याज दर में कमीः—उद्योगों को ऊंची ब्याज दर पर ऋण दिया जाता था। न्यूनतम ब्याज की दर को काफी कम कर दिया गया है।

(झ) बीमार औद्योगिक एक्ट में संशोधनः—1981 के बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट का सन 1993 में संशोधन कर दिया गया। इसके दो मुख्य उद्देश्य थे—

(i) कंपनियों की रूग्णता का आरंभ में ही ज्ञान प्राप्त करना

(ii) उपचार के उपायों को शीघ्रता से लागू करना

इन दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक्ट में संशोधन किया गया था।

(ञ) **पिछड़े इलाकों में करों में छूटः**—कुछ इलाके औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। ऐसे राज्यों में नए उद्योगों की स्थापना करने पर विशेष तौर पर बिजली उत्पादन करने पर 5 वर्ष तक के करों की छूट दे दी गई है।

संक्षेप में, केंद्रीय सरकार की औद्योगिक नीति का राज्य सरकारों ने भी स्वागत किया। राज्य सरकारों ने औद्योगिक नीति के विभिन्न उपायों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने का प्रयत्न किया।

नई औद्योगिक नीति के प्रभाव

जुलाई, 1991 की औद्योगिक नीति उदारवादी नीति थी। इस नीति के औद्योगिक उत्पादन पर अनेक प्रभाव पड़े। मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैः—

1. **औद्योगिक वृद्धि दर पर प्रभावः**— नई औद्योगिक नीति के कारण 1995—96 में औद्योगिक वृद्धि सबसे अधिक 12.1 प्रतिशत रही। इसके पश्चात यह कम हो गई, परंतु नई औद्योगिक नीति के कारण ही आठवीं पंचवर्षीय योजना में वार्षिक वृद्धि दर 7.3 प्रतिशत इसके पश्चात नौवीं पंचवर्षीय योजना में वृद्धि दर कम होकर 5 प्रतिशत हो गई। परंतु दसवीं योजना के दौरान यह 8.7 प्रतिशत वार्षिक रही।
2. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर प्रभावः**— नई औद्योगिक नीति के कारण प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में काफी वृद्धि हुई। सन 1991—92 में 408 करोड़ रू. का विदेशी निवेश हुआ। इसमें निरंतर वृद्धि होती गई। सन 2006—07 में यह बढ़कर 45098 करोड़ रू. हो गया। इस प्रकार इसमें अब तक 110 गुना वृद्धि हुई। 1991—92 से 2006—07 तक 232041 करोड़ रू. का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ। इस प्रकार इस नीति का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर बहुत अच्छा प्रभाव रहा।
3. **लघु तथा कुटीर उद्योगों पर प्रभावः**— नई औद्योगिक नीति के कारण लघु उद्योगों की संख्या में वृद्धि हुई। 1992—93 में इनकी संख्या 22 लाख थी जो 2013—014 में 129 लाख (रजिस्टर्ड 20 गैर रजिस्टर्ड 109) हो गई। इस प्रकार सन 1992 से सन् 2014 तक लघु उद्योगों की संख्या में उत्पादन में तथा रोजगार में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। गुना की दृष्टि से देखा जाए तो लघु उद्योगों की संख्या में 5 गुना, उत्पादन में 2 गुना तथा रोजगार में 1 गुना वृद्धि हुई।

परंतु यदि वृद्धि दर को देखा जाए तो इसमें काफी कमी हुई है, जैसे 1992—93 में लघु उद्योगों की संख्या की वृद्धि दर 7.9 प्रतिशत उत्पादन की वृद्धि दर 17 प्रतिशत थी जो 2013—14 में कम होकर 4 प्रतिशत तथा उत्पादन वृद्धि दर 12 प्रतिशत रह गई। इस कमी का मुख्य कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधिक महत्व देना है। इन कंपनियों के आने से लघु उद्योगों की प्रतियोगिता में वृद्धि हो गई। परिणामस्वरूप लघु उद्योगों के उत्पादन पर बहुत प्रभाव पड़ा।

7.4 औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था

लाइसेंस व्यवस्था एक प्रकार की वह नीति है, जिसमें उद्योगों की स्थापना की अनुमति आज्ञा—पत्र के आधार पर दी जाती है। सामान्यतः इसमें उद्योगों की क्षमता, स्थापना का स्थान, वस्तु का नाम व किस्म आदि का विवरण दिया जाता है।

"लाइसेंसिग व्यवस्था के अपनाने का एक उद्देश्य आर्थिक योजनाओं की प्राथमिकताओं के अनुसार निजी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, विस्तार, व प्रभुत्व पर सरकारी नियंत्रण रखना है।" भारतवर्ष में औद्योगिक लाइसेंसिग व्यवस्था को अपनाने का एक और उद्देश्य है और वह है क्षेत्रीय असमानताएं कम करना व आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण व एकाधिकारी प्रवृत्ति को रोकना। संक्षेप में लाइसेंसिंग व्यवस्था अपनाने के मुख्यतः निम्नलिखित पांच उद्देश्य हैः—

(i) उपलब्ध संसाधनों का उचित विदोहन करना,

(ii) औद्योगिक विकास आर्थिक नियोजन की प्राथमिकताओं के अनुरूप करना,

(iii) औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, विस्तार, प्रभुत्व पर सरकारी नियंत्रण रखना,

(iv) आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण व एकाधिकारी प्रवृत्ति को रोकना,

(v) क्षेत्रीय औद्योगिक असमानताओं को कम करना।

भारत में इस कार्य के लिए मुख्यतया दो अधिनियम है—एक औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 व दूसरा एकाधिकारी एवं प्रतिबंधात्मक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम।

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951

औद्योगिक नीति, 1948 को व्यावहारिक रूप देने के लिए सन 1951 में औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम पारित किया गया और इसे 8 मई, 1952 से लागू किय गया। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—(1) औद्योगिक विकास का नियमन करना एवं योजना प्राथमिकताओं के अनुसार संसाधनों के प्रभाव को मोड़ देना, (2) एकाधिकार को दूर रखना एवं धन के केंद्रीयकरण को रोकना, (3) बड़े पैमाने के उद्योगों की अनुचित प्रतिस्पर्धा से लघु उद्योग को संरक्षण देना, (4) नए उद्यमियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा (5) आर्थिक इकाइयों की स्थापना करना एवं आधुनिक विधियों के प्रयोग से तकनीकी एवं आर्थिक सुधार लाने का प्रयत्न करना।

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 की मुख्य बातों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(क) प्रतिबंधात्मक (ख) सुधारात्मक (ग) रचनात्मक

(क) प्रतिबंधात्मक—पहले इस अधिनियम में 38 उद्योगों के नाम दिए थे, लेकिन 30 दिसंबर 1978 के अध्यादेश से 7 उद्योग और बढ़ा दिए गए। इन उद्योगों को बिना केंद्रीय सरकार के लाइसेंस प्राप्त किए स्थापित नहीं किया जा सकता है और न वर्तमान इकाइयों द्वारा अपना विस्तार किया जा सकता है। लेकिन यदि इकाई की स्थायी संपत्तितयों (भूमि, मकान एवं संपूर्ण मशीनरी में विनियोग) का मूल्य 5 करोड़ रू. से अधिक नहीं है तो ऐसे इकाई को लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं होगी। केंद्रीय सरकार लाइसेंस देते समय उद्योगों की स्थापना के स्थान एवं निर्माण की जाने वाली वस्तु के आकार, आदि के बारे में शर्तें लगा सकती है। यदि मिथ्या वर्णन करके लाइसेंस लिया गया है या केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित समय में उपक्रम स्थापित नहीं होता है तो केंद्रीय सरकार ऐसे लाइसेंस को रद्द करने का अधिकार रखती है।

(ख) सुधारात्मक—इस अधिनियम की तीन बातें सुधारात्मक मानी जा सकती है (i) केंद्रीय सरकार को किसी भी उद्योग की जांच करने का अधिकार है अगर उत्पादन कम हो रहा है, वस्तु की क्वालिटी गिर रही है, वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे हैं, या राष्ट्रीय साधन की रक्षा की आवश्यकता है (ii) यदि किसी औद्योगिक इकाई का प्रबंध संतोषजनक नहीं है या वह इकाई सरकारी आदेशों व निर्देशों का पालन नहीं करती है तो सरकार ऐसी इकाई का नियंत्रण एवं प्रबंध 17 वर्षों के लिए अपने हाथ में ले सकती है। पहले प्रबंध5 वर्ष के लिए लिया जाएगा, जिसके प्रति 2 वर्ष के लिए वृद्धि की जाएगी। इसके लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक होगा। (iii) केंद्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह वस्तुओं के उचित वितरण एवं मूल्यों को उचित स्तर पर बनाए रखने के लिए उनकी बिक्री को नियमित एवं निर्गमित कर सकती है।

(ग) रचनात्मक—इस अधिनियम में उद्योगों के विकास के लिए यह व्यवस्था की गई है कि (i) केंद्रीय परामर्श समिति का गठन किया जाएगा (ii) विकास परिषद् स्थापित की जाएगी, (iii) औद्योगिक पैनल्स बनाए जाएंगे, (iv) औद्योगिक आंकड़े एकत्रित किए जाएंगे

इस अधिनियम के अंतर्गत (i) केंद्रीय सलाहकार परिषद बनाई गई है जिसका कार्य तथ्यों एवं आकड़ों का संकलन करना है। इसमें उद्योग, श्रमिक व उपभोक्ता सभी का प्रतिनिधित्व है। (ii) इस परिषद ने एक पुनरावलोकन उपसमिति बना रखी है, जिसका कार्य लाइसेंसों के बारे में आवश्यक तथ्यों का पर्यवेक्षण करना है। (iii) केंद्रीय सलाहकार परिषद् ने ही एक स्थायी समिति बना रखी है, जिसके 16 सदस्य हैं। इसका कार्य किसी उद्योग की स्थिति का पुनरावलोकन

करना है। (iv) अब तक 24 उद्योगों के लिए विकास परिषदें बनाई गई हैं। (v) औद्योगिक पैनल भी बनाई गए हैं जिनका काम उद्योग की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना है। यह औद्योगिक पैनल उन्हीं के बारे में बनाए जाते हैं जिनके लिए परिषदें नहीं हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.10	औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था से क्या अभिप्राय है?
प्र.11	प्रतिबंधात्मक औद्योगिक अधिनियम 1951 से क्या तात्पर्य है?
प्र.12	लाइसेंस व्यवस्था के क्या उद्देश्य है?

औद्योगिक लाइसेंस नीतियां

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 के अंतर्गत जो लाइसेंस देने की प्रणाली अपनाई गई, उसकी देश में कटु आलोचना की गई और यह बताया गया है कि लाइसेंस प्रणालियां दोषपूर्ण हैं, जिनके कारण पक्षपात व भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। एकाधिकार जांच आयोग, 1956 ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि,"इस नीति ने बड़े उद्योगों को लाभ पहुंचाया है।" इसलिए इसमें सुधार के लिए समय–समय पर विभिन्न समितियों की नियुक्तियां की गई। 1966 में **डॉ. आर. के. हजारी** की अध्यक्षता में लाइसेंसिग प्रणाली की जांच के लिए एक समिति बनाई गई जिसने अपनी रिपोर्ट 1967 में दी जिसमें कहा गया है कि बिड़ला समूह को उदारतापूर्वक लाइसेंस दिए गए। 1967 की रिपोर्ट में ही केंद्रीय सरकार ने औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति जांच समिति नियुक्त की जिसके अध्यक्ष एस. दत्त थे। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1969 में सरकार को दे दी जिसमें कहा गया कि इस नीति से लाभ विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों को हुआ है तथा इससे कुछ क्षेत्रों में एकाधिकार को प्रोत्साहन मिलता है।

मुख्य औद्योगिक लाइसेंस नीतियां निम्नलिखित हैः–

(क) **औद्योगिक लाइसेन्स नीति, 1970ः–** इस नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है :–

हजारी समिति एवं दत्त समिति के प्रतिवेदनों के आधार पर 18 फरवरी, 1970 को नवीन लाइसेंसिंग नीति की घोषणा की गई। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थें–(i) नए उद्यमियों को औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए प्रोत्साहन देना, (ii) बड़े व्यावसायिक घरानों के हाथों में आर्थिक सत्ता के केंद्रीयकरण पर रोक लगाना, (iii) सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करना एवं उनका महत्व बढ़ना, (iv) लाइसेंसिग नीति की जटिल प्रक्रिया को सरल बनाना, (v) लघु उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए समस्त सुविधाओं की पूर्ति करना।

(i) औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 के अंतर्गत उन अनुसूचित उद्योगों को लाइसेंस लेना अनिवार्य था जिनकी पूंजी 25 लाख रू. थी, लेकिन लाइसेंसिंग नीति 1970 के अंतर्गत इस सीमा को बढ़ाकर एक करोड़ रू. कर दिया गया।

(ii) सरकार ने घोषणा की कि उद्योगों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र होगा जिसके विकास के लिए योजनाएं बनाई जाएंगी तथा उन्हें विदेशी मुद्रा एवं अन्य सुविधाएं प्रदान की जाएंगी। भारी विनियोग क्षेत्र में ऐसे नए उपक्रमों को शामिल किया जाएगा जिनकी स्थायी संपत्तितयों में प्रस्तावित पूंजी विनियोग की मात्रा पांच करोड़ रू. या इससे अधिक होगी। विशाल औद्योगिक गृह व विदेशी कंपनियों को ऐसी दोनों प्रकार के उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस दिए जाएंगे।

(iii) विद्यमान लाइसेन्स प्राप्त उपक्रमों को जिनकी स्थायी संपत्तियों में पांच करोड़ रू. से अधिक पूंजी नहीं लगी है, अपना महत्वपूर्ण विकास करने के लिए अब लाइसेंस या अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी।

(iv) औद्योगिक नीति, 1956 की तालिका ए में दिए हुए उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की नीति को जारी रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण क्षेत्र व भारी विनियोग क्षेत्र में भी सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की जाएगी।

(v) इस लाइसेंसिंग नीति में महत्वपूर्ण क्षेत्र व भारी विनियोग क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली बड़ी परियोजनाओं को संयुक्त क्षेत्र में रखने की बात को स्वीकार किया गया।

(vi) उन उद्योगों को लाइसेंस प्राथमिकता के आधार पर दिए जाएंगे जो निर्यात करने वाली वस्तुओं के लिए स्थापित किए जाएंगे। लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों को भी निर्यात के विकास करने में सहायता दी जाएगी।

(vii) लघु उद्योगों को सुरक्षित रखने की नीति जारी रखी जाएगी तथा इसके सुरक्षित क्षेत्र का विस्तार किया जाएगा।

(viii) कृषि पर आधारित उद्योगों में नए उपक्रम स्थापित करने की अनुमति मुख्यतः सहकारी क्षेत्र में दी जाएगी। इसमें विशेष रूप से गन्ना व जूट को रखा गया।

(ix) वे उपक्रम जिनमें 1 करोड़ रू. से 5 करोड़ रू. तक पूंजी विनियोजित होगी, मध्य क्षेत्र माने जाएंगे। इस क्षेत्र में नवीन साहसियों एवं उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिए उदारता से लाइसेंस दिए जाएंगे। इस क्षेत्र में आने वाले उन उपक्रमों को जिनके संबंध बड़े औद्योगिक घरानों या विदेशी कंपनियों से है, कुशलता में वृद्धि करने या लागत को कम करने के लिए विस्तार की अनुमति दी जा सकती है।

(x) वे औद्योगिक इकाइयां जिनका रजिस्ट्रेशन करना अनिवार्य नहीं है अब बिना फीस दिए अपना रजिस्ट्रेशन करा सकेगी। ऐसा सांख्यिकी एकत्रित करने के उद्देश्यों से किया गया।

(xi) औद्योगिक घराने तथा विदेशी कंपनियां। सामान्य परिस्थितियों में उनको विस्तार की अनुमति नहीं दी जाएगी। कुछ विशेष परिस्थितियों में जैसे लागत कम करने या मितव्ययिता लाने के लिए अनुमति दी जा सकती है।

टूल बाक्स – 10
<u>औद्योगिक लाइसेंस नीतियां</u>
• औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1970 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1973 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1975 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1978 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1980 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1982 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1983 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1985 • औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1991

(xii) इस नीति में उद्योगवार लाइसेंस मुक्ति की सूची की व्यवस्था को समान कर दिया गया है। अब लाइसेंस की छूट की व्यवस्था उद्योगों के आधार पर नहीं होगी, बल्कि पूंजी विनियोग की प्रस्तावित मात्रा के आधार पर होगी।

(ख) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1973 :– 2 फरवरी, 1973 को नवीन औद्योगिक लाइसेंसिग नीति की घोषणा की गई, जिसका मुख्य उद्देश्य उद्योग–क्षेत्र में व्याप्त आवश्यक अनिश्चितता को समाप्त करना एवं पांचवीं योजना की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में तेजी से वृद्धि करना था। इस लाइसेंसिंग नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(i) इस नीति में औद्योगिक घरानों की परिभाषा परिवर्तित कर दी गई जिसके अनुसार अब 20 करोड़ रू. से अधिक की संपत्तित वाली इकाइयों को बड़े औद्योगिक घरानों की परिभाषा में रखा गया।

(ii) इस नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़ते हुए महत्व को स्वीकार किय गया जिसमें यह कहा गया कि औद्योगिक नीति, 1956 में वर्ग ए में वर्णित 17 उद्योगों तो सार्वजनिक क्षेत्र में रहेगें ही, इनके अतिरिक्त जन–उपयोगी सेवाएं , उपभोग वस्तुओं का निर्माण करने वाले बड़े उद्योग, अधिक विनियोजन वाले उद्योग भी सार्वजनिक क्षेत्र में तीव्र गति से विस्तार कर सकेगें।

(iii) बहुत सी औद्योगिक परियोजनाओं को विशेष दशाओं में ही संयुक्त क्षेत्र में स्थापित करने की अनुमति दी जाएगी।

(iv) सहकारी क्षेत्र में उद्योग के विकास पर महत्व दिया गया। जो उद्योग कृषि पर आधारित हैं उन्हें उदारता से लाइसेंस देने की बात स्वीकार की गई। इन उद्योगों में चीनी, जूट उद्योग व सूती वस्त्र उद्योग आते हैं। रासायनिक उर्वरक उद्योग के लिए सहकारी क्षेत्र को प्रेरित किया जाएगा।

(v) लघु उद्योग के लिए सुरक्षित वस्तुओं की सूची निर्धारित करने की नीति को आगे भी जारी रखने एवं उसमें वृद्धि करने की बात को पुनः स्वीकार किया गया। बड़े औद्योगिक घरानों और विदेशी कंपनियों को इस क्षेत्र में अनुमति न देने की बात भी कही गई।

(vi) 19 उद्योगों की एक सूची बनाई गई और यह कहा गया कि इस सूची वाले उद्योगों की स्थापना में बड़े औद्योगिक घराने एवं विदेशी कंपनियों भाग ले सकती हैं। सामान्यतः इस सूची के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में उनको अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि यह स्पष्ट न हो कि ऐसा करने की निर्यात में वृद्धि होगी।

(ग) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1975ः– इस नीति को कुछ व्यक्ति उदार लाइसेंसिंग नीति भी कह सकते है 25 अक्तूबर 1975 को नवीन औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति की घोषणा की गई जिसमें निम्नलिखित बातें मुख्य थीः–

(i) लाइसेंस से छूटः–21 उद्योगों को लाइसेंस से छूट प्राप्त करने से छूट दे दी गई है। परंतु प्रभावी उपक्रमों व विदेशी कम्पनियों को यह छूट प्राप्त नहीं होगी।

(ii) विदेशी फर्मों व एकाधिकार प्रतिष्ठानों को छूटः–विदेशी फर्मों व एकाधिकारी प्रतिष्ठानों को 30 उद्योगों में लाइसेंस प्राप्त क्षमता से अधिक असीमित मात्रा में विस्तार करने की अनुमति दे दी गई। यह छूट भारी विनियोग उद्योगों को भी प्रदान की गई। इस श्रेणी में सभी छूट पाने वाले उद्योगों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि उनको अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात करना होगा या सरकार के निर्देशों के अनुसार बेचना होगा।

(iii) अनाधिकृत क्षमता को नियमित करनाः–5 नवंबर, 1975 को एकाधिकारी प्रतिष्ठानों तथा विदेशी कंपनियों की क्षमता को नियमित करने की विधि की घोषणा की गई।

(iv) इंजीनियरिंग उद्योगों को छूटः–15 इंजीनियरिग उद्योगों को कुछ शर्तों के साथ यह छूट दी गई कि वे अपनी लाइसेंस क्षमता का 5 प्रतिशत वार्षिक या पांच वर्ष में 15 प्रतिशत तक की वृद्धि कर लें।

(v) अनुसंधान एवं विकासः–यदि किसी उद्योग का अनुसंधान एव विकास के फलस्वरूप क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है तो ऐसे उद्योगों को उत्पादन क्षमता बढ़ाने की अनुमति दे दी जाएगी, लेकिन प्रभावी उपक्रमों तथा विदेशी कंपनियों को यह अनुमति स्वतः ही नहीं दी जाएगी। इन्हें इसके लिए लाइसेंस लेना होगा जो उदारतापूर्वक दिया जाएगा।

(vi) आधुनिकीकरण एवं प्रतिस्थापनः–यदि किसी उपक्रम में आधुनिकीकरण एवं प्रतिस्थापन के फलस्वरूप उत्पादन क्षमता में विस्तार करना आवश्यक हो जाए तो ऐसे उपक्रम की क्षमता विस्तार की अनुमति दिए जाने की प्रक्रिया को सरल बना दिया गया है।

(vii) उत्पादन में विविधीकरणः–कुछ निर्धारित उद्योगों; जैस मशीन टूल्स, बिजली उपकरण, स्टील कास्टिंग, सवारी कारें आदि लाइसेंस क्षमता में पूर्ण उपयोग की दृष्टि से नवीन वस्तुओं के उत्पादन की अनुमति प्रदान की गई।

उपर्युक्त प्रयासों के फलस्वरूप लाइसेंसिग प्रणाली पहले से सरल एवं उदार हो गई है। सरकारी दृष्टिकोण भी बदला है। सरकार ने निर्णय लिया है कि लाइसेंसिंग प्रणाली में प्रति वर्ष

आवश्यक संशोधन किए जाने चाहिए, जिससे आवश्यक प्रक्रियाएं कम हो सके व संसाधनों का अधिकतम प्रयोग किया जा सके।

(घ) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1978:–31 मार्च, 1978 को जनता सरकार ने रामकृष्ण अध्ययन दल की सिफारिश पर औद्योगिक लाइसेंस नीति में कुछ परिवर्तन किए।

लाइसेंस से छूट–औद्योगिक लाइसेंस लेने की छूट की सीमा एक करोड़ रू. से बढ़ाकर तीन करोड़ रू. कर दी गई, लेकिन यह छूट उन कंपनियों पर लागू नहीं होगी जो एकाधिकारी एवं प्रतिबंधात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम में अंतर्गत आती है। साथ ही यह छूट उन विदेशी कंपनियों को नहीं मिलेगी, जिनमें 40 प्रतिशत से अधिक पूंजी लगी है।

आयात में छूट–उन वस्तुओं में आयात में छूट दी जाएगी, जिनका उत्पादन लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित है।

इसके साथ ही पूंजीगत वस्तुओं के आयात के लाइसेंस के लिए अब तक 12 मध्यस्थों की कड़ी से गुजरना पड़ता था, लेकिन अब तीन मध्यस्थों की कड़ी से गुजरना होगा।

(ङ) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1980:–1980 में भी औद्योगिक लाइसेंस नीति में कुछ संशोधन किए गए। सुरक्षित वस्तुओं की संख्या 807 से 834 की गई जो लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित थी। 30 टन आटा पीसने वाले कारखाने के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य कर दिया गया तथा लाइसेंस प्रणाली सरल कर लाइसेंस देने का समय 90 दिन से कम करके 60 दिन कर दिया गया।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.13	पहली औद्योगिक लाइसेंस नीति बताइए व उसके क्या उद्देश्य थे?
प्र.14	औद्योगिक लाइसेंस नीति 1978 में क्या परिवर्तन किए गए थे?
प्र.15	औद्योगिक नीति 1991 की विशेषताएं बताएं?

(च) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1982:–1982 उत्पादक वर्ष घोषित किया गया, अतः उद्योगों को अपनी क्षमता बढ़ाने की अनुमति दी गई। बड़े व्यावसायिक घरानों व विदेशी कंपनियों को भी 5 और क्षेत्रों में कुछ रियायतें दी गई।

(छ) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1983:– 1 अप्रैल 1983 से औद्योगिक लाइसेंस से छूट की सीमा 3 करोड़ रू. से बढ़ाकर 5 करोड़ रू. कर दी गई तथा बिना उद्योग वाले जिलों में उद्योगों की स्थापना हेतु आर्थिक सहायता की दर भी बढ़ाकर विनियोग के 25 प्रतिशत तक कर दी गई।

(ज) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1985:–16 मार्च, 1985 को बजट भाषण में वित्त मंत्री ने घोषणा की कि जिन क्षेत्रों में विस्तार की अपेक्षा है, वहां ऐसे उद्योगों की सूची बनाई जाएगी जिनके लिए लाइसेंस लेना आवश्यक नहीं होगा। उन्होंने 25 उद्योगों को कतिपय निर्दिष्ट शर्तें पूरी करने पर लाइसेंस से मुक्त करने की घोषणा की। इस प्रकार लाइसेंस से मुक्त उद्योगों की संख्या 49 हो गई है। इससे पूर्व 1985 में 24 उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया था। एकाधिकार वाली कंपनियों की परिभाषा में आने वाली कम्पनियों के लिए सीमा बढ़ाकर 100 करोड़ रू. कर दी गई।

(झ) औद्योगिक लाइसेंस नीति, 1991:–जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इसमें औद्योगिक लाइसेंसिग प्रणाली में अनेक सुधारों की भी घोषणा की गई। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है :–

(i) लाइसेंस में कमी– 1991 की नई नीति के अनुसार लाइसेंस में कमी की गई। इसमें केवल 14 उद्योगों के लिए लाइसेंस अनिवार्य किया गया। 1999 में अनिवार्य लाइसेंस केवल 6 उद्योगों के लिए कर दिया गया। अब यह केवल 5 उद्योगों के लिए रह गया है। शेष सभी उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया।

(ii) सुरक्षित उद्योगों की संख्या में कमीः– 1956 की औद्योगिक नीति से 1991 तक की नीति घोषित बोर्ड से पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 17 उद्योग सुरक्षित थे। इन उद्योगों के लिए निजी

क्षेत्र को लाइसेंस नहीं जारी होता था। 1991 में नई औद्योगिक नीति घोषणा में इनकी संख्या घटाकर 8 कर दी गई। 1999 में केवल 6 कर दी गई परन्तु अब इनकी संख्या केवल 3 रह गई है।

(iii) एकाधिकारी कानून में संशोधन–1970 की लाइसेंसिग नीति में एकाधिकारी कानून लागू था। इसमें यदि उद्योग 25 प्रतिशत से अधिक उत्पादन क्षमता का विस्तार करना चाहते थे तो उन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था। 1991 की लाइसेंसिंग नीति में इस सीमा को समाप्त कर दिया गया। एकाधिकारी कानून में संशोधन कर दिया गया तथा निर्धारित पूंजी निवेश सीमा को समाप्त कर दिया गया।

(iv) लघु उद्योगों को संरक्षणः– लघु उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कुछ वस्तुओं के उत्पादन को इनके लिए सुरक्षित रखा गया।

सारांश

संक्षेप में, उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि सन 1991 की नई औद्योगिक नीति में नियम काफी आसान बना दिए गए। परिणामस्वरूप औद्योगिक लाइसेंसिग में काफी कमी हुई। कई सार्वजनिक उद्यमों में विनिवेश किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र का आकार संकुचित हो गया। शुल्कों में कमी की गई। लघु व कुटीर उद्योग की ओर ध्यान दिया गया। निर्यात उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए सुविधाएं दी गई। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विशेष महत्व दिया गया। इससे निर्यात की दर में वृद्धि हुई। अतः कहा जा सकता है कि नई औद्योगिक नीति धीरे–धीरे अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर बढ़ रही है। 1970 की लाइसेंसिंग प्रणाली के पश्चात लाइसेंसिंग नीतियों में काफी सुधार किया गया। 1991 की लाइसेंसिंग नीति तो काफी उदारवादी बनाई गई। इसमें भी समय–समय पर सुधार किए गए। परिणामस्वरूप इस नीति का औद्योगिक विकास दर बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 भारत की औद्योगिक नीति की मुख्य विशेषताओं की समीक्षा करें।

प्र.2 लाइसेंस देने के संबंध में नई औद्योागिक नीति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्र.3 भारत सरकार की नवीनतम औद्योागिक नीति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्र.4 भारत की नवीनतम औद्योागिक नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्र.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की औद्योागिक नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 भारत की वर्तमान औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएं क्या है। देश में तीव्र औद्योगिक विकास में यह कहां तक सही रही है?

प्र.7 1991 की नई औद्योगिक नीति के गुण और दोषों का वर्णन कीजिए। नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत सरकार द्वारा किए गए सुधार भी बताएं।

प्र.8 1991 की औद्योगिक नीति की व्यूह रचना बताएं। इस नीति के विभिन्न प्रभाव भी बताएं।

प्र.9 भारत की निम्नलिखित औद्योगिक नीतियों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए :–

(i) प्रथम औद्योगिक नीति 1948

(ii) द्वितीय औद्योगिक नीति 1956

प्र.10 औद्योगिक लाइसेंसिंग व्यवस्था से क्या अभिप्राय है। भारत की औद्योगिक लाइसेंस नीतियों का वर्णन कीजिए।

प्र.11 निम्नलिखित पर नोट लिखिए

(i) नई औद्योगिक नीति

(ii) 1991 की औद्योगिक नीति के अंतर्गत किए गए सुधार

(iii) नई औद्योगिक नीति के प्रभाव

(iv) औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति 1991

(v) औद्योगिक लाइसेंसिंग

खंड–3
इकाई–8 औद्योगिक विकास

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
8.0 प्रस्तावना
8.1 औद्योगिक विकास का महत्व
8.2 भारत में पंचवर्षीय योजनाएं एवं औद्योगिक विकास
8.3 योजनाकाल में भारत की औद्योगिक उपलब्धियां
8.4 औद्योगिक विकास के ढांचे में प्रवृत्तियां

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- औद्योगिक विकास का अर्थ
- औद्योगिकीकरण का महत्व
- भारत की ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएं व औद्योगिक विकास
- भारत की 12वीं पंचवर्षीय योजना व उसके उद्देश्य

8.0प्रस्तावना

औद्योगिक विकास को आर्थिक विकास की नींव के रूप में स्वीकार किया जाता है। पर्याप्त औद्योगिक विकास के बिना कोई भी अर्थव्यवस्था अपना विकास नहीं कर सकती। भारत जैसे विकासशील देश में तो औद्योगिक विकास की और भी अधिक आवश्यकता है, क्योंकि यहां की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान, असंतुलित तथा एकांगी है। प्राकृतिक साधनों के प्रयोग का स्तर काफी नीचा है। अधिक जनसंख्या होने के कारण वस्तुओं की बहुत अधिक मांग है। इसलिए भारत के संतुलित एवं संपूर्ण विकास के लिए देश का औद्योगिकरण करना अति आवश्यक है।

8.1 औद्योगिकरण का महत्व/लाभ

औद्योगिकरण के फलस्वरूप निम्नलिखित अनेक महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैंः–

(i) सुदृढ़ एवं संतुलित अर्थव्यवस्थाः–भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होने के कारण अनिश्चित तथा असंतुलित बनाने के लिए औद्योगिक विकास किया जाना अति आवश्यक है।

(ii) कृषि विकास में सहायकः–औद्योगिक विकास, कृषि विकास के लिए भी बहुत आवश्यक है। औद्योगिक विकास के द्वारा वैकल्पिक व्यवसाय उपलब्ध किए जा सकते हैं और कृषि पर बढ़ते हुए जनसंख्या के भार को कम किया जा सकता है। इससे जोतों के उप विभाजन और विखंडन की समस्या हल होगी और कृषि विकास के लिए उन्नत साधन उपलब्ध किए जा सकेंगे।

(iii) उत्पादकता में वृद्धिः–उत्पादन के साधनों की उत्पादकता औद्योगिक विकास द्वारा बढ़ाई जा सकती है। मशीनों के प्रयोग तथा विशिष्टीकरण श्रम की उत्पादकता बढ़ जाती है। मशीनों के प्रयोग द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन करके प्रति इकाई लागत कम की जा सकती है।

(iv) रोज़गार के अधिक अवसरः—देश में तीव्र गति से बढ़ती हुई बेरोज़गारी का समाधान देश में औद्योगिक विकास करके तथा रोज़गार के वैकल्पिक अवसर प्रदान करके आसानी से किया जा सकता है।

(v) प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धिः—कृषि की तुलना में उद्योगों में उत्पादकता अधिक होती है, क्योंकि यहां मशीनों का प्रयोग होता हैं। औद्यीकरण से रोज़गार के अवसर भी बढ़ते हैं, जिससे लोगों की आय में वृद्धि होती है।

टूल बाक्स — 01
औद्योगिकरण का महत्व
• सुदृढ़ एवं संतुलित अर्थव्यवस्था • कृषि विकास में सहायक • उत्पादकता में वृद्धि • रोज़गार के अधिक अवसर • प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि • राष्ट्रीय आय में वृद्धि • जीवन स्तर में सुधार • बचत तथा निवेश में वृद्धि • समाज का बहुमुखी विकास • देश की सुरक्षा

(vi) राष्ट्रीय आय में वृद्धिः—देश मे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध साधनों का प्रयोग भी औद्योगिक विकास के द्वारा ही किया जा सकता है। अतः औद्योगिकरण से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

(vii) जीवन स्तर में सुधारः—औद्योगिक विकास से लोगों की आय में वृद्धि होगी, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और साथ ही देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन संभव हो सकेगा जिनका उपयोग करके लोगों के जीवन—स्तर में सुधार होगा। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि पाश्चात्य देश, औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप ही आज इतने समृद्ध एवं शक्तिशाली बन गए हैं।

(viii) बचत और निवेश में वृद्धिः—औद्योगिकरण से एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी होगा कि इससे बचत और निवेश में वृद्धि होगी। लोग अपनी आय को, खर्चे में कटौती करके, उत्पादन कार्यों में लगाने लगते हैं। इससे उन्हें बचत करने की आदत पड़ जाती है जो कि देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

(ix) समाज का बहुमुखी विकासः—व्यक्ति एवं समाज के बहुमुखी विकास के लिए औद्योगिकरण अति आवश्यक है। इससे मनुष्य में अनेक आवश्यक गुणों, जैसे—नियमितता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी प्रगति, कर्तव्यनिष्ठा, कठिन परिश्रम आदि का सृजन होता है।

(x) देश की सुरक्षाः—देश की सुरक्षा के लिए भी औद्योगिकरण की विशेष आवश्यकता है। वर्तमान युग में युद्ध संबंधी अनेक प्रकार के शस्त्र एवं साजोसामान की आवश्यकता होती है। यह युद्ध सामग्री हमें केवल उद्योगों से ही प्राप्त होती है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	औद्योगिकरण के फलस्वरूप सुदृढ़ एवं संतुलित अर्थव्यवस्था कैसे प्राप्त हुई?
प्र.2	पंचवर्षीय योजना से समाज का बहुमुखी विकास कैसे हो सकता है?
प्र.3	देश की सुरक्षा के लिए औद्योगिकरण की आवश्यकता क्यों है?

8.2 योजनाकाल में औद्यगिक विकास

भारत में आर्थिक नियोजन 1951 से आरंभ हुआ। अब तक योजनाओं के 65 वर्ष पूरे हो चुके हैं। बारहवीं योजना आरंभ हो चुकी है। इनमें औद्योगिक विकास ने नई फेर–बदल देखे है। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार हैः–

(क) प्रथम योजना में औद्योगिक विकासः–प्रथम योजना वैसे तो मूल रूप से कृषि योजना थी, फिर भी इसमें औद्योगिक विकास की बिल्कुल उपेक्षा नहीं की गई। इसमें औद्योगिक विकास की नींव रखने के लिए लगभग 97 करोड़ रू. व्यय किए गए जो कि कुल व्यय को केवल 5 प्रतिशत था।

टूल बाक्स – 02
प्रथम योजना
प्रथम योजना मूल रूप से कृषि योजना प्रधान योजना थी। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के कारखाने जैसे इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्री, खाद कारखाने, केबल फैक्ट्रीज, डी.डी.टी. आदि स्थापित किए गए।

प्रगति– इसमें सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न कारखाने जैसे सिंदरी का खाद का कारखाना, चितरंजन लोकोमोटिव, ईनटैग्रल कोच फैक्ट्री, इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्री, केबिल्स फैक्ट्रीज, पैन्सिलीन तथा डी.डी.टी. के कारखाने आदि स्थापित किए गए। हिंदुस्तान मशीन टूल्स, नेपानगर का अखबारी कागज बनाने का कारखाना तथा यू.पी. सीमेंट फैक्ट्री पूर्ण रूप से चलाई गई। इसमें औद्योगिक विकास दर 7.4 प्रतिशत वार्षिक रही। इसमें शक्ति तथा परिवहन सुविधाओं का विकास हुआ, प्रति व्यक्ति आय तथा उपभोक्ता स्तर में वृद्धि हुई।

(ख) दूसरी योजना में औद्योगिक विकासः–दूसरी योजना, वास्तव में औद्योगिक योजना थी। इसमें आधारभूत उद्योगों के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई तथा इसे रोज़गार–प्रेरित क्षेत्र स्वीकार किया गया। यह योजना 1956 की औद्योगिक नीति पर आधारित थी, जिसमें उद्योगों के तीव्र विकास का उतरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया।

योजनाकाल में औद्योगिक विकास पर 1125 करोड़ रू. राशि खर्च की गई, जिसमें से 938 करोड़ रू. बड़े उद्योगों तथा 187 करोड़ रू. लघु उद्योगों के विकास पर खर्च किए गए।

टूल बाक्स – 03
दूसरी योजना
इस योजनाकाल में सार्वजनिक क्षेत्र में तीन विशाल लौह–इस्पात के कारखाने भिलाई स्टील प्लांट(मध्य प्रदेश), राऊरकेला स्टील प्लांट(उड़ीसा), दुर्गापुर स्टील प्लांट(पश्चिमी बंगाल) में ,खोले गए। इसके अतिरिक्त नंगल में खाद, भोपाल में बिजली का सामान तथा केरल में डी.डी.टी. के कारखाने लगाए गए।

प्रगति– कृषि तथा परिवहन के प्रयोग में आने वाली पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन आरंभ किया गया। इसके साथ पेपर, रसायन, सूती वस्त्र, सीमेंट, चाय, चीनी व खनिज उद्योगों का विस्तार किया गया। इसके अतिरिक्त स्थायी उपभोग वस्तुओं जैसे साइकिल, बिजली के पंखे, लैंप, सिलाई मशीनों आदि के उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

(ग) तीसरी योजना में औद्योगिक विकासः–तीसरी योजना का मुख्य उद्देश्य अधूरे विकास कार्यक्रमों को पूरा करना था। इसमें उन उद्योगों को विकसित किया जाना था, जिनमें देश में आत्म निर्भरता के लक्ष्य को पूरा किया जा सके।

इस योजनाकाल में 1520 करोड़ बड़े उद्योगों तथा खनिज उद्योगों पर और 264 करोड़ लघु उद्योगों पर खर्च किए जाने थे। किंतु वास्तव में 1726 करोड़ रू. बड़े तथा खनिज उद्योगों पर तथा 241 करोड़ रू. ग्रामीण व लघु उद्योगों पर खर्च किए गए।
प्रगति–इस योजना काल में मशीन टूल्ज की नई फैक्ट्रियां पिंजौर तथा हैदराबाद में लगाई गई। हरिद्वार में बिजली की मोटरें, त्रिचनापल्ली में बायलर, मद्रास में सर्जीकल इन्स्ट्रूमैंट फैक्ट्री तथा कोटा में वैज्ञानिक औजार बनाने के कारखाने लगाए गए। बोकारो में इस्पात बनाने का सार्वजनिक क्षेत्र में चौथा कारखाना खोला गया।

टूल बाक्स – 04
तीसरी योजना इस योजनाकाल में कुछ उद्योगों जैसे एल्यूमीनियम, विद्युत ट्रांसफार्मरज, आटोमोबाइल, सूती वस्त्र, मशीनरी, निर्माण, डीजल इंजन तथा पैट्रोलियम उद्योग में लक्ष्य पूरे कर लिए गए किंतु औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि केवल 9 प्रतिशत वार्षिक गति से हुई जबकि लक्ष्य 14 प्रतिशत वार्षिक था।

औद्योगिक उत्पादन की असंतोषजनक वृद्धि निम्न कारणों से थी–

(i) विदेशी आक्रमण,

(ii) खाद्यान्न संकट एवं प्राकृतिक विपत्तियां,

(iii) कच्चे माल का अभाव,

(iv) विदेशी सहायता की प्राप्ति में बाधाएं,

(v) मूल्य स्तर में निरंतर वृद्धि,

(vi) अतिरिक्त करों का दबाव,

(vii) बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मांग में वृद्धि।

(घ) **चौथी योजना में औद्योगिक विकासः**–चौथी योजना में मुख्य लक्ष्य औद्योगिक उत्पादन में संतुलन लाना, वर्तमान उत्पादन क्षमता का अधिकतर प्रयोग, आयात वृद्धि के लिए उत्पादन तथा आयात प्रतिस्थापन पैदा करना था। इसके लिए योजनाकाल में बड़े तथा खनिज उद्योगों के विकास पर 2864 करोड़ रू. खर्च किए गए तथा लघु उद्योगों के विकास पर 243 करोड़ रू. खर्च किए गए। इस अवधि में औद्योगिक विकास 8 प्रतिशत से 10 प्रतिशत वार्षिक गति से करने का लक्ष्य रखा गया।

टूल बाक्स – 05
चौथी योजना इस योजनाकाल में औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 3.7 प्रतिशत रही जो कि निर्धारित लक्ष्य 8 प्रतिशत से बहुत कम थी।

प्रगति–इस योजनाकाल में सार्वजनिक, निजी एवं सहकारी क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए लोचशील पद्धति अपनाई गई। इसमें आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को रोकने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया। चौथी योजना में बैंक तथा कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।
औद्योगिक दृष्टि से चौथी योजना भी असफल रही। इस असफलता के मुख्य कारण निम्न थेः–

(i) औद्योगिक उत्पादन की मांग में कमी,

(ii) कच्चे माल का अभाव,

(iii) शक्ति साधनों की कमी,

(iv) औद्योगिक झगड़े,
(v) प्रशासकीय समस्याएं आदि।
(ङ) **पांचवी योजना में औद्योगिक विकासः**—पांचवीं योजना आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक व्यय के उद्देश्य से आरंभ की गई। इसके निम्न मुख्य उद्देश्य थेः—
(i) कोर क्षेत्र का विकास,
(ii) निर्यात उत्पादन तथा आयात प्रतिस्थापन के उत्पादन में वृद्धि,
(iii) उपभोग वस्तुओं एवं अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन पर नियंत्रण,
(iv) लघु उद्योगों को प्रोत्साहन,
(v) पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास।

इस उद्देश्य से इस योजनाकाल में बड़े उद्योगों तथा खनिज उद्योगों पर 8989 करोड़ रू. तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास पर 592 करोड़ रू. खर्च किए गए।

टूल बाक्स — 06
पांचवी योजना इस योजनाकाल में 8.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया किंतु वास्तविक वृद्धि केवल 5.9 प्रतिशत वार्षिक गति से हुई।

प्रगति—इस योजनाकाल में 8.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया किंतु वास्तविक वृद्धि केवल 5.9 प्रतिशत वार्षिक गति से हुई। इसके मुख्य कारण बिजली, परिवहन व अन्य शक्ति साधनों की कमी तथा असंतोषजनक प्रबंधस्वीकार किए जाते हैं।
(च) छठी योजना में औद्योगिक विकासः—इस योजना में सर्वोच्य प्राथमिकता शक्ति क्षेत्र को दी गई, क्योंकि पांचवी योजना की असफलता का मुख्य कारण शक्ति साधनों की कमी थी। इसके अतिरिक्त इस योजनाकाल में कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास पर 1945 करोड़ रू. खर्च किए गए।
प्रगति—इसमें औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत निर्धारित किया गया, जबकि वास्तविक विकास की उपलब्धि 5.5 प्रतिशत वार्षिक थी। इस योजनाकाल में औद्योगिक उत्पादन के कम होने के मुख्य कारण बिजली की कमी, कच्चे माल की कमी तथा औद्योगिक झगड़े आदि थे।
(छ) सातवीं योजना में औद्योगिक विकासः—सातवीं योजना का मुख्य लक्ष्य देश के औद्योगिकरण को तीव्र करना था इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता दी गइ जो जल्दी प्रतिफल देने वाले हैं। वर्तमान उद्योगों का आधुनिकीकरण करके पुरानी मशीनों के स्थान पर नई मशीनें लगाकर औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया गया।

इस अवधि में बड़े उद्योगों तथा खनिज के विकास पर 25971 करोड़ रू. तथा लघु उद्योगों के विकास पर 3249 करोड़ रू. खर्च किए गए जो कि कुल व्यय का 13.4 प्रतिशत था।
प्रगति—इसमें सार्वजनिक उद्यमों को अधिक प्रतियोगी बनाया गया। उद्योगों के आधुनिकीकरण, पूंजी के कुशल प्रयोग तथा उत्पादकता बढ़ाने को अधिक महत्व दिया गया। रोज़गार प्रेरित उद्योगों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा विकास संभावनाओं वाले सनराईज उद्योगों जैसे इलेक्ट्रॉनिक, कंप्यूटर उद्योगों की स्थापना की ओर योजना अधिकारियों ने विशेष ध्यान दिया किंतु इसमें वास्तविक विकास दर केवल 7.8 प्रतिशत हुई जबकि लक्ष्य 8 प्रतिशत रखा गया था।

टूल बाक्स – 07
सातवीं योजना
सनराईज उद्योगों जैसे इलेक्ट्रॉनिक, कंप्यूटर उद्योगों की स्थापना की ओर योजना अधिकारियों ने विशेष ध्यान दिया। किंतु इसमें वास्तविक विकास दर केवल 7.8 प्रतिशत हुई जबकि लक्ष्य 8 प्रतिशत रखा गया था।

(ज) उद्योग और आठवीं योजनाः–8वीं पंचवर्षीय योजना 2 वर्ष के अंतराल के बाद 1 अप्रैल, 1992 से प्रारम्भ हुई। इस योजना में 24 जुलाई 1991 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा हुई। नई नीति में औद्योगिक विकास की व्यूहरचना स्वतंत्रता के उपरान्त पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाई गई व्यूहरचा से हटकर है जो इस प्रकार है–

(i) इस नीति के अनुसार, अब देश में औद्यािगिक विकास सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र के माध्यम से होगा।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व पहले की अपेक्षा 50 प्रतिशत रह गया।

(iii) केवल राष्ट्रीय महत्व के 8 उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखकर बाकी सभी उद्योग निजी उद्यमियों के लिए छोड़ दिए गए।

(iv) लाइसेंस लेने में छूट दे दी गई। किसी भी उद्योग के शुरू करने के लिए केवल सूचना मात्र देनी पड़ेगी।

टूल बाक्स – 08
आठवीं योजना
8वीं योजना में उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों एवं खनिज पर 51433 करोड़ रू. व्यय किए गए जिससे औद्योगिक विकास दर 7.3 प्रतिशत रही।

उद्देश्य– (i) औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत रखी गई थी।

(ii) इस योजना में देशी एवं विदेशी संसाधनों की पूरकता का लाभ उठाने के लिए सांझे उद्यम स्थापित किए गए थे।

(iii) 8वीं योजना के अंतर्गत तकनीकी और उत्पादकता के अंतरराष्ट्रीय स्तर प्राप्त करने के लिए प्रमुख वस्तु–निर्माताओं से यह आशा की गई कि वे विदेशी सहयोग स्थापित करेंगे।

सफलताएं– (i) औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 7.3 प्रतिशत रही।

(ii) औद्योगिक पुनःनिर्माण पर विशेष बल दिया गया।

(iii) नवीनीकरण और आधुनिकीकरण की ओर ध्यान दिया गया।

(iv) उद्योग को निर्यात के साथ जोड़ दिया गया।

आठवीं योजनाकाल में औद्योगिक प्रगति

	इकाई	1991–92	1996–97
पेट्रोल	लाख टन	304	329
लोहा	लाख टन	539	651
बिक्री योग्य इस्पात	लाख टन	143	185
सीमेंट	लाख टन	517	762
चीनी	लाख टन	133	153
कपड़ा	लाख टन	1485	2100
कागज	लाख टन	2122	3847

(झ) उद्योग और नौवीं योजना:—इस योजनाकाल में 65148 करोड़ रू. की राशि (सार्वजनिक क्षेत्र की कुल लागत का 7.6 प्रतिशत) उद्योगों व खनिजों के विकास के लिए निर्धारित की गई। औद्योगिक विकास की दर 8.2 प्रतिशत निश्चित की गई।

सफलताएः—नौवीं पंचवर्षीय योजना मे औद्योगिक सफलताएं निम्नलिखित रहीं:—

(i) औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक दर 5 प्रतिशत रही।

उपक्षेत्रों में वार्षिक औद्योगिक वृद्धि दर इस प्रकार रही।

नौवीं योजना में उपक्षेत्रों के वार्षिक दर (प्रतिशत में)

खनन	2.5
बिजली	5.5
विनिर्माण	5.2

(ii) विभिन्न उद्योगों में 2001—02 में वार्षिक वृद्धि दर इस प्रकार रही—

- आधारभूत वस्तु क्षेत्र 2%
- उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र 5.8%
- उपभोक्ता टिकाऊ वस्तु 11.5%
- मध्यवर्ती वस्तु क्षेत्र 1.5%
- 2001—2002 में तंबाकू और संबंधित उत्पादन, यातायात, यंत्र, कागज और कागज उत्पाद में धनात्मक वृद्धि हुई।
- 2001—2002 में इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग में 86900 करोड़ रू. का उत्पादन हुआ।
- इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर सॉफ्टवेयर का 42371 करोड़ रू. का निर्यात हुआ।

असफलताएं—नौवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की असफलताएं निम्नलिखित रहीं:—

(i) नौवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक दर 5 प्रतिशत रही, जबकि लक्ष्य 8. 2 प्रतिशत था।

(ii) 1997—98 तथा पिछले वर्ष की तुलना में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर बहुत कम रही। इसका मुख्य कारण उपक्षेत्रों में वृद्धि दर का कम होना था। विनिर्माण क्षेत्र में पिछले वर्ष की तुलना में सबसे कम वृद्धि हुई। तुलनात्मक वृद्धि दरों के समंक नीचे दिए गए हैं।

विभिन्न उपक्षेत्रों में वार्षिक दर (प्रतिशत में)

	1997	2001—2002
खनन	6.9	1.2
विनिर्माण	6.7	2.7
बिजली	6.6	3.1
सामान्य	6.7	2.7

(iii) कुछ उद्योगों में ऋणात्मक वृद्धि हुई, जैसे लकड़ी और लकड़ी की वस्तुएं, जूट इत्यादि।

(iv) विश्व बाजार में मंदी होने के कारण नौवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर कम रही।

(ञ) उद्योग और दसवीं पंचवर्षीय योजनाः—दसवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योगों के लिए 58,939 करोड़ रू. का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह कुल व्यय का 3.9 प्रतिशत है। औद्योगिक विकास की दर 8.9 प्रतिशत की गई है।

सफलताएं—दसवीं पंचवर्षीय योजना में पहले तीन वर्षों 2002—03, 2003—04 तथा 2004—05 में औद्योगिक क्षेत्र में प्रगति हुई। मुख्य सफलताएं निम्नलिखित रहींः—

(i) औद्योगिक क्षेत्र में 2002—03 में 6.6 प्रतिशत,

(ii) 2003—04 में 6.6 प्रतिशत,

(iii) 2004—05 में 7.8 प्रतिशत दर से वृद्धि हुई। इस प्रकार 2002—03 तथा 2003—04 में वृद्धि दर समान रही, जबकि 2001—02 में यह वृद्धि दर केवल 3.4 थी।

टूल बाक्स — 09
दसवीं पंचवर्षीय योजना
दसवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास की दर 8.9 प्रतिशत रही।

औद्योगिक क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि

(i) औद्योगिक विकास दर 2002—03 में 5.7 प्रतिशत था। जो 2006—07 में बढ़कर 12.5 प्रतिशत वार्षिक गति से हो गई।

(ii) विनिर्माण में वृद्धि—इस क्षेत्र में 2002—03 में 6.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी जो कि 2006—07 में बढ़कर 12.5 प्रतिशत हो गई।

(iii) विद्युत गैस एवं जल आपूर्ति—इसमें 2002—03 में 3.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह 2006—07 मे बढ़कर 7.2 प्रतिशत हो गई।

असफलताएं—दसवीं योजना के पहले तीन वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में निम्न असफलताएं रहींः—

धीमी वृद्धि दर—दसवीं पंचवर्षीय योजना के तीन वर्षों में वृद्धि दर काफी धीमी रही, क्योंकि लक्ष्य 8.9 प्रतिशत वार्षिक निर्धारित किया गया है।

इस प्रकार प्राप्तियों और लक्ष्यों में काफी अंतर रहा। इसके कारण निम्नलिखित हैंः—

खनन तथा उत्खनन की वृद्धि दर मे कमीः—इसमें 2002—03 में 5.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परंतु यह 2004—05 मे कम होकर 5.3 प्रतिशत रह गई।

योजनाकाल में महत्वपूर्ण प्राप्तियां—स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान उद्योगों का तेजी से विकास हुआ है। जहां आजादी से पहले भारत सूई तक बाहर से मंगवाता था, वहां अब बड़ी—बड़ी मशीनें भी विदेशों को निर्यात करने लगा है। औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दिए जाने के कारण आज भारत विश्व के 10 बड़े औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा है।

(त) ग्याहरवीं योजना में औद्योगिक विकास

इस योजना काल में औद्योगिक विकास का लक्ष्य 10 प्रतिशत तथा निर्माण उद्योगों के विकास का लक्ष्य 12 प्रतिशत रखा गया। इसमें उद्योगों को वैश्वी स्तर पर विकसित किया जाता है, ताकि भारत के औद्योगिक उत्पादन की वैश्वी स्तर पर मांग पैदा हो। पर 2007—08 औद्योगिक विकास दर 8.8 प्रतिशत वार्षिक गति से रही।

8.4 योजना अवधि में भारत में औद्योगिक विकास की प्रमुख उपलब्धियां

नियोजन काल के दौरान भारत के औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख उपलब्धियां निम्नलिखित हैंः—

(i) सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तारः—नियोजन काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास एवं विस्तार है। सन 1951 में केंद्र सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 5

उद्योग थे और इनमें 29 करोड़ रू. की पूंजी विनियोजित थी, लेकिन आज इस प्रकार के उद्योगों की संख्या 242 है, जिनमें 4,21,089 करोड़ रू. की पूंजी विनियोजित है।

(ii) संरचनात्मक आधारः—नियोजन काल में आधारभूत संरचना के निर्माण के लिए विशेष प्रयत्न किए गए हैं। इसमें जल—विद्युत, परिवहन एवं संचार सेवाओं का विस्तार किया गया है, जिसमें औद्योगिक विकास में बाधा उत्पन्न न हो। जल एवं वायु परिवहन, डाक—तार सेवा, टेलीफोन सेवा आदि का काफी विस्तार किया गया है। खनिज तेल एवं कोयले के उत्पादन में काफी वृद्धि की गई है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र का विकास सबसे तीव्र गति से हो रहा है।

(iii) संतुलित औद्योगिक विकासः—नियोजन से पूर्व उपभोक्ता उद्योगों की प्रधानता रहीं, जिनमें सूती वस्त्र, जूट, चीनी, कपड़ा आदि मुख्य थे, लेकिन नियोजन काल में आधारभूत उद्योगों की स्थापना को प्रधानता दी गई, जिसके अनुसार लोहा एवं इस्पात, सीमेंट, भारी मशीनें एवं औजार, विद्युत मशीनें, उर्वरक, पेट्रो—रसायन, इलेक्ट्रॉनिक्स, जलयान एवं वायुयान निर्माण, मोटर, स्कूटर आदि उद्योगों को स्थापित किया गया। इससे देश का औद्योगिक विकास संतुलित हो गया।

(iv) विदेशी सहायता से स्थापितः—इस काल की एक विशेषता यह रही है कि इसमें विदेशी सहायता से स्थापित उपक्रमों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। सन 1957 में भारत में 81 विदेशी उपक्रम थे, लेकिन आज इनकी संख्या 18,000 के लगभग है। राउरकेला, दुर्गापुर, भिलाई, बोकारो आदि इस्पात कारखानों की स्थापना विदेशी सहायता का ही परिणाम है।

(v) विदेशी तकनीकी सहयोगः—भारत के औद्योगिक विकास में विदेशी तकनीकी संस्थाओं का भारी योगदान रहा है। प्रस्तावित योजनाओं की जांच—पड़ताल, प्रतिवेदनों, संयन्त्रों एवं मशीनों की पूर्ति, भारतीय तकनीकी विशेषज्ञों को प्रशिक्षण आदि कार्यों में इन विदेशी संस्थाओं ने भारी सहयोग किया है।

(vi) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धिः—नियोजन काल में औद्योगिक उत्पादन कई गुना बढ़ा है; जैसे गत 57 वर्षों में (1950—51 से 2007—08) उत्पादन तैयार इस्पात का 31 गुना, सीमेंट का 36 गुना, कागज का 25 गुना, साइकिलों का 110 गुना, मशीनी औजारों को 4,838 गुना व नाइट्रोजन खाद का 1,113 गुना बढ़ा है।

(vii) औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धिः—औद्योगिकरण होने से निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई है। भारत ऐसी मशीनों एवं इंजीनियरिंग सामान का निर्यात करने लगा है जो वह पहले कभी नहीं करता था। भारत सिलाई मशीनें, बिजली के पंखे, स्कूटर, साइकिलें, इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरण व विद्युत उपकरणों का निर्यात करने लगा है। उद्योगों का निर्यात में योगदान लगभग 45 प्रतिशत है।

(viii) लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकासः—सन 1951 से योजनाकाल में लघु तथा कुटीर उद्योगों को काफी विकास हुआ है। उदाहरण के लिए, लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या जो 1951 में 4.2 लाख थी वह 2014—15 में 119 लाख हो गई। इन उद्योगों के उत्पादन का मूल्य सन् 2006—07 में 7,42,021 लाख करोड़ रू. था। इन उद्योगों ने 2013—14 में लगभग 210 लाख लोगों को रोज़गार दिया ।

(ix) आयात का प्रतिस्थापनः—निर्यात से पूर्व भारत को अनेक प्रकार की मशीनरी व कई प्रकार की वस्तुओं का आयात करना पड़ता था, जिससे विदेशी मुद्रा कोष पर भारी दबाव बना रहता था। नियोजन काल में आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाने के कारण आयातों पर निर्भरता बहुत कम हो गई है या उन वस्तुओं के आयात समाप्त कर दिए गए हैं। भारत पहले साइकिलें आयात करता था, लेकिन अब इसका निर्यात करता है। इसी प्रकार चीनी मिल व टैक्सटाइल मशीनरी, सोडा ऐश, एल्यूमीनियम, कॉस्टिक सोडा आदि का आयात नाममात्र का रह गया है।

टूल बाक्स — 09
ग्यारहवीं योजना में औद्योगिक विकास की उपलब्धियां
● सार्वजनिक क्षेत्र का विकास

- संरचनात्मक आधार
- संतुलित सहायता से स्थापित
- विदेशी सहायता से स्थापित
- विदेशी तकनीकी सहायता
- औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि
- औद्यौगिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि
- लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास
- आयात का प्रतिस्थापन
- सकल घरेलू उत्पाद में उद्योगों का अंशदान
- सुदृढ़ औद्योगिक ढांचा

(x) सकल घरेलू उत्पाद में उद्योगों का अंशदानः—भारत की जी.डी.पी. में उद्योगों का प्रतिशत अंशदान बढ़ा है। यह 1951—52 में 17 प्रतिशत से बढ़कर 2014—15 में 26 प्रतिशत हो गया।

(xi) सुदृढ़ औद्योगिक ढांचाः—नियोजन काल में औद्योगिक ढांचा काफी सुदृढ़ हो गया है। आधारभूत और पूंजीगत उद्योगों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, तैयार इस्पात के उत्पादन में 31 गुना वृद्धि हुई है। भारत मे केवल औद्योगिक उत्पादन में ही वृद्धि नहीं हुई है, अपितु इसका आधार भी विस्तृत हुआ है। औद्योगिक उत्पादन में विविधता आई है। भारत के आधुनिक उद्योग अब विविध वस्तुओं के उत्पादन करने लगे है, जैसे— पेट्रोलियम, उर्वरक, मशीनें, इलेक्ट्रॉनिक्स, परिवहन उपकरण आदि।

8.4 औद्योगिक विकास के ढांचे में प्रवृत्तियां

पांचवी योजना के पश्चात औद्योगिक विकास के ढांचे में विस्तृत परिवर्तन, प्रभावी मांग के ढांचे में परिवर्तन होन के कारण देखे गए हैं। पूंजीगत वस्तुओं की मांग होनी आरंभ हुई है तथा उपभोक्ता टिकाऊ पदार्थों, जैसे— टी.वी., फ्रिज, कारों तथा स्कूटरों आदि की मांग में वृद्धि होनी शुरू हुई है।
निम्न तालिका द्वारा इस प्रवृत्ति को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया हैः—
प्रयोग आधारित वर्गीकरण के आधार पर
उत्पादन की औसत वार्षिक विकास दर

उद्योग की किस्त	1993—1994	2013—14
1. आधारभूत उद्योग	7.4	10.3
2. पूंजीगत उद्योग	15.7	18.2
3. मध्यवर्ती वस्तुओं के उद्योग	5.5	12.0
4. उपभोक्ता वस्तु उद्योग	6.6	10.1
5. टिकाऊ वस्तु	12.1	9.2
6. गैर टिकाऊ वस्तु	5.4	10.4

इस तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता और टिकाऊ पदार्थों के संबंध में औद्योगिक विकास तीव्र गति से बढ़ा है, क्योंकि मध्य आय वर्ग के लोग इन वस्तुओं की मांग करने में विस्तृत रूप से

प्रवेश कर गए है। 2004–05 में फिर औद्योगिक विकास 7.8 प्रतिशत से अधिक हुआ है, इसमें यातायात तथा संचार, आटोमोबाइल, साफ्टवेयर उद्योगों में विशेष प्रगति देखी गई।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन ये स्पष्ट है कि भारत ने उल्लेखनीय औद्योगिक प्रगति की है। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर लगभग 5.5 प्रतिशत रही जिसे अच्छा माना जा सकता है। देश का औद्योगिक ढांचा पहले से सबल हो गया है। आधारभूत उद्योगों के विकास से देश में औद्योगिक उत्पादन में विविधता आई है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान बढ़कर अब 26 प्रतिशत हो गया है। दसवीं योजना के दूसरे वर्ष में औद्योगिक वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत तथा 2006–07 में यह दर 11 प्रतिशत वार्षिक रही। यह तीव्र औद्योगिक विकास की ओर संकेत करती हैं।

महत्वपूर्ण उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि (1950–2014)

	इकाई	औद्योगिक उत्पादन	
		1950–51	2013–14
1. तैयार माल	(मिलियन टनों में)	1	44.33
2. सीमेंट	(मिलियन टनों में)	3	100.5
3. पैट्रोलियम	(मिलियन टनों में)	0.3	137.35
4. मशीनी औजार	(मिलियन रूपए में)	3	29415
5. सूती वस्त्र	(मिलियन मीटरो में)	4215	44383
6. नाइट्रोजन उर्वरक	(हजार टनों में)	9	11607
7. कागज व गत्ता	(हजार टनों में)	116	4139
8. एल्यूमीनियम	(हजार टनों में)	4	719.1
9. व्यावसायिक वाहक	(हजार में)	157	52

औद्योगिक विकास की कमजोरियां/दुर्बलताएं

यद्यपि योजना अवधि के दौरान भारत ने औद्योगिक क्षेत्र की अनेक दिशाओं में प्रगति की है किंतु इस सबके वजूद भी यह प्रगति हमारी आशाओं के अनुसार नहीं हो पाई है। भारत में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में प्रमुख रूप से निम्नलिखित कमियां व कमज़ोरियां ध्यान में आईं हैं:–

(i) धीमा विकासः–भारत में औद्योगिक विकास की गति धीमी एवं अपर्याप्त रही है। औद्योगिक विकास की दर कुल लक्ष्यों से पीछे ही रही है।

(ii) बेरोज़गारी दूर करने में असफलः–पश्चिम की पूंजीगहन तकनीक अपनाई जाने के कारण हमारे देश के बड़े उद्योग बेरोज़गारी की समस्या को हल नहीं कर पाए हैं।

(iii) क्षेत्रीय असमानताः–भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जिस प्रकार उद्योगों–धंधों की स्थापना व प्रगति हुई है उसके कारण क्षेत्रीय असमानता घटने की बजाय और अधिक बढ़ गई है।

(iv) क्षमताओं का अधूरा उपयोगः–हमारे उद्योगों के पास जितनी उत्पादन क्षमताएं मौजूद हैं, उनको पूरा–पूरा उपयोग नहीं कर पाए हैं। इससे देश के पूंजीगत साधनों का अपव्यय हो रहा है।

(v) केंद्रीयकरणः–भारत में औद्योगिक विकास का जो ढांचा उभर कर आया है उसके कारण धन और संपत्तित का केंद्रीयकरण कुछ थोड़े से औद्योगिक घरानों के हाथों में बंट गया है।

(vi) विदेशी निर्भरताः–विदेशी पूंजी व तकनीक को अपनाया गया है, इसके कारण विदेशी निर्भरता बढ़ी है।

(vii) विकास में रूकावटः—भारत में पूंजी की कमी, निम्न उत्पादकता स्तर, प्रशिक्षित कर्मचारियों एवं कुशल प्रबंध के अभाव के कारण औद्योगिक विकास के मार्ग में रूकावटें आती रही हैं।

अतः आगे आने वाले वर्षों मे हमें अपनी इन कमियों को दूर करने पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि औद्योगिक विकास की गति को तीव्र किया जा सके।

सारांश

उपर्युक्त विवेचन ये स्पष्ट है कि भारत ने उल्लेखनीय औद्योगिक प्रगति की है। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर लगभग 5.5 प्रतिशत रही जिसे अच्छा माना जा सकता है। देश का औद्योगिक ढांचा पहले से सबल हो गया है। आधारभूत उद्योगों के विकास से देश में औद्योगिक उत्पादन में विविधता आई है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान बढ़कर अब 26 प्रतिशत हो गया है। दसवीं योजना के दूसरे वर्ष में औद्योगिक वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत तथा 2006—07 में यह दर 11 प्रतिशत वार्षिक रही। यह तीव्र औद्योगिक विकास की ओर संकेत करती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था 12वीं पंचवर्षीय योजना में कदम रख चुकी है। इस योजना में अर्थव्यवस्था के लिए कई चुनौतियां है। भारत ने अभी तक विकास दर में ठीक दर प्राप्त कर ली है। सकल घरेलू उत्पाद दर को 9 प्रतिशत करने में निजी उद्योग को अगर केंद्रीय व राज्य सरकारें सहायक हो तो यह दर आसानी प्राप्त हो जाएगी। सन 2004 में विकास दर 7.5 प्रतिशत रही है। इस वर्ष में भारत में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई है। वर्तमान सरकार की मेक इन इंडिया योजना तीव्र औद्योगिक प्रगति की ओर एक कदम है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक विकास पर टिप्पणी करें।

प्र.2 भारत में औद्योगिकरण पर विस्तृत नोट लिखें।

प्र.3 भारत में औद्योगिकरण की प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त नोट लिखें।

प्र.4 भारत में योजना काल में औद्योगिक विकास पर विस्तृत नोट लिखें।

प्र.5 भारत में योजना काल में औद्योगिकरण की मुख्य प्राप्तियों पर नोट लिखें।

प्र.6 संक्षिप्त नोट लिखें।

(i) दसवीं योजना में औद्योगिक विकास

(ii) योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन में उपलब्धियां

(iii) भारत में औद्योगिक ढांचे में परिवर्तन

(iv) भारतीय औद्योगिक विकास की मुख्य दुर्बलताएं

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.7 स्वतंत्रता के बाद भारत में औद्योगिकरण की प्रगति की समीक्षा कीजिए। औद्योगिक विकास की मंद गति के प्रमुख कारण क्या रहे हैं?

प्र.8 भारतीय अर्थव्यवस्था 12वीं पंचवर्षीय योजना में कदम रख चुकी है। टिप्पणी करें।

प्र.9 वर्तमान सरकार की मेक इन इंडिया योजना पर टिप्पणी करें।

खंड–3
इकाई–9 औद्योगिक बीमारी

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
9.0 प्रस्तावना
9.1 औद्योगिक बीमारी का अर्थ
9.2 औद्योगिक बीमारी के लक्षण
9.3 औद्योगिक बीमारी के कारण
9.4 भारत में औद्योगिक बीमारी के प्रभाव
9.5 औद्योगिक बीमारी को रोकने के उपाय या सुझाव
9.6 भारत में औद्योगिक बीमारी को रोकने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयत्न
सांराश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- औद्योगिक बीमारी का अर्थ
- औद्योगिक बीमारी की परिभाषाएं
- औद्योगिक बीमारी के सूचक
- औद्योगिक बीमारी की प्रवृत्तियां
- औद्योगिक बीमारी के कारण
- भारत में औद्योगिक बीमारी के परिणाम
- औद्योगिक बीमारी को रोकने के सुझाव
- सरकार द्वारा भारत में औद्योगिक बीमारी को रोकने के लिए किए गए प्रयत्न।

9.0 प्रस्तावना

औद्योगिक बीमारी, औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख समस्या है। इसका औद्योगिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक बीमारी का आरंभ में ही पता लगाना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इसे रोकने के लिए उचित उपाय अपनाए जा सके। भारत में भी औद्योगिक बीमारी एक गंभीर समस्या है। वास्तव में बीमार इकाइयां दो प्रकार की होती हैं–

(i) सक्षम बीमार इकाइयांः– इन्हें दोबारा आरंभ किया जा सकता है, क्योंकि ये सक्षम होती हैं।

(ii) अक्षम बीमार इकाइयां– इन्हें दोबारा आरंभ नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये अक्षम होती हैं। औद्योगिक बीमारी का संबंध केवल अक्षम इकाइयों से है अर्थात जो सक्षम नहीं हैं।

9.1 औद्योगिक रूग्णता या बीमारी का अर्थ

औद्योगिक रूग्णता के अर्थ का वर्णन विविध प्रकार से किया जा सकता हैः–

(i) एक आम व्यक्ति के लिए— एक आम व्यक्ति के लिए एक बीमार इकाई वह है जो स्वस्थ नहीं है।

(ii) एक निवेशक के लिए—एक निवेशकर्ता के लिए बीमार इकाई वह है जो लाभांश न दे।

(iii) एक उद्योगपति के लिए—एक उद्योगपति के लिए एक बीमार इकाई वह है जो हानि उठा रही हो तथा बंद होने की अवस्था में हो।

(iv) एक बैंकर के लिए—किसी बैंकर के लिए बीमार इकाई वह है जो ऋण पर ब्याज का भुगतान सही समय पर न कर रही हो। जिसे पिछले वर्ष नकद हानि हुई हो और चालू वर्ष तथा आगामी वर्षों में भी ऐसी ही स्थिति रहने की संभावना हो।

टूल बाक्स – 01
औद्योगिक बीमारी
भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार, "एक बीमार इकाई वह है जिसे एक वर्ष से नकद हानि हुई हो और चालू वर्ष तथा आने वाले वर्ष में भी हानि की संभावना हो; यह इकाई अपने वित्तीय संरचना में असंतुलित हो जैसे कि चालू संपत्तित अनुपात 1:1 से कम हो तथा ऋण समता अनुपात की प्रवृति खराब होने की दशा हो।

इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार—

(i) जिसे पिछले वर्ष नकद हानि हो, वह कमज़ोर इकाई कहलाती है।

(ii) कमज़ोर इकाई को बीमार इकाई कह सकते हैं, परंतु कानूनी तौर पर उसे रूग्ण इकाई घोषित नहीं किया जाता।

(iii) इसमें शुद्ध मूल्य केवल 50 प्रतिशत होता है। बाकी पूंजी ऋण द्वारा एकत्रित होती है।

टूल बाक्स – 02
बीमार औद्योगिक कंपनी
बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट के अनुसार, "बीमार औद्योगिक कंपनी उस औद्योगिक कंपनी को कहते हैं जो (सात वर्ष से कम समय के लिए पंजीकृत न हो) किसी भी वित्तीय वर्ष के अंत में अपनी कुल मूल्य के बराबर अथवा उससे अधिक की नकद हानि सहन कर रही हो तथा उसे चालू वित्तीय वर्ष में और पिछली वित्तीय वर्ष नकद हानि हुई हो। यहां नकद हानि मूल्य ह्रास का प्रावधान दिए बिना हानि तथा शुद्ध संपत्तित, पूंजीगत तथा स्वतंत्र कोषों को संबोधित करती है।"

इस एक्ट के अनुसार एक बीमार कंपनी में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएः—

(i) कंपनी की नकद पूंजी में कमी हो रही हो।

(ii) कंपनी दो वर्षों से लगातार नकद हानि सहन कर रही हो।

(iii) वर्ष के अंत में शुद्ध पूंजी कम तथा घाटा अधिक हो।

(iv) कंपनी की पिछले 7 वर्षों से रजिस्ट्रेशन होनी आवश्यक है। 1994 में इसमें संशोधन कर दिया गया है। अब रजिस्ट्रेशन की अवधि 7 वर्ष के स्थान पर 5 वर्ष की गई है।

टूल बाक्स – 03
औद्योगिक बीमारी का अर्थ
एक बीमार इकाई जो लाभ न दे और बंद होने की अवस्था में हो।

इस एक्ट के अनुसार यदि पिछले 5 वर्षों में कंपनी की शुद्ध सम्पति 50 प्रतिशत से भी कम हो तो उसे आरम्भिक बीमार कंपनी घोषित किया जाएगा। आरंभ में इस एक्ट के अंतर्गत केवल निजी क्षेत्र की कंपनियों को ही शामिल किया गया था। परंतु दिसंबर 1991 से, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को भी शामिल कर दिया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	औद्योगिक बीमारी का अर्थ क्या है?
प्र.2	बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट के अनुसार औद्योगिक बीमारी की परिभाषा बताएं ?
प्र.3	एक बीमार कंपनी में कौन–2 बातें होती है?

9.2 औद्योगिक बीमारी के लक्षण या सूचक

औद्योगिक बीमारी के निम्नलिखित लक्षण हो सकते हैं:–

(क) **वैधानिक दायित्वों के भुगतान में कठिनाई**– जब औद्योगिक इकाई अपने वैधानिक दायित्वों का भुगतान नहीं कर पाती तो औद्योगिक रूग्णता में अंतर्गत आती है। मुख्य वैधानिक दायित्व निम्नलिखित हैं:–

(i) विभिन्न प्रकार के करों जैसे बिक्री का उत्पादन कर

(ii) भविष्य निधि में योगदान

(iii) कर्मचारी राज्य बीमा की कटौतियां

(iv) ऋण एवं ब्याज की किस्तों का भुगतान

(v) श्रमिकों की मजदूरी भुगतान में देरी

(vi) कच्चे माल का भुगतान करने में असमर्थता

ये सभी औद्योगिक रूग्णता की ओर संकेत देते हैं।

(ख) **गिरता हुआ लाभ**:– यदि किसी औद्योगिक इकाई का निवेश पर लाभ निरंतर कम होता जाता है तथा भविष्य में इकाई की बिक्री इतनी अवश्य हो कि

(i) ऋणों का ब्याज दिया जा सके।

(ii) मालिकों के लिए लाभ कमाया जा सके।

(iii) उत्पादन की लागत पूरी होने के पश्चात घिसावट का आयोजन किया जा सके।

यदि ऐसा नहीं हो पाता तो ये संकेत रूग्णता के सूचक हैं।

(ग) **स्टॉक में वृद्धि**:–यदि कोई उत्पादक इकाई अपने तैयार माल की बिक्री नहीं कर पाती तो स्टॉक में वृद्धि होने लगती है। यह भी रूग्णता का सूचक है कि स्टॉक में निम्नलिखित माल एकत्रित हो सकता है :–

(i) कच्चा माल

(ii) अर्धनिर्मित माल

(iii) तैयार माल

बिक्री के अभाव के कारण माल का स्टॉक बढ़ना रूग्णता का संकेत देता है।

(घ) **पूंजी ढांचे में दोष**:– जब बाजार में उपक्रमों के शुद्ध मूल्य में गिरावट हो, स्टॉक एक्सचेंज में शेयरों के मूल्यों में कमी हो तो पूंजी ढांचे के दोष आरंभ हो जाते हैं। इसके साथ ही यदि पूंजी ढांचे मे़ ऋण की मात्रा में वृद्धि हो रही है तो औद्योगिक इकाई की शुद्ध संपत्ति कम होने लगती है। यह भी औद्योगिक रूग्णता का संकेत है।

(ङ) **नकद प्रबंध की कठिनाइयां**– औद्योगिक इकाई को कईं बार नकद प्रबंध में अनेक कठिनाइयां आती हैं, जैसे–(i) नकद निर्गमों में स्थिरता, (ii) नकद अंतर्प्रवाह में कमी।

इनके परिणामस्वरूप नकदी का स्तर अनुकूलतम बिंदु से नीचे रहने लगता है। कभी–कभी नकदी के अभाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ये भविष्य में रूग्णता के सूचक हैं।

(च) **बिक्री में गिरावट**–कईं बार औद्योगिक इकाइयां बिक्री को बढ़ाने के लिए अनेक प्रयत्न करती हैं, जैसे–

(i) कैश तथा व्यापारिक डिस्काऊंट को बढ़ाकर,

(ii) उदारवादी उधार नीति अपना कर

(iii) वसूली धीरे–धीरे करके।

(छ) **अल्पकालीन स्त्रोतों की वित्तीय व्यवस्थाः**– कई प्रोजेक्ट दीर्घकालीन होते हैं। इनकी वित्तीय व्यवस्था भी दीर्घकालीन स्त्रोतों द्वारा होनी चाहिए। परंतु कई बार दीर्घकालीन प्रोजेक्ट की वित्तीय व्यवस्था का प्रबंध अल्पकालीन स्त्रोतों द्वारा किया जाता है। यह भी औद्योगिक रूग्णता का संकेत है।

(ज) **बैंक तथा ग्राहक संबंधों में गिरावट**–कई बार ग्राहक तथा बैंक के आपसी संबंध बिगड़ जाते हैं। इसके निम्नलिखित कारण है–

(i) ओवरड्राफ्ट पर अधिक निर्भरता

(ii) साख के भुगतान के अनियमिताएं

(iii) बैंक द्वारा अधिक मार्जिन लेना

(iv) उत्तम जमानत के लिए बार–बार कहना।

इन सभी कारणों से आपसी संबंध बिगड़ते हैं जोकि औद्योगिक रूग्णता की ओर संकेत करते हैं।

टूल बाक्स – 04
औद्योगिक बीमारी के लक्षण
• वैधानिक दायित्वों के भुगतान में कठिनाई • गिरता हुआ लाभ • स्टॉक में वृद्धि • पूंजी ढ़ाचे में दोष • नकद प्रबंध की कठिनाइयां • बिक्री में गिरावट • अल्पकालीन स्त्रोतों की वित्तीय व्यवस्था • बैंक तथा ग्राहक संबंधों में गिरावट

भारत में औद्योगिक रूग्णता या बीमारी की प्रवृत्तियां

भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इससे केवल बड़े तथा मध्यम उद्योग ही नहीं, अपितु लघु उद्योग भी प्रभावित होते हैं। औद्योगिक बीमारी की प्रवृत्तियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः–

1. विभिन्न उद्योगों में रूग्णता की प्रवृतियां
2. नई आर्थिक नीति के अंतर्गत औद्योगिक रूग्णता की प्रवृत्तियां
1. **विभिन्न उद्योगों की रूग्णता की प्रवृत्तियां** (कुल रूग्ण उद्योगों में प्रतिशत योगदान के रूप में)–इसे निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

वर्ष	बड़े व मध्यम उद्योग		लघु उद्योग		कुल
	संख्या	रूग्ण %	संख्या	रूग्ण %	

1990	2269	1	218828	99	221097(100%)
2013	3496	2	168980	98	172476(100%)

तालिका के आधार पर विभिन्न उद्योगों की रूग्णता की प्रवृत्तियों का वर्णन निम्न प्रकार से कर सकते हैः—

(क) बड़े और मध्यम उद्योगों की रूग्णता की प्रवृतियां— बड़े और मध्यम बीमार उद्योगों की कुल उद्योगों में संख्या 1990 में केवल 1% थी परंतु 2013 में बढ़कर 2% हो गई।

(ख) लघु उद्योगों की रूग्णता की प्रवृत्तियां—लघु बीमार उद्योगों की संख्या कुल उद्योगों में 1990 में 99% थी। परंतु 2003 में यह कम होकर 98% रह गई इस प्रकार अधिकतम औद्योगिक रूग्णता छोटे उद्योगों में थी।

2. **नई आर्थिक नीति के अंतर्गत औद्योगिक बीमारी की प्रवृत्तियां—** नई आर्थिक नीति 1991 में लागू की गई। इसलिए 1992 से औद्योगिक बीमारी की स्थिति निम्न तालिका में दिखाई गई हैः—

नई आर्थिक नीति के अंतर्गत औद्योगिक रूग्णता

उद्योग	1992	2013	% परिवर्तन
1. बड़े और मध्यम	2427	3396	40%
2. लघु उद्योग	233441	167980	—28%
कुल उद्योग			—25%

अर्थात 1992 से 2013 के दौरान बड़े और मध्यम उद्योगों की रूग्णता में 40% की वृद्धि हुई। जबकि लघु उद्योगों में 28% की कमी हुई। कुल उद्योगों की रूग्णता में भी कमी 25% रही।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	बैंक व कंपनी संबंधों में गिरावट के क्या कारण होते है?
प्र.5	स्टॉक में कौन से माल शामिल होता हैं?
प्र.6	औद्योगिक बीमारी की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए?
प्र.7	नई आर्थिक नीति के अनुसार औद्योगिक बीमारी की स्थिति दिखाइए?

9.3 औद्योगिक बीमारी के कारण

औद्योगिक बीमारी के दो मुख्य कारण हैं :—

1. आंतरिक कारण
2. बाह्य कारण

1. आंतरिक कारण

ये वे कारण हैं जो उद्योगों के आंतरिक प्रक्रिया से ही उत्पन्न होते हैं तथा उद्योगों के नियंत्रण में होते है।

(क) औद्योगिक झगड़े— कई बार मालिक और मजदूरों में झगड़े हो जाते हैं। इसके कारण हड़ताल और तालाबंदी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप उत्पादन की हानि होती है।

(ख) पुरानी तकनीक का प्रयोगः—उद्योगों में पुरानी तकनीक का प्रयोग किया जाता है तथा कई बार पुरानी मशीनें ही प्रयोग में लाई जाती है, परिणामस्वरूप उत्पादन कम होता है।

(ग) धन का हस्तांतरणः— उद्योगों के मालिक एक कारखाने की पूंजी का दूसरे कारखाने में हस्तांतरण करते रहते हैं। इस कारण वह उद्योग, जिसमें से धन निकाला जाता है औद्योगिक बीमारी का शिकार हो जाता है।

(घ) गलत तकनीक का चुनावः—औद्योगिक बीमारी का कारण यह भी है कि वस्तुओं का उत्पादन की जाने वाली तकनीक का चुनाव गलत किया जाता है।

(ङ) उत्पादन क्षमता का कम प्रयोगः—बिजली, कोयले, कच्चे माल तथा परिवहन की कमी के कारण उद्योगों की उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग नहीं किया जाता। इस कारण औद्योगिक इकाइयां बीमार हो जाती हैं।

(च) अंशधारियों में झगड़ाः—अंशधारी केवल अपने स्वार्थ में लगे रहते हैं। परिणामस्वरूप उनमें झगड़े होने लगते हैं, जिससे औद्योगिक बीमारी की समस्या उत्पन्न होने लगती है।

(छ) उचित प्रबंध का अभावः— उद्योगों का उचित ढ़ंग से प्रबंध नहीं किया जाता। उचित प्रबंध के अभाव से औद्योगिक इकाइयां बीमार हो जाती हैं।

(ज) प्रतियोगी शक्ति का अभावः—उद्योगों में उत्पादन लागत अधिक आती है, जिसके कारण वस्तुओं की कीमतें ऊंची रखनी पड़ती है। परिणामस्वरूप इन इकाइयों की प्रतियोगी शक्ति कम हो जाती है। इससे औद्योगिक इकाइयां बीमार होने लगती है।

(झ) उत्पादन का पैमाना आवश्यकता के अनुसार नहींः— उत्पादन का पैमाना आवश्यकता के अनुसार नहीं होता। यह कभी आवश्यकता से कम तथा कभी आवश्यकता से अधिक होता है।

2. बाह्म कारणः—

ये वे कारण है जो उद्योगों में बाहर से पनपते हैं तथा उद्योगों के नियंत्रण में नहीं होते। औद्योगिक बीमारी के बाह्म कारण निम्नलिखित हैंः—

(क) शक्ति संकट— औद्योगिकरण के कारण बिजली, कोयला तथा तेल की मांग निरंतर बढ़ रही है। इनकी पूर्ति, मांग की अपेक्षा कम होती है। बिजली के संबंध में कृषि को प्राथमिकता दी जाती है, परंतु उद्योगों पर बिजली कटौती लागू की जाती है। इसी प्रकार कोयले तथा तेल की कमी के कारण भी औद्योगिक उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(ख) सरकार की नीतिः— कई बार सरकार अपनी नीतियों जैसे औद्योगिक लाइसेंसिग, कर, आयात—निर्यात इत्यादि में अचानक परिवर्तन कर देती है। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक इकाइयां बीमार हो जाती है। उदाहरण के तौर पर किसी विशेष उत्पादन के लिए उदारवादी आयात नीति उसी प्रकार की घरेलू उत्पादन इकाइयों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

(ग) कच्चे माल का अभावः— कई औद्योगिक इकाइयों को कच्चा माल विदेशों से आयात करना पड़ता है। यातायात की सुविधाओं की कमी होने के कारण कच्चा माल समय पर नहीं पहुंचता। इससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पडता है।

(घ) बिक्री में कठिनाईः— जो वस्तुएं उद्योगों द्वारा उत्पादित की जाती हैं उन्हें कई बार बाजार में बेचना कठिन हो जाता है। मंदी के कारण बाजार में मांग कम हो जाती है। परिणामस्वरूप स्टॉक बिक नहीं पाता। बिक्री के अभाव में औद्योगिक इकाइयां रूग्ण अवस्था में पहुंच जाती हैं।

(ङ) तकनीकी परिवर्तनः— औद्योगिक क्षेत्र में निरंतर तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं। नए आविष्कार अथवा नई तकनीक कुछ उत्पादों को अप्रचलित बना देती है। परिणामस्वरूप औद्योगिक इकाइयां बीमार हो जाती है।

(च) साख का अभावः— औद्योगिक इकाइयों को ऋण के लिए विशेष तौर पर बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है। कोई भी बैंक ऐसी औद्योगिक इकाई का ऋण नहीं देना चाहता जिसे एक बार हानि होने लगे। परिणामस्वरूप औद्योगिक इकाई का कार्यशील पूंजी के अभाव की समस्या उत्पन्न होने लगती है। अधिकतर इकाइयां रूग्ण हो रही हैं।

(छ) विश्व व्यापार संघ से समझौताः— भारत ने 1996 में विश्व व्यापार संगठन समझौते पर हस्ताक्षर किए। परिणामस्वरूप कई औद्योगिक इकाइयां समाप्त हो गई। उदारीकरण की नीति अपनाने के कारण भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियां प्रवेश कर रहीं है। इससे घरेलू उद्योगों को हानि हो रही है। अधिकतर इकाइयां रूग्ण हो रही हैं।

टूल बाक्स – 05	
औद्योगिक बीमारी के कारण	
आंतरिक कारण	**बाह्य कारण**
• औद्योगिक झगड़े • पुरानी तकनीक का प्रयोग • धन का हस्तांतरण • गलत तकनीक का चुनाव • उत्पादन क्षमता का कम प्रयोग • अंशधारियों में झगड़ा • उचित प्रबंध का अभाव • प्रतियोगी शक्ति का अभाव • उत्पादन का पैमाना आवश्यकता के अनुसार नहीं	• शक्ति संकट • सरकार की नीति • कच्चे माल का अभाव • बिक्री में कठिनाई • तकनीकी परिवर्तन • साख का अभाव • विश्व व्यापार संघ से समझौता

उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के कारण औद्योगिक बीमारी के लिए उतरदायी है। परंतु दोनों में से आंतरिक कारण अधिक योगदान देते हैं। 1984 की तिवारी समिति की रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक इकाइयों की रूग्णता आंतरिक कारणों (दोषपूर्ण प्रबंधन) से है। रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भी 67 औद्योगिक बीमारी के लिए आंतरिक कारण जैसे अकुशल प्रबंध इत्यादि ही उतरदायी है। अतः औद्योगिक बीमारी मुख्य रूप से आंतरिक कारणों से ही उत्पन्न होती है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.8	औद्योगिक बीमारी के आंतरिक कारणों से क्या तात्पर्य है?
प्र.9	विश्व व्यापार संघ समझौते से औद्योगिक बीमारी पर क्या प्रभाव पड़े?

9.4 भारत में औद्योगिक बीमारी के प्रभाव या परिणाम

भारत में औद्योगिक बीमारी गंभीर रूप धारण कर रही है। इसके कई बुरे प्रभाव पड़ते है। कुछ बुरे प्रभाव निम्नलिखत हैः–

(क) औद्योगिक अशांतिः– जब कोई बड़ी रूग्ण इकाई बंद हो जाती है तो श्रमिकों द्वारा विरोध किया जाता है तथा हड़ताल की जाती है। इसका प्रभाव औद्योगिक इकाइयों के श्रमिकों पर भी पड़ता है। वह श्रमिक भी समर्थन में विरोध करने लगते हैं। परिणामस्वरूप औद्योगिक अशांति फैल जाती है।

(ख) संबंधित इकाइयों पर विपरीत प्रभावः– सामान्यतः एक औद्योगिक इकाई का दूसरे के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। जब एक औद्योगिक इकाई बीमार होती है तो उसका दूसरी इकाइयों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे जूट का सामान तैयार करने वाली इकाई कच्चे माल तथा अन्य

आगतों के लिए दूसरी इकाइयों पर निर्भर होती है। ऐसे ही यह उन अन्य इकाइयों से भी संबंध रखती है जिन्हें तैयार माल की सप्लाई की जाती है। यदि जूट का सामान तैयार करने वाली इकाई बीमार हो जाए तो इसका प्रभाव दूसरी संबंधित इकाइयों पर भी पड़ेगा।

(ग) रोज़गार पर विपरीत प्रभावः– यदि कोई औद्योगिक इकाइ बंद हो जाती है तो रोज़गार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि बंद होने वाली इकाई का आकार विस्तृत हो और इसमें काफी कर्मचारी कार्य कर रहे हो तो स्थिति गंभीर रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के तौर पर यदि सूती वस्त्र उद्योग की एक बड़ी इकाई बीमार हो जाए तथा बंद कर दी जाए तो इसका कर्मचारियों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सभी कर्मचारी बेरोज़गार हो जाएंगे।

(घ) निवेशकर्ताओं पर विपरीत प्रभावः– जब कोई बड़ी बीमार इकाई बंद हो जाती है तो निवेशकर्ताओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अपनी पूंजी फंसने के कारण निवेशकर्ता हतोत्साहित होते हैं। भविष्य में भी ये निवेशकर्ता पूंजी निवेश करने में हिचकिचाते हैं।

(ङ) उद्यमियों पर विपरीत प्रभावः–बीमार इकाई के बंद हो जाने के कारण निवेश को प्रोत्साहन नहीं मिलता। परिणामस्वरूप उद्यमी भी निवेश हो जाते हैं। उन्हें अपनी इकाई के बंद हो जाने का डर लगा रहता है। इसलिए उद्यमी नई इकाई आरंभ करने के लिए रूचि नहीं लेते।

(च) सरकार के आय के साधनों में कमीः– औद्योगिक इकाइयों से नई प्रकार के कर तथा शुल्क प्राप्त होते है। ये सभी स्थानीय, राज्य तथा केंद्रीय सरकार की आय के साधन हैं। औद्योगिक इकाइयों के बीमार होने के कारण ये कर प्राप्त नहीं हो पाते। परिणामस्वरूप सरकार की आय के साधन कम हो जाते है।

(छ) साधनों का व्यर्थ होनाः– भारत जैसे देशों में पूंजी की कमी होती है। ऐसे देशों में औद्योगिक इकाई के बीमार होने पर बंद होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में उस औद्योगिक इकाई में लगाए गए सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं। बड़ी बीमार औद्योगिक इकाईयों के संबंध में यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है, क्योंकि इन इकाईयों में मशीनों एवं संयंत्रों में काफी निवेश किया हुआ होता है।

(ज) बैंक व वित्तीय संस्थाओं के साधनों में कमीः– जब औद्योगिक इकाइयां रूग्ण हो जाती है तो बन्द होने लगती है। ऐसी स्थिति में ये इकाइयां बैंको तथा वित्तीय संस्थाओं को ऋणों का ब्याज भी नहीं दे पाती। ऋणों की वसुली के अभाव में बैंक व वित्तीय संस्थाओं, जैसे– भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम इत्यादि के साधन कम हो जाते हैं। परिणास्वरूप ये बैंक तथा वित्तीय संस्थाएं भविष्य में ऋण नहीं दे पाती। इस प्रकार भविष्य में ऋण प्रदान करने के कार्यक्रमों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

9.5 औद्योगिक बीमारी को रोकने के उपाय या सुझाव

(क) उत्पादन की बिक्रीः– उद्योग जिन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं उनकी बिक्री की उचित व्यवस्था की आवश्यकता है। इसके लिए मांग का पूर्व अनुमान लगाना चाहिए। इसके साथ ही उपभोक्ताओं की रुचियों तथा प्राथमिकताओं के आधार पर उत्पादन पैदा करना चाहिए।

(ख) आधुनिक तकनीक का प्रयोगः– उद्योगों में नई तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए। आधुनिक मशीनें प्रयोग में लानी चाहिए। इससे न केवल उत्पादन शीघ्र तथा बढ़िया होगा, अपितु उत्पादन में वृद्धि भी होगी।

(ग) उत्पादन की उचित तकनीक का चुनावः– उत्पादन की उचित तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि उत्पादन की गुणवता में सुधार हो। उचित तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन में विविधता लाने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) उत्पादन क्षमता का प्रयोगः– बिजली, कोयला, कच्चा माल तथा परिवहन की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में सरकार द्वारा उपलब्ध करवाई जानी चाहिएं। इससे उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जा सकेगा तथा उत्पादन भी बढ़ेगा।

(ङ) औद्योगिक अनुसंधानः— हिस्सेदारों को अपने स्वार्थ की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, अपितु औद्योगिक अनुसंधानों की व्यवस्था करनी चाहिए। अच्छे अनुसंधान द्वारा ही कोई भी औद्योगिक इकाई अन्य इकाइयों से प्रतियोगिता कर सकती है।

(च) उचित प्रबंधः— भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार औद्योगिक रूग्णता का मुख्य कारण अकुशल प्रबंधही है। इसलिए उद्योगों का उचित तथा कुशलता से प्रबंध किया जाना चाहिए।

(छ) लागत में कमीः— उद्योगों में उत्पादन की लागत को कम करने का प्रयास करना चाहिए। साधनों के इष्टतम प्रयोग द्वारा तथा अपव्यय को कम करके लागत को कम किया जा सकता है। लागत कम होने से प्रतियोगी शक्ति बढ़ सकेगी।

(ज) उत्पादन का उपयुक्त पैमानाः— उत्पादन की लागत में कमी करने के साथ लाभ में वृद्धि करने की अत्यंत आवश्यकता है इसके लिए उद्योगों का उत्पादन का पैमाना आवश्यकता के अनुसार तथा उपयुक्त होना चाहिए।

(झ) प्रशिक्षित स्टॉफः— उद्यम की सफलता के लिए प्रशिक्षित तथा अनुभवी स्टॉफ का होना आवश्यक है। इसके लिए समय—समय पर वर्कशाप या संगोष्ठियों का आयोजन करना चाहिए, ताकि कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण दिया जा सके। इसके साथ ही अनुभवी और कुशल कर्मचारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। व्यवसाय में आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं करनी चाहिए।

(ञ) धन के हस्तान्तरण पर रोकः— एक कारखाने से दूसरे कारखाने में धन के हस्तांतरण पर रोक लगानी चाहिए। इसके लिए कानूनी तौर से प्रतिबंध होना चाहिए।

(ट) सस्ती ऋण सुविधाएंः— बीमार इकाइयों को कम ब्याज दर पर ऋण सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। इसके साथ ही कम मार्जिन पर रियायती ऋण दिया जाना चाहिए। इससे आरंभ में ही रूग्णता को रोकना आसान हो जाएगा।

(ठ) उचित गांवः— उच्च अधिकारियों द्वारा प्रोजेक्ट की उचित जॉच की जानी चाहिए। जोखिमपूर्ण प्रोजेक्ट के लिए उचित तकनीकी सलाह लेनी चाहिए। समय—समय पर जांच करने पर औद्योगिक रूग्णता के विभिन्न कारणों का पता लगाया जा सकता है। साथ में ही सुधार के लिए उचित उपाय भी अपनाए जा सकते हैं।

उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि औद्योगिक बीमारी के अनेक कारण है, इसलिए औद्योगिक बीमारी निरंतर बढ़ रही है। विभिन्न उपायों को अपनाकर इसे रोका जा सकता है।

9.6 भारत में औद्योगिक बीमारी को रोकने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयत्न

सरकार ने औद्योगिक बीमारी को रोकने के लिए निम्न उपाय या प्रयत्न किए हैंः

(क) औद्योगिक बीमारी का अनुमानः— सरकार औद्योगिक बीमारी का अनुमान कई तरह से लगाती है। जैसे उद्योग, कर्मचारियों की भविष्य निधि में समय पर अपना हिस्सा जमा करवाते है या नहीं, उद्योगों द्वारा बैंकों के ऋणों की किस्तें दी जाती हैं या नहीं, तैयार माल की बिक्री का ना होना, उत्पादन क्षमता का उचित उपयोग ना करना आदि।

(ख) सुदृढ़ इकाइयों के साथ विलयः— सरकार बीमार इकाइयों को दोबारा आरंभ करना चाहती है। इसलिए बीमार इकाइयों को सृदृढ़ इकाइयों के साथ मिलाने का प्रयत्न करती है। आवश्यकतानुसार सरकार इन्हें रियायतें भी दे देती है।

(ग) सस्ते ऋणः— वित्तीय संस्थाएं जैसे भारतीय वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा भारतीय औद्योगिक साख व निवेश निगम लिमिटेड द्वारा बीमार उद्योगों को प्रदान किए जाते हैं, ताकि बीमार उद्योग सुदृढ़ हो सकें।

टूल बाक्स – 06
बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट
बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट 1985, बीमार कंपनियों के पुनःनिर्माण के लिए गठित की गई

(घ) बैंकिग सुविधाएंः– बैंको द्वारा बीमार उद्योगों को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा आधुनिकीकरण करने के लिए ऋणों के रूप में सहायता दी जाती है। इसके लिए कम ब्याज पर तथा आसान किश्तों में भुगतान इत्यादि अनेक प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।
(ङ) औद्योगिक पुनर्निर्माण निगमः– इसकी स्थापना 1971 में की गई। उसका मुख्य बंद कारखानों का पुनर्निर्माण करना था। 1997 में इसका नाम बदल दिया गया। इसके स्थान पर इसका नाम भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक रख दिया गया।
(च) कोषों की स्थापनाः– पुरानी मशीनों तथा पुरानी तकनीकों का प्रयोग करने से औद्योगिक इकाइयां बीमार हो जाती हैं। इन इकाइयों का आधुनिकीकरण आवश्यक है इसके लिए इन्हें धन की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता रहती है। सरकार ने इसके लिए विभिन्न कोषों जैसे जूट आधुनिकीकरण कोष की स्थापना की है।
(छ) एक खिडकी प्रणालीः– इसका अर्थ है कि लघु उद्योगों को अपनी ऋण की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए केवल एक अधिकारी से संपर्क करना पड़ता है। इस प्रणाली का आरंभ लघु उद्योगों की बीमार इकाइयों को ऋण देने तथा उन्हें सुदृढ़ बनाने के लिए किया गया।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.10	एक खिड़की प्रणाली से क्या तात्पर्य है?
प्र.11	बीमार कंपनी एक्ट 1985 के अनुसार कौन–कौन से कदम उठाए गए?
प्र.12	एन.सी.एल.टी. का क्या उद्देश्य है?
प्र.13	भारत में औद्योगिक बीमारी के कोई दो परिणाम बताएं?

(ज) बीमार औद्योगिक कंपनी एक्टः– 1985 में बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट बनाया गया। बीमार उद्योगों की समस्याओं का समाधान करने के लिए औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड यह निर्णय कर ले कि कोई औद्योगिक इकाई कानूनी तौर पर बीमार है तो उसे ठीक करने के लिए विभिन्न कदम उठाए जा सकते हैं। जैसे (i) पूर्ण इकाई को किराये पर देना, (ii) कुछ भाग को बेच देना, (iii) सुदृढ़ कंपनी के साथ मिला देना, (iv) इकाई के प्रबंध का परिवर्तन करना, (v) आवश्यकता पड़ने पर इकाई को बंद करना, (vi) सस्ती वित्तीय सहायता देना इत्यादि।
(झ) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंकः– इस बैंक की स्थापना लघु उद्योगों की साख की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए की गई। इस बैंक द्वारा लघु क्षेत्रों की बीमार इकाइयों को उचित समय पर उचित मात्रा में ऋण की सुविधाएं दी जाती है।
(ञ) बीमार इकाइयों का राष्ट्रीयकरणः– सरकार ने 1951 में औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम पास किया। इसके अनुसार सरकार बैंको तथा विभिन्न संस्थाओं से बीमार इकाइयों को ऋण सुविधाएं प्रदान करवाती है। इन बीमार इकाइयों को सुचारू रूप से चलाने का प्रयत्न किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर सरकार इनका राष्ट्रीयकरण कर देती है। अर्थात इनका प्रबंध तथा संचालन स्वयं करती है।
(ट) एन.सी.एल.टी. की स्थापनाः– बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट तथा औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के स्थान पर एन.सी.एल.टी. की स्थापना की गई हैं। इसका मुख्य उद्देश्य बीमार इकाइयों को पुनःस्थापित करने की बजाय उसे समाप्त करना है। आज के विश्वीकरण के युग में बीमार इकाइयों को समाप्त करने पर अधिक बल दिया जा रहा है।

सारांश

उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि भारत में औद्योगिक बीमारी निरंतर बढ़ रही है। औद्योगिक बीमारी के दो मुख्य कारण हैं – आंतरिक कारण वे कारण हैं जो उद्योगों के आंतरिक प्रक्रिया से ही उत्पन्न होते हैं तथा उद्योगों के नियंत्रण में होते हैं, बाह्य कारण वे कारण है जो उद्योगों में बाहर से पनपते हैं तथा उद्योगों के नियंत्रण में नहीं होते। जब औद्योगिक इकाइयां रूग्ण हो जाती है तो बंद होने लगती है। ऐसी स्थिति में ये इकाइयां बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को ऋणों का ब्याज भी नहीं दे पाती। ऋणों की वसुली के अभाव में बैंक व वित्तीय संस्थाओं, जैसे– भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम इत्यादि के साधन कम हो जाते हैं। परिणास्वरूप ये बैंक तथा वित्तीय संस्थाएं भविष्य में ऋण नहीं दे पाती। इस प्रकार भविष्य में ऋण प्रदान करने के कार्यक्रमों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

1985 में बीमार औद्योगिक कंपनी एक्ट बनाया गया। बीमार उद्योगों की समस्याओं का समाधान करने के लिए औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड यह निर्णय कर ले कि कोई औद्योगिक इकाई कानूनी तौर पर बीमार है तो उसे ठीक करने के लिए विभिन्न कदम उठाए जा सकते हैं। जैसे (i) पूर्ण इकाई को किराये पर देना, (ii) कुछ भाग को बेच देना, (iii) सुदृढ़ कंपनी के साथ मिला देना, (iv) इकाई के प्रबंध का परिवर्तन करना, (v) आवश्यकता पड़ने पर इकाई को बंद करना, (vi) सस्ती वित्तीय सहायता देना इत्यादि। विभिन्न उपायों द्वारा सरकार ने इसे रोकने का प्रयत्न किया है पर फिर भी इस दिशा में और अधिक उचित कदम उठाने की आवश्यकता है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 औद्योगिक रूग्णता से क्या अभिप्राय है?
प्र.2 भारत में औद्योगिक रूग्णता की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
प्र.3 औद्योगिक रूग्णता से आप क्या समझते हैं?
प्र.4 भारत में औद्योगिक बीमारी के बुरे प्रभावों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.5 औद्योगिक रूग्णता से क्या अभिप्राय है? औद्योगिक रूग्णता को रोकने तथा ठीक करने के लिए सरकार तथा बैंकों द्वारा उठाए गए कदमों की व्याख्या कीजिए।
प्र.6 भारत में औद्योगिक बीमारी के विस्तार का वर्णन करें। इसे दूर करने के सुझाव दें।
प्र.7 निम्नलिखित पर नोट लिखें
(i) औद्योगिक रूग्णता के संकेत
(ii) औद्योगिक बीमारी के आंतरिक और बाह्य कारण
(iii) भारत में औद्योगिक रूग्णता की प्रवृत्ति
(iv) औद्योगिक रूग्णता के प्रभाव
(v) भारत में औद्योगिक रूग्णता को रोकने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम।
प्र.8 भारत में औद्योगिक रूग्णता के कारण कौन–कौन से हैं? इसे रोकने के उचित उपाय या सुझाव बताएं।
प्र.9 औद्योगिक रूग्णता से क्या अभिप्राय है? इसके लक्षणों का वर्णन करें। औद्योगिक रूग्णता को दूर करने के उपाय बताइए।
प्र.10 भारत में औद्योगिक रूग्णता की प्रवृत्तियों का वर्णन करो। इसके परिणाम भी बताइए।

प्र.11 सरकार द्वारा औद्योगिक बीमारी को रोकने के लिए किए गए प्रयत्न बताइए।

खंड –3
इकाई–10 लघु तथा कुटीर उद्योग

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
10.0 प्रस्तावना
10.1 लघु उद्योग व कुटीर उद्योग की परिभाषा
10.2 लघु व कुटीर उद्योगों की आवश्यकताएं
10.3 लघु तथा कुटीर उद्योगों का महत्व
10.4 लघु उद्योगों का पंजीकरण
10.5 लघु उद्यम की स्थापना
10.6 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक या सिडबी
10.7 योजनाएं
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगेः

- लघु, मध्यम व कुटीर उद्यमों का अर्थ
- भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का महत्व
- सिडबी व उसके कारोबार का दायरा
- लघु उद्योग के लिए विभिन्न योजनाएं
- प्रधानमंत्री रोज़गार सृजन कार्यक्रम

10.0 प्रस्तावना

लघु उद्योग वे होते हैं जो मध्यम स्तर के विनियोग की सहायता से उत्पादन प्रारंभ करती है। इन इकाइयों में श्रम शक्ति की मात्रा भी कम होती है और सापेक्षिक रूप से वस्तुओं एवं सेवाओं का कम मात्रा में उत्पादन किया जाता है। ये बड़े पैमाने के उद्योगों से पूंजी की मात्रा, रोज़गार, उत्पादन एवं प्रबंध, आगतों एवं निर्गतों के प्रवाह इत्यादि की दृष्टि से भिन्न प्रकार की होती है। ये कुटीर उद्योगों से भी इन आधारों पर भिन्न होती है–उत्पादन में यंत्रीकरण की मात्रा, मजदूरी पर लगाये गए श्रमिकों एवं परिवारिक श्रमिकों के अनुपात, बाजार का भौगोलिक आकार, विनियोजित पूंजी इत्यादि।

लघु उद्योगों का वर्गीकरण तीन प्रकार किया है–(1) सुक्ष्म उद्योग (2) लघु उद्योग (3) मध्यम उद्योग

सुक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योग देश की संपूर्ण औद्योगिक अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यह अनुमान किया जाता है कि मूल्य के अर्थ में यह क्षेत्र निर्माण की दृष्टि से 39 प्रतिशत एवं भारत के कुल निर्यात के 33 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार है। इस क्षेत्र का लाभ यह है कि इसकी रोज़गार क्षमता न्यूनतम पूंजी लागत पर है। 31 मार्च 2007 की स्थिति के

अनुसार यह क्षेत्र 12.84 मिलियन माइक्रों और लघु उपक्रमों के जरिये अनुमानत 31.2 मिलियन व्यक्तियों को रोज़गार देता है। इस क्षेत्र में मजूदरों की तीव्रता वृहद् उद्योगों की तुलना में करीब 4 गुना ज्यादा अनुमानित की गई है। लघु उद्योगों की आवश्यकता देश की परंपरागत प्रतिभा व कला की रक्षा हेतु भी आवश्यक है।

10.1 अति लघु, लघु एवं मध्यम उद्यम

भारत सरकार ने अति लघु, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 अधिनियमित किया है जिसके अनुसार अति लघु, लघु एवं मध्यम उद्यमों की परिभाषा निम्नवत है:–
किसी वस्तु के निर्माण अथवा उत्पादन, प्रसंस्करण अथवा परिक्षण करने वाले उद्यम निम्न के अनुसारः
(1) अति लघु उद्यम वह होता है, जिसमें संयंत्र एवं मशीनरी पर निवेश रू 25 लाख तक होता है।
(2) लघु उद्यम वह है, जिसमें संयंत्र एवं मशीनरी पर निवेश रू 25 लाख से अधिक किंतु 5 करोड़ से अधिक नहीं होता है तथा
(3) मध्यम उद्यम वह है, जिसमें संयंत्र एवं मशीनरी पर व्यय 5 करोड़ से अधिक, किंतु 10 करोड़ से अधिक नहीं होता
उद्यम ही सफलता की कुंजी है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति एवं विकास में लघु एवं कुटीर उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ऐसे अविकसित क्षेत्रों मे जहां औद्योगिकरण अब तक नहीं हो पाया है, लघु, कुटीर एवं घरेलू उद्योग स्थापित करके पूंजी तथा विकास में वृद्धि की जा सकती है विकासशील देशों के लिए लघु तथा कुटीर उद्योग लाभकारी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इनकी स्थापना कम पूंजी द्वारा की जा सकती है तथा इनके लिए उच्च प्रौद्योगिक शिल्प की आवश्यकता भी नहीं होती। हमारे देश के कुल निर्यात का एक बड़ा भाग लघु उद्योगों से ही प्राप्त होता है। ऐसे में लघु उद्योग की स्थापना करना लाभकारी सिद्ध होगा।

टूल बाक्स – 01
लघु उद्योग
• सुक्ष्म उद्योग • लघु उद्योग • मध्यम उद्योग

लघु उद्योग, स्वरोज़गार व प्रबंध क्षेत्रों में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। लघु, सुक्ष्म एवं मध्यम उद्योग वे उद्योग हैं, जिनमें काम करने वालों की संख्या एक सीमा से कम होती है तथा उनका वार्षिक उत्पादन भी एक सीमा के अंदर रहता है। किसी भी देश के विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

परिभाषा
एशिया एवं सुदूर पूर्व के आर्थिक आयोग द्वारा कुटीर उद्योगों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

कुटीर उद्योग वे उद्योग हैं, जिनका एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप से संचालन किया जाता है।

भारत के द्वितीय योजना द्वारा इसी परिभाषा को मान्यता प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त प्रो. काले ने कुटीर उद्योगों को परिभाषित करते हुए कहा है–
प्रकार

कुटीर उद्योगों को निम्नलिखित वर्गों मे रखा जाता है
(1) ग्रामीण कुटीर उद्योग
(2) नगरीय कुटीर उद्योग

टूल बाक्स – 02
कुटीर उद्योग वह उद्योग है, जिनका एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप से संचालन किया जाता है।

कुटीर व घरेलू उद्योग परियोजनाएं नए उद्यमी व संभावित को उद्योग–व्यवसाय की स्थापना व संवर्द्धन की दिशा में प्रेरित करती है, जिससे वे देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान बढ़ा सके। इस पुस्तक का उद्देश्य प्रशासन द्वारा बनाई गई उद्योग प्रोत्साहन योजनाओं की जानकारी उद्यमियों तक पहुंचाना है, ताकि वे उपलब्ध/सुविधाओं का अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

10.2 लघु व कुटीर उद्योगों की आवश्कताएं

बेरोज़गारी है अतः श्रम आधारित उद्योग का चयन किया गया है। उससे बेरोज़गारी का समाधान होगा।
वे अपनी रोजमर्रा की आवश्यकता के लिए आत्मनिर्भर बने, इससे खपत की समस्या का भी समाधान होगा।
उद्योग प्रदूषण रहित होगे जिससे प्रकृति संकलन बना रहे। ऐसे उद्योग का चयन किया जाए जिनको सहज, सरल व स्वभाविक तरीके से किया जा सकेगा।
जो वे जानते है उससे प्रारंभ होंगे।
जो उनके पास साधन है, उससे निर्माण किया जाएगा।
ऐसे उत्पाद चयन होंगे जो ग्रामीण क्षेत्र के स्थानीय संसाधनों पर आधारित हो।
उत्पाद ऐसा होगा जिसकी बिक्रि की दिक्कत ना हो जिसकी अधिकतर खपत आसानी से अपने तथा आसपास के गावों में हो जाए।
शहर में बिक्रि हेतु जाना भी पड़े तो वहा स्पर्धा ना हो।
उद्योग ऐसे होंगे जितनी पूंजी व्यक्ति या समूह के पास है उसी से वह प्रारंभ हो जाए।
किसी के अनुदान अथवा कर्ज का मूह न ताकना पड़े।
एक बार उद्योग अपने प्रयासों से ठीक चलने लगे उसे गति देने के लिए बाहरी सहायता ऋण, अनुदान आदि अवश्य लिया जा सकते है।
ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता दी जाएगी जो कृषि के सहायक धंधे के रूप में हो अथवा कृषि से प्राप्त उत्पाद पर आधारित हो।

टूल बाक्स – 03
लघु व कुटीर उद्योगों की आवश्यकताएं • बेरोज़गारी • आत्मनिर्भरता • प्रदूषण रहित • जानकारी • साधन • संसाधन

10.3 लघु उद्योग व कुटीर उद्योग का महत्व

लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग का भारतीय में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन काल से ही भारत के लघु व कुटीर उद्योगों में उतम गुणवता वाली वस्तुओं का उत्पादन होता रहा है। यद्यपि ब्रिटिश शासन में अन्य उद्योगों के समान इस क्षेत्र का भी भारी ह्रास हुआ है। सरकार ने समय समय पर लघु तथा कुटीर उद्योगों की परिभाषा की है। लघु उद्योग वे उद्योग हैं जो छोटे पैमाने पर किए जाते हैं तथा सामान्य रूप से मजदूरों व श्रमिकों की सहायता से मुख्य धंधे के रूप में चलाए जाते हैं। वे उद्योग जिनमें 10 से 50 लोग मजदूरी के बदले में काम करते हो, लघु उद्योग के अंतर्गत आते है। लघु उद्योग एक औद्योगिक उपक्रम हैं, जिसमें निवेश संयंत्र एवं मशीनरी में नियत परिसंपत्तित होती है। यह निवेश सीमा सरकार द्वारा समय–समय पर बदलती रहती है। लघु उद्योग में माल बाहर से मंगाया जाता है और तकनीकी कुशलता को भी बाहर से प्राप्त किया जा सकता है।

लघु उद्योग इकाई ऐसा औद्योगिक उपक्रम है जहां संयंत्र एवं मशीनरी में निवेश 1 करोड़ रू0 से अधिक न हो, किंतु कुछ मद जैसे कि हौजरी, हस्त औजार दवाइयों व औषधि, लेखन सामग्री मदें और खेलकूद का सामान आदि में निवेश की सीमा 5 करोड़ तक थी। लघु उद्योग श्रेणी को नया नाम लघु उद्यम दिया गया है।

मझौले उद्योग ऐसी इकाई जहां संयंत्र और मशीनरी में निवेश लघु उद्योग की सीमा से अधिक किंतु 10 करोड़ रू तक हो, मझौला उद्यम कहा जाता है।

संशोधित परिभाषा 2 अक्टूबर, 2006 से प्रभावी छोटे, लघु एवं मझौले उपक्रम विकास अधिनियम 2006 उद्यमों के लिए तीन स्तरों अर्थात् छोटे, लघु एवं मझौले के एकीकरण के लिए अपनी तरह की पहली कानूनी रूपरेखा विहित करता है। संशोधित परिभाषा के अंतर्गत उद्यमों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जैसेः–

- विनिर्माण
- सेवाएं

इन दोनों श्रेणियों को इसके अतिरिक्त संयंत्र एवं मशीनों में निवेश अथवा उपस्करों के आधार पर छोटे, लघु एवं मझौले उद्यमों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

विनिर्माण उद्यम वस्तुओं का उत्पादन, संसाधन अथवा संरक्षण करने वाले उद्यम विनिर्माण उद्यम के अंतर्गत आते हैं जो निम्नलिखित हैंः–

छोटे उद्यमः– छोटे उद्यम ऐसे उद्यम है जहां संयंत्र व मशीनरी में मूल निवेश 25 लाख रू. से अधिक न हो।

लघु उद्योगः– लघु उद्योग ऐसे उद्यम है जहां संयंत्र व मशीनरी में मूल निवेश 25 लाख रू. से अधिक हो किंतु 5 करोड़ रू0 से अधिक न हो।

मझौला उद्यमः–मझौले उद्यम ऐसे उद्यम है जहां संयंत्र व मशीनरी में मूल निवेश 5 करोड़ रू0 से अधिक किंतु 10 करोड़ रू0 से अधिक न हों।

सेवा उद्यम सेवाएं प्रदान करने वाले अथवा सेवा करने वाले उद्यम जहां उपकरणों में निवेश निम्नानुसार होः–

छोटे उद्योगः–जहां संयंत्र व मशीनरी में मूल निवेश 10 लाख रू. से अधिक न हो।

लघु उद्योगः–जहां संयंत्र व मशीनरी में मूल निवेश 10 लाख रू. से अधिक हो किंतु 2 करोड़ रू. से अधिक न हो।

मझौला उद्यमः–ऐसा उद्यम है जहां संयंत्र एवं मशीनरी में मूल निवेश 2 करोड़ से अधिक हो, किंतु 5 करोड़ रू. से अधिक न हो।

10.4 लघु उद्योगों के लिए पंजीकरण

पंजीकरण लघु उद्योग क्षेत्र में उद्यमी को देश के किसी भी भाग में यूनिट की स्थापना करने के लिए केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार से लाइसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। लघु यूनिटों का पंजीकरण भी अनिवार्य नहीं है। परंतु इसका राज्य निदेशालय या उद्योग आयुक्त या डी आइ सी में पंजीकरण यूनिट को विभिन्न प्रकार से वित्तीय सहायता राज्य वित्तीय निगम से और अन्य वाणिज्यिक बैंकों से मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम से किराया खरीद आधार पर मशीनरी आदि। लघु उद्योगों के संवर्धन के लिए विशेष योजनाओं जैसे ऋण गारंटी योजना, पूंजी आर्थिक सहायता, चुनिंदा मदों पर कम सीमा शुल्क, आई एस ओ 9000 प्रमाणपत्र प्रतिपूर्ति एंव राज्य सरकार द्वारा दिए जाने वाले अनेकानेक दूसरे लाभों का लाभ प्राप्त करने के लिए पंजीकरण भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	लघु उद्योग व कुटीर उद्योग क्या है?
प्र.2	लघु उद्योग की परिभाषा बताएं ?
प्र.3	लघु उद्योगों की शुरूआत कैसे हुई?
प्र.4	लघु उद्योग के लिए कितनी पूंजी की आवश्यकता होती है?

देश में लघु उद्योगों की वृद्धि और विकास के लिए नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करता है। लघु उद्योगों का संवर्धन करने के लिए मंत्रालय नीतियां बनाता है और उन्हें क्रियाविन्त करता है व उनकी प्रतिस्पर्धा बढ़ाता है। इसकी सहायता विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम करते हैं, जैसेः–

- लघु उद्योग विकास संगठन अपनी नीति का निर्माण करने और कार्यान्वयन का पर्यवेक्षण करने, कार्यक्रम, परियोजना, योजनाएं बनाने में सरकार को सहायता करने वाले शीर्ष निकाय है।
- राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड का स्थापना सरकार द्वारा देश में लघु उद्योगों का संवर्धन, सहायता और पोषण करने की दृष्टि से की गई थी, जिसका संकेद्रण उनके कार्यो के वाणिज्यिक पहलुओं पर था।
- मंत्रालय ने तीन राष्ट्रीय उद्यम विकास संस्थानों की स्थापना की है जो प्रशिक्षण केंद्र, उपक्रम अनुसंधान और लघु उद्योग के क्षेत्र में उद्यम विकास के लिए प्रशिक्षण और परामर्श सेवाओं में लगी हुई हैं, ये इस प्रकार हैः–(1) हैदराबाद में राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान (2) नोएडा में राष्ट्रीय एवं लघु व्यवसाय विकास संस्थान, (3) गुवाहाटी में भारतीय उद्यम संस्थान असंगठित क्षेत्र में राष्ट्रीय उद्यम आयोग का गठन।

10.5 लघु उद्योग की स्थापना

एक लघु व्यवसाय की इकाई कोई भी व्यक्ति स्थापित कर सकता है। वह पुराना उद्यमी हो सकता है अथवा नवीन, उसे व्यवसाय चलाने का अनुभव हो सकता है और नहीं भी, यह शिक्षित भी हो सकता है अथवा अशिक्षित भी, उसकी पृष्ठभूमि ग्रामीण हो सकती अथवा शहरी।

वित का प्रबंध

उद्यमी को विश्लेषण कर यह ज्ञात करना होगा कि व्यवसाय में कितन पैसे की आवश्यकता होगी और कितने समय के लिए होगी। मशीन, भवन, कच्चा माल, आदि खरीदने तथा श्रमिकों की मजदूरी आदि चुकाने के लिए उसे धन की आवश्यकता पड़ती है। मशीनरी, भवन, उपकरण आदि क्रय करने के लिए खर्च किया धन स्थायी पूंजी कहलाती है। दूसरी ओर,

कच्चा माल क्रय करने तथा मजदूरी तथा वेतन, किराया, टेलीफोन और बिजली के बिल का भुगतान करने के लिए खर्च किया धन, कार्यशील पंजी कहलाती है। एक उद्यमी को दोनों ही प्रकार की पूंजी जुटानी होती है। यह धन अपने घर से पूरा किया जा सकता है अथवा बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर। मित्रों तथा संबंधियों से भी धन उधार लिया जा सकता है।

व्यवसाय का चुनाव

व्यवसाय करने की प्रक्रिया तब से प्रारंभ हो जाती है जब उद्यमी सोचना शुरू कर देता है कि वह किस चीज का व्यवसाय करें। वह बाजार की मांग को देखते हुए व्यवसायिक अवसरों पर सोच सकता है। वह विद्यमान वस्तु अथवा उत्पाद के लिए निर्णय ले सकता है अथवा किसी नये उत्पाद पर विचार कर सकता है। किंतु कोई भी कदम उठाने से पहले उसे व्यवसाय का लाभ, शक्ति अथवा लाभप्रदता और पूंजी निवेश पर गंभीरता से विचार करना होगा। लाभप्रदता तथा जोखिम की स्थिति पर विचार कर लेने के पश्चात् ही व्यवसाय की कौन सी दिशा ठीक रहेगी इसके बारे में उद्यमी को निर्णय लेना चाहिए।

संगठन के स्वरूप का चयन

संगठन के विभिन्न स्वरूपों के विषय में आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब आपको अपनी आवश्यकता के अनुसार सर्वश्रेष्ठ रूप से चयन करना होगा। सामान्यतः एक लघु उद्यम को चुनना ठीक होगा, जो एकल व्यवसायी अथवा साझेदारी का रूप ले सकती है।

स्थिति

व्यवसाय कहां शुरू किया जाए?—इस स्थान के चुनाव में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। उद्यमी अपने स्थान पर अथवा किराये के स्थान पर व्यवसाय शुरू कर सकता है। वह स्थान किसी बाजार अथवा व्यापारिक कॉमप्लेक्स अथवा किसी औद्योगिक भूमि मे हो सकता है। स्थान विषयक निर्णय लेते समय उद्यमी को बहुत से कारकों, जैसे— बाजार की निकटता, श्रम की उपलब्धता, यातायात की सुविधा, बैंकिग तथा संवहन की सुविधाएं आदि पर विचार कर लेना चाहिए। कारखाने की स्थापना ऐसे स्थान पर करनी चाहिए, जहां कच्चे माल की प्राप्ति का स्त्रोत हो और वह स्थान रेल सड़क यातायात की सुविधा से भी जुडा हुआ हो। फुटकर व्यवसाय एक मोहल्ले अथवा बाजार में शुरू किया जाना चाहिए।

श्रम की उपलब्धता

एक उद्यमी अकेला ही व्यवसाय को नहीं चला सकता। उसे अपनी सहायता के लिए कुछ व्यक्तियों को नौकरी पर रखना होगा। विशेष रूप से विनिर्माण कार्य के लिए उसे प्रशिक्षित तथा अर्ध प्रशिक्षित कारीगरों को रखना होगा। कार्य शुरू करने से पूर्व उद्यमी को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि क्या उसे किए जाने वाले कार्यों के लिए उचित प्रकार के कर्मचारी मिल पायेंगे?

टूल बाक्स — 04
लघु उद्योग की स्थापना
• वित का प्रबंध • व्यवसाय का चुनाव • संगठन के स्वरूप का चयन • स्थिति • श्रम की उपलब्धता

10.6 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक या सिडबी

भारत की स्वतंत्र वितीय संस्था है जो सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों की वृद्धि एवं विकास के लक्ष्य से स्थापित किया गया है। यह लघु उद्योग क्षेत्र के संवर्द्धन, वित्तपोषण और विकास तथा इसी तरह की गतिविधियों में लगी अन्य संस्थानों के कार्यों में समन्वयन के लिए प्रमुख विकास वित्तीय संस्था है।

सिडबी की स्थापना 2 अप्रैल 1990 को हुई। इसकी स्थापना संबंधी अधिकार पत्र भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अधिनियम, 1989 में सिडबी की परिकल्पना लघु उद्योग क्षेत्र के उद्योगों के संवर्द्धन, वितपोषण और विकास और लघु उद्योग क्षेत्र के उद्योगों को संवर्द्धन व वितपोषण अथवा विकास में लगी संस्थाओं के कार्यों में समन्वय करने और इसके लिए प्रासंगिक मामलों के लिए प्रमुख वित्तीय संस्था के रूप में की गई है।

दि बैंकर, लंदन की हालिया रैंकिग में सिडबी ने विश्व के 30 सर्वोच्य विकास बैंकों में अपनी जगह बनाए रखी। दि बैंकर, लंदन के मई 2001 अंक के अनुसार पूंजी व आस्तियों की दृष्टि से सिडबी का स्थान 25वां था।

सिडबी का दायरा

सिडबी के कारोबार के दायरे में लघु उद्योग इकाइयां समाहित हैं, जो उत्पादन, रोज़गार और निर्यात की दृष्टि से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय योगदान करती हैं। लघ उद्योग ऐसी औद्योगिक इकाइयां हैं, जिनमें प्लांट व मशीनरी में निवेश 1 करोड़ रूपये से अधिक न हो। ऐसी इकाइयों की संख्या लगभग 31 लाख है, जिनमें 1.72 करोड़ व्यक्तियों को रोज़गार प्राप्त है और भारत के निर्यात में उनका हिस्सा 36 प्रतिशत तथा औद्योगिक विनिर्माण में 40 प्रतिशत है। साथ ही सिडबी की सहायता परिवहन, स्वास्थ्य सेवाओं और पर्यटन क्षेत्र के साथ–साथ ऐसे प्रोफेशनल और स्व–नियोजित को भी उपलब्ध है, जो लघु आकार के प्रोफेशनल उद्यम स्थापित करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	एस आई डी ओ का अर्थ बताएं?
प्र.6	तीन राष्ट्रीय उद्यम विकास संस्थान कौन–2 से है?
प्र.7	लघु उद्योगों के लिए वित्त का प्रबंध कैसे होता है?

10.7 योजनाएं

राष्ट्रीय उद्यमशीलता और लघु कारोबार विकास संस्थान

सूक्ष्म लघु और मझौले उद्यम मंत्रालय के अंतर्गत एक प्रमुख संस्थान है, जो उद्यमशीलता और विकास विशेष रूप से लघु उद्योग और लघु कारोबार में उद्यमशीलता और विकास के क्षेत्र में लगे विभिन्न संस्थानों और एंजेंसियों में तालमेल प्रशिक्षण और निरीक्षण के क्षेत्र में कार्यरत है।

अधिकतम रोज़गार के लिए कौशलों की पहचान

बाजार की जरूरतों के आधार पर कौशलों की पहचान की गई है, ताकि ज्यादा–से–ज्यादा लोगों को रोज़गार मिल सके। संस्थान को आशा है कि भागीदारों मे कम से कम 25 प्रतिशत को इसी वित वर्ष के अंदर रोज़गार मिल जाएगा। जिन कौशलों की पहचान की गई है वे है होटलों मे कमरों का रख–रखाव और अतिथियों का सत्कार, खुदरा व्यापर, प्रबंधन सूचना प्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी से चलने वाली सेवाएं, हल्की इंजीनियरी, फैशन डिजाइन, कृत्रिम जवाहरात और श्रृंगार तथा सौंदर्य प्रसाधिका।

विचारों के आदान–प्रदान के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय फोरम

एन आई ई एस बी यू डी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भागीदारों के लिए 1983 से प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहा है। इसके अलावा ये संस्थान अनुसंधान पाठयक्रम चलाता है और नए तथा सूक्ष्म, लघु और मझौले उद्योगों के क्षेत्र में वर्तमान और नए उद्यमियों का मार्गदर्शन भी करता है और उन्हें परामर्श सेवाएं भी उपलब्ध कराता है। एन आई ई एस बी यू डी श्रम और रोज़गार, ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय और अधिकारिता जैसे मंत्रालयों के साथ मिलकर काम कर रहा है और उन्हें उनके उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायता दे रहा है।

उद्यमशीलता को बढ़ावा

एन आई ई एस बी यू डी ने केंद्र और राज्य सरकारों और उनकी एजेंसियों को उद्यमशीलता को बढ़ावा देने में सहायता की है। इस संस्थान ने एशिया और अफ्रीका के विभिन्न देशों को समर्थन और मार्गदर्शन भी प्रदान किया है।

एन आई ई एस बी यू डी ने हाल ही में उद्यमशीलता के महत्व को छात्रों और शिक्षकों में दर्शाने के लिए विभिन्न इंजीनियरिंग कॉलेजों, प्रबंधन संस्थानों और अन्य संस्थानों में 100 से ज्यादा वर्कशॉप आयोजित की। हजारों छात्रों और सैकडों शिक्षकों ने यह महसूस किया कि देश की असली जरूरत और कर्मचारी पैदा करना नहीं है, बल्कि और उद्यमी पैदा करना है, जो अनेक लोगों को रोज़गार दे सकेंगे।

2010–11 तक इस संस्थान ने 75000 लोगों को प्रशिक्षण प्रदान किया है, जिनमें 2100 सबा सौ देशों के थे। ये संस्थान 2011–2012 में 25 देशों के 200 लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए 8 अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करेगा। संस्थान रोज़गार का कौशल बढ़ाने के लिए 40000 लोगों को प्रशिक्षण देगा और 10000 लोगों को स्व–रोज़गार शुरू करने के लिए प्रेरित करने का प्रयास करेगा।

प्रधानमंत्री रोज़गार सृजन कार्यक्रम

प्रधानमंत्री रोज़गार सृजन कार्यक्रम भारत सरकार की सब्सिडी युक्त कार्यक्रम है। यह दो योजनाओं प्रधानमंत्री रोज़गार योजना और ग्रामीण रोज़गार सृजन कार्यक्रम को मिलाकर बनाया गया है। इस योजना का उद्‌घाटन 15 अगस्त 2008 को किया गया।

उद्देश्य

- नए स्वरोजगार उद्यम/परियोजनाएं/लघु उद्यम की स्थापना के जरिए देश के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों दोनों में ही रोज़गार के अवसर पैदा करना।
- बडे पैमाने पर अवसाद ग्रस्त पारंपरिक दस्तकारों/ग्रामीणों और शहरी बेरोजगार युवाओं को साथ लाना और जितना संभव हो सके, उनके लिए उसी स्थान पर स्वरोजगार का अवसर उपलब्ध कराना।
- देश में बड़े पैमाने पर पारंपरिक और संभावित दस्तकारों और ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगार युवाओं को निरंतर और सतत रोजगार उपलब्ध कराना, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की तरफ जाने से रोका जा सके।
- दस्तकारों की रोजना आमदनी क्षमता और ग्रामीण व शहरी रोजगार दर बढ़ाने में योगदान देना।

सब्सिडी योजनाएं

औद्योगिक क्षेत्र, खासकर सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने विभिन्न योजनाएं आरंभ की है जिनके अंतर्गत पात्र उद्यमों को सब्सिडी प्रदान की जाती है। ऐसी कुछ सब्सिडी योजनाएं विशिष्ट रूप से कतिपय औद्योगिक क्षेत्रों के लिए है, जबकि उनमें से कुछ जैसे कि सीएलसीएएसएस, अनेक प्रकार के उद्योगों के लिए उपलब्ध हैं।

सारांश

लघु उद्योग वे होते हैं, जो मध्यम स्तर के विनियोग की सहायता से उत्पादन प्रारंभ करती है। इन इकाइयों में श्रम शक्ति की मात्रा भी कम होती है और सापेक्षिक रूप से वस्तुओं एवं सेवाओं का कम मात्रा में उत्पादन किया जाता है। ये बड़े पैमाने के उद्योगों से पूंजी की मात्रा, रोज़गार, उत्पादन एवं प्रबंध, आगतों एवं निर्गतों के प्रवाह इत्यादि की दृष्टि से भिन्न प्रकार की होती है। ये कुटीर उद्योगों से भी इन आधारों पर भिन्न होती है–उत्पादन में यंत्रीकरण की मात्रा, मजदूरी पर लगाये गए श्रमिकों एवं परिवारिक श्रमिकों के अनुपात, बाजार का भौगोलिक आकार, विनियोजित पूंजी इत्यादि। लघु उद्योग व कुटीर उद्योग परियोजनाएं उद्यमियों को उद्योग व व्यवसाय की स्थापना व विकास की दिशा में प्रेरित करने के लिए है, जिससे वे देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान बढ़ा सके। सरकार द्वारा प्रदान की गई सहायता, अनुदान व योजनाएं काफी सीमा तक सफल रही है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 लघु उद्योग का अर्थ व वर्गीकरण किस प्रकार करेंगे।
प्र.2 कुटीर उद्योग की एक परिभाषा व उसके प्रकार बताएं।
प्र.3 लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना कब व कैसे हुई।
प्र.4 सिडबी के बारे मे बताएं।
प्र.5 लघु उद्योग के विस्तार की कुछ योजनाओं के नाम बताएं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 लघु व कुटीर उद्योग की परिभाषा व उसके इतिहास के बारे में विस्तारपूर्वक बताएं।
प्र.7 लघु उद्योगों के प्रकार और लघु उद्योगों की आवश्यकताएं बताएं।
प्र.8 वर्तमान समय में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को विस्तारपूर्वक बताए।
प्र.9 सिडबी पर एक विस्तार नोट लिखें।
प्र.10 सरकार द्वारा लघु उद्योगों के विकास की विभिन्न योजनाओं के बारे में विस्तार से बताएं।

खंड–4
इकाई–11 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण–एक परिचय

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

11.0 प्रस्तावना

11.1 अंतरराष्ट्रीय वातावरण का अर्थ

11.2 अंतरराष्ट्रीय वातावरण के अध्ययन की आवश्यकता

11.3 अंतरराष्ट्रीय वातावरण के घटक या प्रकार

11.4 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण

11.5 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के विभिन्न पक्ष

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण
- अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के विभिन्न पक्ष
- विदेशी निवेश
- अंतरराष्ट्रीय संगठन
- विदेशी व्यापार
- अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौते
- बहु–राष्ट्रीय निगम
- नवीन अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था
- विदेशी विनिमय प्रणाली

11.0 प्रस्तावना

आधुनिक वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के युग में कोई भी अर्थव्यवस्था अकेले में अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकती तथा न ही किसी प्रकार से अपने को शेष विश्व से अलग रख सकती है। अंतरराष्ट्रीय संबंध प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए विकास सीमाएं निर्धारित करते हैं तथा प्रगति के लिए मुख्य चालक के रूप में कार्य करते हैं। भारत तथा शेष विश्व में आर्थिक वातावरण, आर्थिक संबंधों, विदेशी व्यापार, विदेशी निवेश, तकनीकी हस्तांतरण, संयुक्त साहसों आदि द्वारा प्रतिबिंबित होता है। ऐसा वातावरण ही देश में वैश्वीक प्रतियोगिता सूचकांकों को निर्धारित करता है तथा देश का विश्व में विकास स्तर निश्चित करता है। अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण तेजी से बदल रहा है। सूचना तकनीक ने विश्व को संकुचित बना दिया है। आज के वैश्वीकरण के युग में कोई भी अर्थव्यवस्था, अंतरराष्ट्रीय वातावरण के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। आजकल विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक निर्भरता तथा आर्थिक सहयोग बढ़ रहा है। आज हर प्रकार के व्यवसाय को चाहे वह संसार के किसी भी स्थान पर क्यों न हों, उसे

बदलते अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को ध्यान में रखना पडता है। इस प्रकार भारतीय आर्थिक वातावरण अंतरराष्ट्रीय वातावरण से प्रभावित हो रहा है। अंतरराष्ट्रीय वातावरण, राजनितिक वातावरण, कानूनी वातावरण, सामाजिक वातावरण, सांस्कृतिक वातावरण, तकनिकी वातावरण व अन्य तत्त्व शामिल है जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार व वित्त को प्रभावित करते हैं। इन सभी तत्वों में से आर्थिक तत्व सबसे महत्वपूर्ण है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण विदेशी निवेश, अंतरराष्ट्रीय संगठनों, अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौतों, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, आर्थिक स्थितियों, आर्थिक नीतियों आदि से संबधित है।

11.1 अंतरराष्ट्रीय वातावरण का अर्थ

आयात निर्यात में लगे व्यवयसायों के लिए अंतरराष्ट्रीय वातावरण बहुत महत्वपूर्ण है। विदेशी बाजारों में मंदी या विदेशी बाजारों में संरक्षण से निर्यातों पर बुरा प्रभाव पडता है। आयातों के उदारीकरण से कुछ उद्योगों को लाभ तथा कुछ को हानि हो सकती है। उदाहरण के तौर पर इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग में बहुराष्ट्रीय कंपनियों; एल. जी., सैमसंग, सोनी, आदि के आने से भारतीय घरेलू इकाइयों; जैसे– विडियोकोन पर बुरा प्रभाव पडा है। बहुत से अन्य तत्व किसी देश के व्यापार व विकास प्रक्रिया को प्रभावित करते है; जैसे– विश्व व्यापार संगठन समझौते, अंतरराष्ट्रीय घोषणाएं, अंतरराष्ट्रीय राजनितिक तत्व, राजनितिक तनाव, वैश्विक वित्तीय संकट, युद्ध आदि। उदाहरण के तौर पर, वैश्विक मंदी व यूरोक्षेत्रीय ऋण संकट ने विभिन्न देशों के उद्योगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। इसी तरह विश्व व्यापार केंद्र पर हमला, यू एस –इराक युद्व, आई.एस. व बढते अंतरराष्ट्रीय आंतकवाद आदि ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार और अंतरराष्ट्रीय शांति को प्रभावित किया है। संचार सुविधाओं में तेज़ी से विकास ; जैसे–इंटरनेट, दूरसंचार के उपकरण इत्यादि ने भी व्यवसाय को प्रभावित किया है। विभिन्न देशों में होने वाले फैशन शो,

टूल बाक्स–1
अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय परिवेश किसी व्यवसाय पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव करने वाले ऐसे घटक जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय हैं।

ब्यूटी कॉन्टेस्ट, अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रम, अंतरराष्ट्रीय खेल आदि से एक देश की संस्कृति का प्रभाव दूसरे देशो में जाने लगा है। इससे कुछ व्यवसाय; जैसे–फैशन डिजाइनिंग व्यवसाय, ड्रैस डिजाइनिंग व्यवसाय पर प्रभाव पडा है। यातायात और टेक्नोलॉजी विकास के कारण विश्व छोटा होता नज़र आ रहा है। आज के इस प्रतियोगी युग में विदेशी व्यापार से जुड़े व्यवसायी के लिए विदेशी भाषा सीखना व विदेशी मुद्रा की जानकारी आवश्यक हो गयी है।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी पूंजी के प्रवाह, विदेशी तकनीक, विदेशी उद्यम, विदेशी वस्तुओं व सेवाओं, विदेशी मीडिया आदि से जुड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का योगदान न केवल विकासशील अपितु विकसित देशों में भी बढता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां किस कुशलता से विभिन्न देशों के बदलते वातावरण के साथ अपने आप को ढालती है। उदाहरण के तौर पर आई.बी.एम., कोका–कोला भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में काम कर रही हैं। इन्फोसिस व विप्रो अमेरिका में तथा बिरला उद्योग अफ्रीका में कार्यरत हैं। यदि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां अंतरराष्ट्रीय वातावरण का विश्लेषण नहीं करतीं, तो इन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। एक बहुराष्ट्रीय कंपनी निम्नलिखित विभिन्न प्रकार के वातावरणों में कार्य करती है–

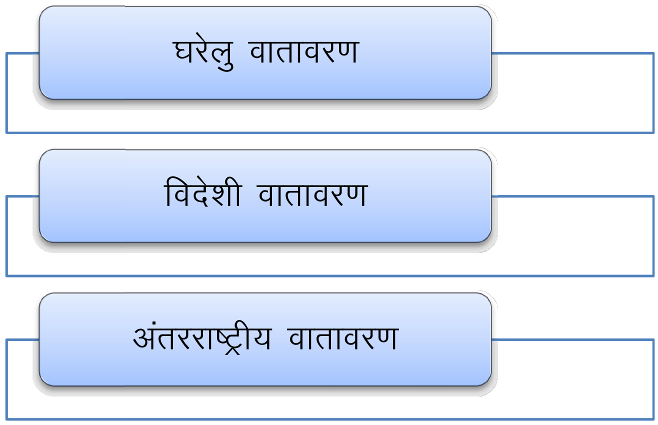

(i) घरेलु वातावरण :

इसका अभिप्राय उस देश के आर्थिक, राजनितिक, कानूनी, तकनीकी, व सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण से है, जिस देश में MNC कार्य करती है। मुख्य तौर पर MNC विदेशी विनियोग के प्रति सरकार की निति, उपभोक्ता रूचि व प्राथमिकताए घरेलु–प्रतियोगिता, कानूनी–व्यवस्था व MNC के प्रति लोगों के दृष्टिकोण से प्रभावित है।

(ii) विदेशी वातावरण :

इसका अभिप्राय उस देश के वातावरण से है, जहां MNC का आधार है इसमें आधारभूत देश के राजनितिक, आर्थिक, कानूनी, तकनीकी वातावरण शामिल है।

(iii) अंतरराष्ट्रीय वातावरण :

यह वातावरण घरेलू वातावरण व विदेशी वातावरण के पारस्परिक संबंध से बनता है। आज के वैश्वीकरण के युग में सभी देशों के अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हो रही है चाहे, वे विकसित हैं, या अल्पविकसित। अंतरराष्ट्रीय व्यापार का लाभ सभी देशों को मिलना चाहिये, इस उद्देश्य के लिये तथा विदेशी व्यापार को नियमित करने के लिए बहुत से अंतरराष्ट्रीय संगठन बनाए गए है; जैसे– आई.एम.एफ., वर्ल्ड बैंक, गैट, डब्लयु.टी.ओ. आदि। ये संगठन अंतरराष्ट्रीय व्यापार के नियमन व विकास के लिये समय–समय पर निर्देश जारी करते रहते हैं। इस तरह के अंतरराष्ट्रीय संगठन, अंतरराष्ट्रीय वातावरण के मुख्य घटक है।

पहले, व्यावसायिक इकाई का क्षेत्र राष्ट्रीय स्तर तक सीमित होता था, लेकिन अब इनका स्तर अंतरराष्ट्रीय हो सकता है। एक ऐसी व्यावसायिक इकाई जिसने अपना कार्य विभिन्न देशों में फैला रखा है, उसे प्रत्येक देश के घरेलू वातावरण का अध्ययन करना पड़ता है। वातावरण का ध्यानपूर्वक विश्लेषण ही इकाई की सफलता का कारण बनता है। इन इकाईयों को विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये गये नियमों को भी मानना पड़ता है। उदाहरण के लिए, कोका कोला कंपनी 150 देशों में कार्यरत है। इसे सफलता और विकास के लिए इन सभी देशों के वातावरण का विश्लेषण करना पड़ता है।

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण, एक विस्तृत धारणा है कि जिसमें शेष विश्व से संबंधित निम्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है :–

- विदेशी निवेश
- अंतरराष्ट्रीय संगठन
- विदेशी व्यापार संबंधी नीति

- अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौते
- बहुराष्ट्रीय निगम
- नवीन अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था
- विदेशी विनिमय प्रणाली
- भारत का विश्व व्यापार में भाग

11.2 अंतरराष्ट्रीय वातावरण के अध्ययन की आवश्यकता

अंतरराष्ट्रीय वातावरण के सभी तत्व किसी भी इकाई के वातावरण को प्रभावित करते हैं। अंतरराष्ट्रीय व्यापार से जुड़ी व्यावसायिक इकाई की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इस बदलते हुए अंतरराष्ट्रीय वातावरण के अनुसार अपनी नीतियों को बदला जाए। अंतरराष्ट्रीय वातावरण का प्रभाव विशेषकर ऐसी इकाईयों पर अधिक पड़ता हैं जो आयात–निर्यात के क्षेत्र में लगी है। अंतरराष्ट्रीय वातावरण के अध्ययन का महत्व निम्न कारणों से स्पष्ट होता है:

(i) अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि

(ii) बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता योगदान

(iii) विदेशी निवेश में वृद्धि

(iv) विभिन्न देशों में वस्तुओं का स्वतंत्र प्रवाह, टैरिफ और गैर–टैरिफ रूकावटों में कमी

(v) तकनीक का स्वतंत्र प्रवाह

(vi) अंतरराष्ट्रीय संगठन, जैसे – IMF विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और अंकाटाड का बढता योगदान

(vii) अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों में वृद्धि

(viii) एक देश में आर्थिक, राजनितिक, कानूनी, सामाजिक–सांस्कृतिक, तकनीकी वातावरण का अन्य देशों के वातावरण पर प्रभाव

(ix) एक देश के आर्थिक संकट, व्यापार चक्रों, आंतकवाद, युद्ध आदि का अन्य देशों पर प्रभाव।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	अंतरराष्ट्रीय परिवेश का किसी भी कंपनी पर क्या असर होता है?
प्र.2	अंतरराष्ट्रीय वातावरण का क्या अर्थ है?
प्र.3	अंतरराष्ट्रीय वातावरण का ज्ञान किसी प्रबंधन की सफलता में कितना महत्वपूर्ण है?

11.3 अंतरराष्ट्रीय वातावरण के घटक या प्रकार

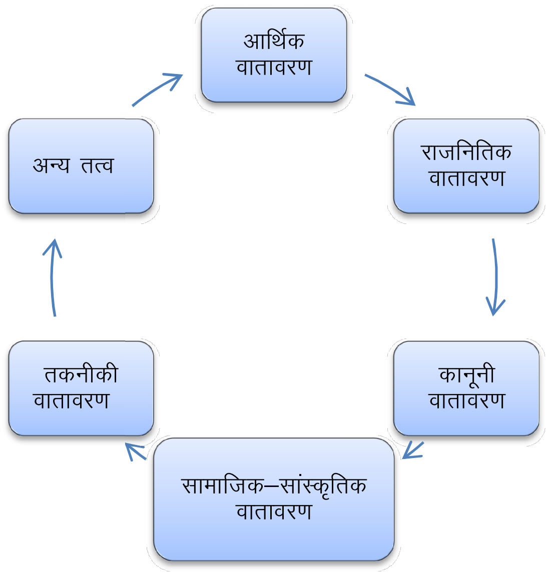

(क) आर्थिक वातावरण

अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के एक घटक के रूप में, आर्थिक वातावरण में विभिन्न आर्थिक घटकों; जैसे–आर्थिक दशाओं, आर्थिक नीतियों, आर्थिक व्यवस्था, व्यापार चक्र की अवस्था, विदेशी निवेश, अंतरराष्ट्रीय संगठन अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों आदि को शामिल किया जाता है। आर्थिक वातावरण, अंतरराष्ट्रीय वातावरण के अन्य सभी घटकों में से महत्वपूर्ण है। यह बहुत गतिशील होता है और विभिन्न देशों की सरकारी नीतियों व राजनीतिक दशाओं में आए बदलाव के साथ बदलता रहता है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लगी व्यावसायिक इकाई न केवल अपने घरेलू देश के आर्थिक वातावरण से ही प्रभावित होती है, बल्कि साथ–साथ ऐसे देश के आर्थिक वातावरण से भी प्रभावित होती है जिसके साथ यह इकाई आयात या निर्यात कर रही है। इसके अलावा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संगठन, अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए व इसका नियमन करने के लिये समय–समय पर विभिन्न नीतियां, नियम व निर्देश निर्धारित करते है। एक व्यापारिक इकाई को इन नियमों व निर्देशों की भी जानकारी होनी आवश्यक है। महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संगठन इस प्रकार है– अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड आदि। आजकल अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बढावा देने के लिये अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न व्यापारिक समझौते किये जाते है। हाल के कुछ वर्षों में लगभग सभी विकासशील देशों में विदेशी पूंजी के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ है। अर्थात अब ये देश विदेशी पूंजी को आकर्षित करने लगे हैं। आजकल विकासशील देशों की बहुत सी कंपनियां अमेरिका, इंग्लैंड, जापान जैसे देशों के पूंजी बाजारों से धन एकत्रित कर रही है। आजकल विश्व

टूल बाक्स–2
आर्थिक वातावरण
किसी कंपनी को आर्थिक स्तर पर प्रभावित करने वाले घटक जैसे–आर्थिक दशा, आर्थिक नीतियां, आर्थिक व्यवस्था आदि।

व्यापार तेजी से बढ़ रहा है, यह विभिन्न देशों में सकारात्मक आर्थिक वातावरण का सूचक है। संक्षेप में, आर्थिक वातावरण में निम्न को शामिल किया जा सकता है।

(i) घरेलु देश का आर्थिक वातावरण

(ii) जिसे देश के साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार किया जाता है, उस देश का आर्थिक वातावरण

(iii) अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाए गए नियम
(iv) अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौते
(v) विदेशी निवेश के प्रति दृष्टिकोण
(vi) व्यापार चक्र की अवस्था
(vii) विभिन्न देशों की आर्थिक नीतियां आदि।

(ख) राजनीतिक वातावरण

राजनीतिक वातावरण का व्यवसाय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के संबंध में राजनीतिक वातावरण में निम्न शामिल हैः
(1) विदेशी निवेश, कोटा, टैरिफ (सीमा शुल्क), एम.एन.सी. की कार्यप्रणाली, मुल्य नियंत्रण, उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजिकरण आदि के बारे में सरकार का राजनीतिक दृष्टिकोण
(2) देश में राजनीतिक स्थिरता।
एम.एन.सी. के संदर्भ में राजनीतिक वातावरण तीन तरह का हो सकता है

(i) उस देश का वातावरण जहां एम.एन.सी. कार्यरत हैः प्रायः अल्पविकसित देश विदेशी कंपनियों को और विदेशी पूंजी को अविश्वास की नज़र से देखते हैं। कई बार अल्पविकसित देश आरोप लगाते है कि एम.एन.सी. विदेशों में प्रर्त्यावर्तन कर रही है, आदि। परंतु अब बहुत से देशों ने विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिये बहुत से व्यापारिक प्रोत्साहन व रियायतें देनी शुरू कर दी है।

(ii) उस विदेशी देश का वातावरण जहां MNC का आधार हैः उस देश का राजनीतिक वातावरण भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रभावित करता है जहाँ MNCs का आधार है। मूल देश की सरकार का MNC के प्रति दृष्टिकोण भी MNCs को प्रभावित करता है।

(iii) अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक वातावरणः अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक वातावरण बहुत तेज़ी से बदल रहा है। इसमें होने वाले बदलाव किसी देश की आर्थिक नीतियों को भी प्रभावित करते हैं; जैसे–USSR का विभाजन, अमेरिका इराक युद्ध, विश्व व्यापार केंद्र पर हमला, मध्य पूर्वी देशों में राजनीतिक तनाव, विश्व व्यापार संगठन की बदलती नीतियों, आदि ने विभिन्न देशों के घरेलू वातावरण को प्रभावित किया है इन अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित किया है। कुछ प्रभावशाली देशों जैसें USA UK विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों की नीतियों को प्रभावित करते हैं।
संक्षेप में, विभिन्न अंतरराष्ट्रीय घटनाएं राजनीतिक वातावरण को प्रभावित करती है।

टूल बाक्स–3
राजनीतिक वातावरण
किसी देश के राजनीतिक परिवेश से व्यवसाय पर प्रभाव।

(ग) कानूनी वातावरण

अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के संदर्भ में, कानूनी वातावरण से अभिप्राय विभिन्न नियमों, नीतियों व कानूनों से है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों या विदेशी व्यापार को प्रभावित करते हैं। ये कानून उस देश की सरकार द्वारा बनाये जाते है, जहां MNC कार्यरत है या उस देश की सरकार द्वारा बनाये जा सकते है जहाँ MNC का आधार है या विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये जा सकते हैं। विदेशी व्यापार को घरेलू देश द्वारा बनाये नियमों से, दूसरे देशों द्वारा बनाये नियमों से तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाए गए नियमों से नियमित किया जाता है। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों जैसे–WTO, UNTCTAD, ASEAN, SAARC आदि द्वारा विदेशी व्यापार से संबधित विभिन्न नियम बनाए गए हैं। इसी तरह अंतरराष्ट्रीय

व्यापार से संबधित विवादों को निपटाने के लिये कुछ अन्य महत्वपूर्ण संगठन जैसे इंटरनेशनल कोर्ट, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि द्वारा नियम बनाए गए है।

समय समय पर विदेशी व्यापार को ऐच्छित दिशा में निर्देशित करने के लिये विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक समझौते किए जाते हैं। ये समझौते कुछ देशों के मध्य, पडोसी देशो के साथ, विभिन्न विकासशील देशों के बीच या विकसित देशों के बीच हो सकते हैं। इन समझौते में विदेशी व्यापार से संबधित विभिन्न नियमों पर स्वीकृति या एकरूपता तय की जाती है, अर्थात व्यापार से संबंधित ऐसी शर्तें जो सभी सदस्य देशों को मान्य हों। इन समझौतों का उद्देश्य विदेशी व्यापार को बढ़ावा व विदेशी व्यापार की रूकावटों को दूर करना है। सदस्य देशों में विदेशी व्यापार से जुड़ी सभी व्यावसयिक इकाईयों को इन नियमों का पालन करना पडता है। बहुत से विकासशील देशों में विदेशी व्यापार के ऋणात्मक प्रभाव से बचने के लिए व अपने घरेलू उद्यमियों को इस ऋणात्मक प्रभाव से बचाने के लिए कुछ नियम बनाए है जैसे– भारत में विदेशी विनियम प्रबंध अधिनियम भारत में कार्यरत MNCs को नियमित करता हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनाए गए उत्पादों की किस्म, पैकिंग, वातावरण के प्रदूषण, अनुचित व्यापार व्यवहारों को नियमित करने के लिए भी विभिन्न कानून बनाए गये हैं।

अतः कानूनी वातावरण में अंतरराष्ट्रीय व्यापार को नियमित करने के लिये विभिन्न देशों तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सगठनों द्वारा बनाये गये नियमों को शामिल किया जाता है।

(घ) सामजिक सांस्कृतिक वातावरण

व्यवसाय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। व्यवसाय व समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। संस्कृति समाज में रह रहे लोगों के सोचने व आपसी व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है। सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण के तत्व, जैसे– शहरीकरण, पारिवारिक व्यवस्था, धर्म, शिक्षा, आदतें, प्राथमिकताएं, भाषा, रीति रिवाज एवं प्रथाएं, व्यावसायिक नीतिशास्त्र, लोगों का विभिन्न व्यवस्थाओं के प्रति दृष्टिकोण आदि, व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। ये सामाजिक सांस्कृतिक तत्व विभिन्न देशों में अलग–अलग होते हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां विभिन्न देशों में व्यवसाय करती है। ये कम्पनियां विभिन्न संस्कृति के लोगों को अपने उत्पाद बेचती है। इन्हें सफलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न देशों के सांस्कृतिक व सामाजिक तत्वों का अध्ययन करना पडता है, और इसके अनुसार ही अपने उत्पादन, विपणन व विज्ञापन कार्यक्रमों को समायोजित करना पड़ता हैं। इन्हें विभिन्न संस्कृति के लोगों के लिए उत्पाद में कुछ परिवर्तन करने पड़ते है। जैसे उत्पाद का रंग, पैकिंग, डिजाइन आदि। इसी प्रकार इन्हें विभिन्न देशों के लिए अलग–अलग विज्ञापन कार्यक्रम बनाना पडता है और विभिन्न देशों के साामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर विज्ञापन अपील व विज्ञापन नारों का चयन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए भारत में किसी टिकाऊ उत्पाद के विज्ञापन के लिए यह अपील चुनी जा सकती है कि विज्ञापनकर्ता का उत्पाद उपभोक्ता के जीवनसाथी की तरह उसका लंबे समय तक साथ देगा। परंतु यह अपील पश्चिमी देशों में सफल नहीं होगी, क्योंकि वहां वैवाहिक संबंध दीर्धकाल तक नहीं चलते। इसी तरह जूस उत्पाद के विज्ञापन में, भारत में इसे शक्तिवर्धक पेय के रूप मे विज्ञापित किया जा सकता है। जबकि अमेरिका में इसे नाश्ते के रूप में विज्ञापित किया जाता हैं। जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कर्मचारियों को विकसित देशों में हस्तांतरित किया जाता है, तो इन्हें सांस्कृतिक झटका लगता है, क्योंकि इन देशों का सांस्कृतिक परिवेश, विकसित देशों की तुलना में बहुत भिन्न होता है। इन कर्मचारियों को अपने आपको इस नए वातावरण में ढ़ालना पड़ता है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उन सभी देशों के सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण का अध्ययन करना पडता है, जिन स्थानों पर ये व्यवसाय कर रही है। इस जानकारी के बाद ही ये

कंपनियां अपने उत्पादों को रणनीतियों को विभिन्न देशो की संस्कृति के अनुसार बना सकती है।

(ङ) तकनीकी वातावरण

विज्ञान या अन्य व्यवस्थित ज्ञान को व्यावहारिक कार्यों के लिये प्रयोग करने को तकनीक कहते हैं। इसके द्वारा व्यावहारिक कार्य सुव्यवस्थित ढंग से किये जाते है। पिछले 50 वर्षों में तकनीक का बहुत विकास हुआ है। तकनीक के विकास ने बहुत से लोगों के जीवन को बचाया है, मनुष्य के सुख साधनों के लिए बिजली का निर्माण किया है, बहूत से कार्यों को मशीनों से संभव बनाया है, तथा मनुष्य के मानसिक कार्यों के लिए कंप्यूटर को खोजा है। तकनीकी ज्ञान में विकास के कारण लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन आ गया है। आज का व्यक्ति जिन वस्तुओं का प्रयोग कर रहा है वह पहले उनका प्रयोग नहीं कर रहा था। तकनीकी विकास द्वारा बने कुछ उत्पाद तो समाज के लिये आश्चर्यजनक है, जैसे हृदय शल्य चिकित्सा, किडनी ट्रांसप्लाटेशन, जन्म दर पर नियंत्रण के लिये दवाइयां इत्यादि। तकनीकी ज्ञान की कुछ खोजें संसार के लिये विनाशकारी भी साबित हुईं हैं: जैसे –हाइड्रोजन बम और मिसाइलें। बहुत से नये उत्पादों; जैसे –दूर संचार उत्पाद, यातायात, सूचना तकनीक, कंप्यूटर, इंटरनेट ने तो व्यवसाय के प्रबंध को बहुत प्रभावित किया है।

तकनीकी ज्ञान में शोध परिवर्तन व्यावसायिक इकाइयों के लिए समस्या पैदा करती है। जो इकाइयां तकनीक परिवर्तनों के साथ स्वयं को नहीं ढाल पातीं, वह व्यवसाय में ज्यादा देर तक नहीं टिक पातीं। तेजी से बदलती टेक्नोलॉजी से प्लांट तथा उत्पाद बहुत शीघ्र ही प्रचलित हो जाते हैं। आज के युग में उत्पादों का जीवन काल बहुत छोटा है। इस कारण केवल वही व्यवसायी अपने व्यापार में विकास कर सकता हैं जो लगातार, नवाचार और अनुसंधान पर ध्यान दे। नवाचार तथा अनुसंधान द्वारा एक व्यवसायी, नये उत्पादो की खोज कर सकता है या अपने वर्तमान उत्पादों की क्वालिटी सुधार सकता है। इससे व्यावसायिक इकाइ अपने बाजार हिस्से में वृद्वि कर सकती है तथा प्रतियोगिता का सामना कर सकती हैं। जापान में तेजी से विकास का कारण वहां के उद्योग द्वारा लगातार नवाचार और अंनुसंधान पर जोर देना है। नयें उत्पादो तथा उत्पादान के नये तरीकों की रक्षा पेटेन्ट तथा कॉपीराइट से की जा सकती है। इस तरह की पेटेन्ट सुरक्षा से उन उद्योगों को बहुत लाभ होगा जिनमें अधिक नवाचार और अंनुसंधान होता है। तकनीक के आसान आयात से विकासशील देशों की औद्योगिक कार्यकुशलता में काफी सुधार आता है।

अतः व्यावसायिक इकाइयों को अंतरराष्ट्रीय तकनीक वातावरण में आये परिवर्तनों को विश्लेषित करते रहना चाहिए तथा नई तकनीक को शीघ्रता से अपना लेना चाहिए।

(च) अन्य तत्व

कई बार एक देश में आया संकट विश्व के अन्य देशों को प्रभावित करता है। जैसे 1991 का खाडी युद्व, इराक और अमेरिका के युद्व। इससे विश्व में कच्चे तेल की कीमतों में तेजी आई और इसने पूरे विश्व को प्रभावित किया। इस तरह अमेरिका के विश्व व्यापार सेंटर पर हमले ने पूरे विश्व में अंतरराष्ट्रीय शांति को प्रभावित किया। इससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार बुरी तरह से प्रभावित हुआ। इसी तरह थाईलैंड में मुद्रा संकट और बैकों के फेल होने से अन्य देश; जैसे मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स और कोरिया प्रभावित हुए। सब प्राइम संकट तथा अमेरिका में निवेश बैकों का दिवाला होने से, न केवल अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पडा, बल्कि इससे विश्व भर की अर्थव्यवस्था कुप्रभावित हुई। इस संकट ने वैश्विक वित्तीय संकट का रूप ले लिया। इसी तरह यूरोपियन देशों में आए सार्वजनिक ऋण संकट ने कई देशों की व्यावसायिक इकाइयों को कुप्रभावित किया। ग्रीक, पुर्तगाल, स्पेन, आयरलैंड और इटली इस संकट से अत्यधिक कुप्रभावित हुए थे। इन देशों की साख रेटिंग बहुत गिर गई। इन देशों की

सरकारों को राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए ऋण लेने में बहुत कठिनाई हो रही है। इससे वैश्विक निवेशकों के विश्वास को बहुत धक्का लगा है तथा विश्वभर में अनिश्चितता का माहौल बन गया हैं, इससे विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की विकास दर पर बहुत प्रभाव पड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी एक देश में आए संकट के प्रभाव से बचने के लिए समय पर नीतियों में बदलाव लाना पडता है।

अतः यह स्पष्ट है कि अंतरराष्ट्रीय वातावरण के बहुत से तत्व व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। अंतरराष्ट्रीय वातावरण में निरंतर परिवर्तन आ रहा हैं बदलते अंतरराष्ट्रीय वातावरण में व्यावसायिक इकाई को, वातावरण के अनुसार समय रहते, अपनी नीतियों में परिवर्तन कर लेना चाहिए।

11.4 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण

अंतरराष्ट्रीय वातावरण के सभी घटकों में से आर्थिक वातावरण सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें निम्न शामिल हैः

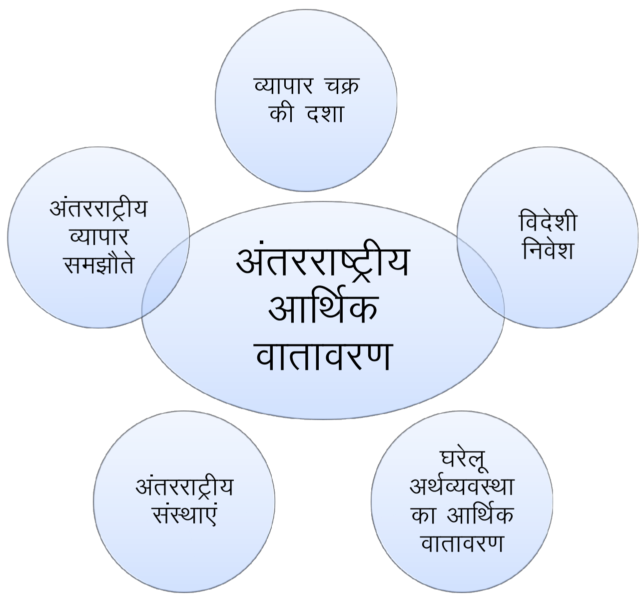

(क) घरेलू अर्थव्यवस्था का आर्थिक वातावरण

आर्थिक वातावरण से अभिप्राय उन आर्थिक तत्वों से हैं, जिनका व्यवसाय के कार्य संचालन पर प्रभाव पडता है; जैसे– आर्थिक–व्यवस्था, आर्थिक–नीति, अर्थव्यवस्था की प्रकृति, व्यापार चक्र , आर्थिक–संसाधन, आय स्तर, आय और धन का वितरण, इत्यादि। महत्वपूर्ण आर्थिक तत्व निम्नलिखित हैः

(i) आर्थिक स्थितियांः अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियां व्यवसाय को प्रभावित करती है। आर्थिक स्थितियों में आय स्तर, प्रति व्यक्ति आय, जनता की क्रय शक्ति, अर्थव्यवस्था में प्रचलित कीमत स्तर, पूंजी निर्माण की दर, औद्योगिक विकास की दर आदि को शामिल किया जाता है। आर्थिक स्थितियों का मांग के स्तर पर, उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की प्रकृति आदि पर प्रभाव पडता है।

(ii) आर्थिक नीतियांः आर्थिक नीतियां सरकार द्वारा बनाई जाती है। इन नीतियों का व्यवसाय पर प्रभाव पडता है। व्यवसाय को अपनी नीतियों का निर्माण करते समय सरकार की आर्थिक नीतियों को ध्यान में रखना पडता है। इन आर्थिक नीतियों में आए बदलाव

का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता हैं, इसलिये बदलती हुई आर्थिक नीतियों के साथ व्यवसाय की नीतियों में बदलाव लाना पड़ता है। निम्न प्रमुख आर्थिक नीतियां व्यवसाय को प्रभावित करती हैं :

(1) मौद्रिक नीति
(2) राजकोषीय नीति
(3) निर्यात आयात नीति
(4) विदेशी निवेश नीति
(5) औद्योगिक नीति

इन नीतियों के अलावा घरेलू सरकार, विदेशी कंपनियों की क्रियाओं को नियमित करने के लिए विभिन्न प्रावधान बनाती है। विदेशी कंपनियों को इन प्रावधानों का पालन करना होता है ; जैसे–भारत सरकार ने विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम 1999, कंपनी अधिनियम, 1956, कंपनी बिल 2009, आदि बनाए है जो विदेशी कंपनियों की क्रियाओं को नियमित करते हैं।

(iii) आर्थिक व्यवस्था : विभिन्न देशों में अलग अलग आर्थिक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक व्यवस्था और उसमें आने वाले परिवर्तन उस अर्थव्यवस्था की व्यवसायिक इकाइयों को प्रभावित करते हैं। इतना ही नहीं, किसी एक देश की आर्थिक व्यवस्था में बदलाव का दूसरे देशों की व्यावसायिक इकाइयों पर भी प्रभाव पडता है। किसी देश की आर्थिक व्यवस्था निम्न में से कोई हो सकती है।

- **पूंजीवादः** इसमें निजी क्षेत्र पर जोर दिया जाता हैं जैसे–यू.एस.ए.।
- **समाजवादः** इसमें सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर दिया जाता हैं जैसे–चीन।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्थाः** इसमें निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों पर जोर दिया जाता हैं जैसे–भारत।

आजकल समाजवाद से पूंजीवाद की ओर झुकाव बढ़ रहा है। इसलिए अर्थव्यवस्था में निजीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र में विनिवेश बढ़ रहा है। इसका अर्थव्यवस्था की विभिन्न व्यावसायिक इकाईयों पर प्रभाव पड़ता है।

(ख) व्यापारिक चक्र की अवस्था

व्यापारिक चक्र की निम्न दशाएं होती हैं :

(1) समृद्वि (2) तेजी (3) अवनती (4) मंदी (5) पुनरूत्थान

व्यापार चक्र की अवस्था किसी भी उद्यम के कार्य को प्रभावित करती हैं। यदि अर्थव्यवस्था में तेजी की स्थिति पाई जाती है, तो इसमें मांग बढ़ती है और व्यावसायिक इकाई की बिक्री बढ़ती है। इसी तरह मंदी की स्थिति में मांग में कमी आती है, और व्यावसायिक इकाई पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण के कारण, एक देश में समृद्धि या तेजी की अवस्था, दूसरे देश को भी प्रभावित करती है। अब विश्व मंदी की अवस्था से धीरे–धीरे बाहर आ रहा है। पिछले कुछ वर्षो में कीमतों में गिरावट आई हैं। न केवल कम्प्यूटर के, बल्कि विभिन्न इलेक्ट्रोनिक मदों, संचार के उपकरण, कार, वस्त्र, आदि की कीमतों में गिरावट आयी है। स्विटजरलैंड, स्वीडन, चीन, हांगकांग, सिंगापुर, ब्राजील, अमेरिका आदि देशों में कीमतों में गिरावट आई हैं। मंदी की स्थिति के कारण, बहुत से देश सकल घरेलू उत्पाद की लक्षित वृद्वि दर को प्राप्त करने में असफल रहे है। इस समय, बहुत से देश मांग की कमी, तथा अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के कारण, अति उत्पादन की समस्या का सामना कर रहे हैं। विभिन्न देश मंदी की दशा से छुटकारा पाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय सरकार ने निर्माण व सेवा क्षेत्र को बहुत से रियायतें दी है। चीन ने भी कीमतों में और गिरावट को रोकने के लिए कीमत नियंत्रण किया है, ताकि मंदी की स्थिति से निपटा जा सके। वर्ष 2008–09 में आई वैश्विक मंदी के कारण पूरी विश्व अर्थव्यवस्था में मांग का स्तर कम हो गया है। यह मंदी 80 वर्ष पूर्व आई 1929 की महामंदी के बाद सबसे बुरी मंदी है। वर्ष 2009–10 में,

विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएं धीरे–धीरे मंदी से बाहर निकल रही थी तब यूरोक्षेत्रीय सार्वजनिक ऋण संकट की समस्या आ गई। इससे वैश्विक निवेशकों के लिए अनिश्चितता का माहौल बन गया। इससे विश्व के विभिन्न देश कुप्रभावित हुए हैं।

(ग) विदेशी निवेश

विदेशी निवेश का अभिप्राय एक राष्ट्र में किए गए निवेश से है। यह निवेश सरकार द्वारा या निजी क्षेत्र द्वारा किया जा सकता है। आजकल विश्व के अधिकांश भाग में विदेशी निवेश के स्वतंत्र प्रवाह से विदेशी निवेश का महत्व और भी बढ़ गया है। विदेशी निवेश निम्न दो प्रकार का होता है :

(1) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अभिप्राय विदेशी कंपनियों द्वारा किसी अन्य देश में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियां बनाने और उनका प्रबंध करने से है। इसके अंतर्गत प्रबंध करने के उद्देश्य से अंशो को खरीद कर अधिग्रहण की गई कंपनी भी शामिल है। इस तरह के निवेश में उद्यम के पूरे लाभ या हानि के लिए ज़िम्मेवार होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक अन्य रूप विदेशी सहयोग है। विदेशी सहयोग में विदेशी और घरेलू उद्यमी मिलकर संयुक्त उद्यम स्थापित करते है।

(2) पोर्टफोलियो निवेश : इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक, विदेशी कंपनियाँ या विदेशी संस्थागत निवेशक किसी अन्य देश की कम्पनियों के अंशों या ऋणपत्रों में निवेश करते हैं। इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक इकाई का प्रबंध अपने हाथों में नहीं लेते, बल्कि उस इकाई का प्रबंध एवं नियंत्रण घरेलू देश पर ही छोड़ दिया जाता है। यदि यह निवेश ऋणपत्रों में किया जाए तो विदेशी निवेशक को एक निश्चित ब्याज मिलता हैं और यदि यह निवेश अंशो में किया जाए तो निश्चित लांभाश की कोई गारंटी नहीं होती। इस प्रकार के निवेश में निवेशकर्ता कोई जोखिम नहीं उठाता तथा न ही प्रबंध में भाग लेता है।

11.5 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के विभिन्न पक्ष

11.5.1 विदेशी निवेश

आधुनिक युग में, "भारत जैसे विकासशील देश में विदेशी निवेश, भारी मात्रा में आर्थिक वातावरण को प्रभावित कर रहा है। "वैश्वी निवेश न कि वैश्वी व्यापार अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की चालक शक्ति है।" इसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, विदेशी सहयोग उद्यमों, अंतर सरकारी ऋणों, अंतरराष्ट्रीय विदेशी संस्थानों तथा वाणिज्य ऋणों आदि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

टूल बाक्स – 04
विदेशी निवेश
लाभ आय अर्जित करने के लक्ष्य से लगाई गई पूंजी।

इनका संक्षिप्त विश्लेषण निम्न ढंग से है :–

(क) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

विदेशी निवेशकर्ता भारत में लाभ के उद्देश्य से प्रत्यक्ष रूप में निवेश करते हैं। ऐसा निवेश देश में संगठित निगर्मित क्षेत्र द्वारा किया जाता है जो भारत में स्वतंत्र कंपनी की स्थापना करके अथवा सहायक अथवा अपनी शाखा की स्थापना करके लाभ आय अर्जित करने के लक्ष्य से निवेश करता है। इसके अतिरिक्त विदेशी लोग भारतीय कंपनियों के शेयर तथा ऋण–पत्रों को खरीद कर भी प्रत्यक्ष रूप से निवेश करते हैं।

2003–04 में पूंजी बाजार में विदेशी निवेशकों ने भारी मात्रा में पूंजी प्रवाह, भारत तथा एशिया के अन्य पूंजी बाजारों में किया है जिसे पोर्टफोलियो निवेश का नाम दिया जा रहा है।

1995 से 2015 तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की राशि औसतन 1116.82 मिलियन यू.एस. डालर थी जो 2008 में 5670 मिलियन डालर तक बढ़ गई और 2014 में 60 मिलियन यू.एस. डालर तक घट गई। यह निवेश मुख्य रूप से दूर संचार, कम्प्यूटर साफ्टवेयर, आटो–क्षेत्र में किया गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत औद्योगिक दृष्टि से विश्व में उच्चस्तरीय सम्मान प्राप्त कर चुका है तथा प्रत्येक विदेशी निवेशक भारत की श्रम–शक्ति, प्राकृतिक संसाधनों तथा तकनीकों को प्रयोग करने के लिए यहां निवेश करने के लिए तैयार है। इसके अतिरिक्त भारत में उपभोक्ता वर्ग अधिक होने के कारण, प्रत्येक वस्तु के लिए मांग बड़ी मात्रा में की जाती है। विदेशी निवेशक इस पक्ष को महत्व देते हुए यहां पर भारी मात्रा में प्रत्यक्ष निवेश करना पसंद करते हैं। भारत में विदेशी निवेश का हिसाब भारतीय रीर्जव बैंक करता है।

(ख) भारत सरकार की प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सम्बन्धी नीति

भारत सरकार आरंभ से ही प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को महत्व देती है। 1949 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इस संबंध में अपने एक वक्तव्य में विदेशी निवेशकों को निम्न तीन आश्वासन दिएः

(i) भारत सरकार विदेशी तथा स्थानीय उद्यमों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखेगी।

(ii) विदेशी निवेशकों को उनकी पूंजी पर प्राप्त लाभों तथा लाभांशों को विदेशी निवेश में हस्तांतरित करने की अनुमति होगी।

(iii) राष्ट्रीयकरण की अवस्था में विदेशी निवेशकों को उचित क्षतिपूर्ति प्रदान की जाएगी।

इसीलिए भारत के 1948 तथा 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव विदेशी पूंजी का पक्ष लिया गया। 1971 की औद्योगिक नीति में भारत सरकार ने उन विदेशी निगमों को भारत में स्थापित होने की आज्ञा दी जो अपना शत–प्रतिशत उत्पादन विदेशों में निर्यात करेगें। अब 100 प्रतिशत से कम निर्यात करने वाले विदेशी उद्योगों को भी देश में निवेश करने की आज्ञा दे दी गई है।

औद्योगिक नीति 1991 में इंद्रिरा कांग्रेस ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए निम्न चार शर्तें रखीः–

(i) उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत शेयर्ज तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की मंजूरी दी जाएगी। विदेशी मशीनरी तथा उपकरण मंगवाने की स्वीकृति विदेशी विनिमय अधिनियमों के आधार पर दी जाएगी।

(ii) लाभांश हस्तांतरण की रिजर्व बैंक देखभाल करेगी जिससें उद्योग विशेष के निर्यातों को ध्यान में रखा जाएगा।

(iii) निर्यात करने वाली कंपनियों को अपनी शेयर पूंजी 51 प्रतिशत तक रखने की अनुमति होगी।

(iv) उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों मे तकनीक हस्तांतरण की 1 करोड़ रूपए तक स्वयंचलित आज्ञा होगी।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ बताएं
प्र.5	विदेशी निवेश से क्या तात्पर्य है?
प्र.6	औद्योगिक नीति में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की क्या शर्तें हैं?

वर्तमान उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के युग में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए नई आर्थिक नीति में विशेष सुधार किए गए जो इस प्रकार से हैं:–

- विदेशी विनिमय नियमन एक्ट फेरा तथा फेमा को समाप्त कर दिया गया।
- विदेशी कंपनियों को शत प्रतिशत शेयर पूंजी रखने की आज्ञा दी गई
- लाभांश हस्तांतरण पर रिजर्व बैंक का नियंत्रण हटा दिया गया।

- 15 सितंबर 1992 के बाद विदेशी कंपनियों को स्टॉक मार्किट में अपने शेयर्ज बेचने की आज्ञा दी गई तथा वह इस पूंजी को विदेशों में भेज सकते हैं।

इस समय भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश बहुत तीव्रता से हस्तांतरित हो रहा है जो कि भारत को अंतरराष्ट्रीय आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर लाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

(ग) विदेशी सहयोग पर आधारित उद्यम

विदेशी सहयोग द्वारा विदेशी तथा घरेलू पूंजी निवेश के संयुक्त सहयोग द्वारा महत्वपूर्ण तथा लाभदायक क्षेत्रों में उद्यम स्थापित किए जाते हैं। ऐसे उद्यम निम्न प्रकार के हो सकते हैं:–

(i) निजी समूहों द्वारा संयुक्त योगदान

(ii) निजी फर्मों तथा भारत सरकार में परस्पर सहयोग

(iii) भारत सरकार तथा विदेशी सरकारों में सहयोग

आर्थिक नियोजन के आरंभ में विदेशी सहयोगी उद्यमों को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला। 1960–70 तक 2475 विदेशी सहयोगी उद्यमों की स्वीकृति तथा 1971–80 तक 3041 ऐसे उद्यमों को और स्वीकृति दी गई। किंतु 1981–90 तक यह संख्या 7436 उद्यमों की हो गई जिनमें 1274 करोड़ रू. के कुल निवेश किए जाने थे। इनमें निवेश का लगभग 25 प्रतिशत अमेरिका के सहयोग के साथ किया गया। पांच देशों–अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, जापान, यू.के. तथा इटली के अधिकतम सहयोगी उद्यम 63 प्रतिशत के थे।

1991 से 2010 तक के विभिन्न क्षेत्रों में सहयोगी उद्यमों के कुछ विस्तृत समंक निम्न प्रकार से उपलब्ध हैं :–

विभिन्न उद्योगों में विदेशी सहयोगी उद्योगों की स्वीकृतियां।

उद्योगों की प्रकृति	कुल उद्यमों की स्वीकृति	स्वीकृत निवेश	कुल का प्रतिशत
1. आधारभूत वस्तुएं	2,459	1,07,576	38.6
2. पूंजीगत वस्तुएं	6,538	25,117	9.0
3. मध्यवर्ती वस्तुएं	811	4,993	1.8
4. उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	4,363	27,623	10.1
5. उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	59	9,357	3.4
6. सेवाएं	472	1,02,928	37.1
कुल	21,502	2,77,594	100.0

आधारभूत वस्तु क्षेत्र में सबसे अधिक सहयोगी उद्यम उपलब्ध है। इनमें भी ऊर्जा के क्षेत्र में 15.6 प्रतिशत सहयोगी उद्यम स्थापित करने की स्वीकृति दी गई। इसी प्रकार विदेशी सहयोगियों की अधिक रूचि सेवा क्षेत्र में थी जो कुल स्वीकृतियों का 37.1 प्रतिशत था। अभी भी दूर–संचार, कंप्यूटर साफ्टवेयर, बैंकिग तथा अन्य सेवाओं के क्षेत्र में विदेशी, भारत सरकार तथा निजी निवेशकों के साथ सहयोग के आधार पर निवेश करना बहुत पसंद करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक सेहत के लिए इसे स्वास्थ्यजनक भी माना जाता हैं, इसलिए भारत सरकार इन्हें हर तरह से प्रोत्साहन प्रदान कर रही है।

टूल बाक्स – 05
विदेशी सहयोग पर आधारित उद्यम
(i) निजी समूहों द्वारा संयुक्त योगदान
(ii) निजी फर्मों तथा भारत सरकार में परस्पर सहयोग
(iii) भारत सरकार तथा विदेशी सरकारों में सहयोग

(घ) **अंतर सरकारी ऋण**

विदेशी निवेश का तीसरा रूप, अंतर–सरकारी ऋणों तथा अनुदानों का है। भारत में ऐसे ऋण तथा अनुदान निम्न तीन प्रकार के हैः–(i) ऋण, (ii) अनुदान, (iii) बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय समझौते।

(i) ऋणः–ऐसे ऋण मुख्य रूप से उत्पादकीय था, जिनका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था के निर्माण में सहायता करना था।

(ii) अनुदान– भारत अब विकसित देश होने के कारण विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले देशों में नहीं शामिल किया जाना चाहिए।

(iii) बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय समझौतेः–भारत सरकार ने विदेशी सरकारों से बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय समझौते किए हैं। कुछ विदेशी ऋण विदेशी सरकारों ने भारत से निर्यात मंगवाने के लिए किए है।

(ङ) **अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण**–विभिन्न देशों में परस्पर विरोधता तथा तनाव दूर करने तथा विश्व में सहकारिता लाने के लिए दूसरे महायुद्ध के बाद कई अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं स्थापित की गई। इनमें अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक कोष, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय विकास संस्थाएं तथा एशियन विकास बैंक आदि की स्थापना की गई। इन संस्थाओं की स्थापना में अमेरिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इन संस्थापकों को विकसित करने के निम्न उद्देश्य थेः–

(i) विश्व स्तर पर मौद्रिक तथा राजनैतिक एकीकरण,

(ii) अल्पविकसित देशों के विकास में सहायता प्रदान करना,

(iii) अंतरराष्ट्रीय व्यापार को उत्साहित करना,

(iv) विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की वैश्वी स्तर पर विश्वसनीयता स्थापित करना,

(v) युद्ध से जुड़े देशों को पुनः स्थापित करना,

(vi) अल्पविकसित देशों के भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करना।

भारत जैसे विकासशील देशों में इन संस्थाओं का बहुत योगदान रहा है। आई.डी.ए. की सहायता का लक्ष्य देश मे राष्ट्रीय मार्गों की स्थापना, उत्तर प्रदेश से ट्यूबवैल तथा हरियाणा में सिंचाई के लिए नालियों का निर्माण करना था।

(च) **बाहरी वाणिज्य ऋणः**–भारत वित्त प्राप्त करने के लिए निर्यात साख संस्थानों जैसे अमेरिकन एगजिम बैंक, जापान का एगजिम बैंक, निर्यात साख गारंटी निगम तथा संयुक्त राज्य आदि से पूंजी प्राप्त कर रहा है। इस ऋण का उद्देश्य विदेशी व्यापार को नियमित बनाए रखना तथा प्रोत्साहित करना है। हाल में रिजर्व बैंक ने ऐसे ऋण प्राप्त करने की सीमा को बढ़ा दिया है। भारत ने विदेशी संस्थाओं तथा सरकारों से भारी मात्रा में ऋण प्राप्त किए हैं।

दूसरे महायुद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय सहयोग स्थापित करने के लिए अमेरिका ने वैश्वी स्तर पर कई अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं स्थापित की। इनका उद्देश्य विश्व में आर्थिक तथा मौद्रिक सहयोग स्थापित करना, युद्ध से विस्थापित देशों का पुनःनिर्माण तथा विश्व व्यापार को उत्साहित करना था।

इसके लिए विश्व में अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक कोष, अंतरराष्ट्रीय पुनःनिर्माण तथा विकास का बैंक आदि 1944 में स्थापित किए गए तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय सहयोग आदि अल्पविकसित देशों को विकसित करने के लिए तथा वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए स्थापित किया गए।

11.5.2 अंतरराष्ट्रीय संगठन

व्यापार को प्रोत्साहित तथा नियमित रखने के लिए विश्व व्यापार संगठन की 1995 में स्थापना की गई। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः–

(क) अंतरराष्ट्रीय **मुद्रा कोष**

भारत आई.एम.एफ. का मौद्रिक सदस्य है जो अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक उद्योग में सहायक होता है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में संतुलित विकास प्रोत्साहित करता है भुगतान संतुलन के घाटे को ठीक करने में सहायक होता है तथा देश में विनिमय स्थिरता बनाने में लाभदायक सिद्ध होता है। 1981 में भारत ने आई.एम.एफ. से 5000 करोड़ का ऋण लिया, ताकि भुगतान असंतुलन की समस्या को दूर किया जा सके। वर्तमान समय में आई.एम.एफ. ने भारत को कई प्रकार के आर्थिक नियंत्रण लगाने का सुझाव दिया है, ताकि भुगतान सन्तुलन के घाटे को ठीक किया जा सके।

(ख) वर्ल्ड बैंक

यह संस्था आई.एम.एफ. की सहयोगी है तथा संसार में उत्पादकीय ढ़ंग से अंतरराष्ट्रीय निवेश करने के लिए सहायक होती है। यह युद्ध तथा अन्य प्राकृतिक संकटों से प्रभावित क्षेत्रों को पुनःस्थापित करने में सहायक होती है। यह संस्था निजी निवेशकर्ता को गारण्टी देकर, सदस्य देशों में निजी विदेशी निवेश को उत्साहित करती है। इस संस्था ने सदस्य देशों में से अति निर्धनता तथा गंदगी दूर करने के लिए कई प्रयत्न किए है। जून 1999 तक इस संस्था ने भारत को कुल 26 बिलियन डॉलर के ऋण दिए है। पर इस समय भारत को आई.एम.एफ. से प्राप्त ऋणों की राशि शून्य है।

(ग) अंतरराष्ट्रीय **विकास संस्था**

इसे 1960 में वर्ल्ड बैंक के सहयोगी के रूप में, दीर्घकालीन कम ब्याज दरों वाले ऋण देने के लिए स्थापित किया गया। 1999 में इसने सभी सदस्य देशों को 3060 करोड़ ऋण दिए, जिसमें भारत को 229 साख तथा 26 बिलियन डालर राशि प्राप्त हुई है। यह ऋण भारत को राष्ट्रीय सड़क–निर्माण, ट्यूबवैल्ज, नालियों की स्थापना तथा ग्रामीण विद्युतीकरण आदि के विकास के लिए दिए गए।

(घ) अंतरराष्ट्रीय **वित्तीय सहयोग**

इस संस्था को भी वर्ल्ड बैंक के सहयोगी के रूप में 1995 में स्थापित किया गया, ताकि निजी उद्यमों की सहायता से उत्पादकीय उद्यमों में निवेश किया जा सके। इसने भारत की 13 कंपनियों में 58 मिलियन डॉलर का निवेश किया है।

(ङ) एशियन विकास बैंक

इसकी एशियन तथा सदूर पूर्वी देशों में सार्वजनिक तथा निजी पूंजी द्वारा आर्थिक सहयोग उत्साहित करने के लिए स्थापना की गई। भारत इस संस्था का तीसरा बड़ा देश है जो सबसे अधिक चंदा 181 मिलियन डालर प्रदान करता है, पहले नंबर पर जापान तथा दूसरे पर चीन है। अभी हाल में इस संस्था ने भारत में सार्वजनिक निवेश के लिए ऋण प्रदान किए हैं।

टूल बाक्स – 06
अंतरराष्ट्रीय संगठन
• अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष • वर्ल्ड बैंक • अंतरराष्ट्रीय विकास संस्था • अंतरराष्ट्रीय वित्तीय सहयोग • एशियन विकास बैंक

11.5.3 अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौते

अंतरराष्ट्रीय वातावरण मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय समझौतों द्वारा निर्धारित होता है। जीनोवा में 1948 में सीमा शुल्क तथा व्यापार पर सामान्य समझौते स्थापित हुए, ताकि स्वतंत्र व्यापार के उद्देश्य को पूरा करके सभी सदस्य देशों के व्यापार तथा प्रगति को उत्साहित किया जा सके। गैट के समझौते, पहले सात दौर में सीमा शुल्क घटा कर अंतरराष्ट्रीय व्यापार को प्रत्साहित करने से संबंधित थे। किंतु वां दौर जिसे युरूग्वा दौर भी कहते है, 1986 में आरंभ हुआ था। यह बहु–पक्षीय व्यापार समझौता कहलाता है, जिसमें व्यापार में संरचनात्मक परिवर्तनों के बारे में सोचा गया तथा इसमें विश्व व्यापार संगठन के बीज बोए गए। परिणामस्वरूप युरूग्वा दौर में गैट को 1995 में डबल्यु.टी.ओ. में बदल दिया गया।

टूल बाक्स – 07
डब्ल्यु.टी.ओ.–वर्ल्ड ट्रेड औरगनाइजेशन
1995 में गैट को डबल्यु.टी.ओ. में बदल दिया गया।

डब्ल्यु.टी.ओ. के विशेष पांच कार्य इस तरह से हैं–

(i) डब्ल्यु.टी.ओ. बहु–पक्षीय व्यापारिक समझौतों के प्रशासन तथा उन्हें लागू करने के लिए सुविधाजनक बनाता है।

(ii) डब्ल्यु.टी.ओ. बहु–पक्षीय व्यापारिक समझौतों के लिए आवश्यक संगठन प्रदान करता है।

(iii) डब्ल्यु.टी.ओ. झगड़ों का निपटारा करने के लिए नियमों तथा विधियों का प्रशासन करता है।

(iv) डब्ल्यु.टी.ओ. व्यापार अवलोकन प्रणाली का प्रशासन करता है।

(v) डब्ल्यु.टी.ओ. विश्व आर्थिक नीति में कार्यरत अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को सहयोग देता है।

डब्ल्यु.टी.ओ. ने अभी हाल ही में भारत को अपनी आधारभूत आयात ड्यूटी 30 प्रतिशत से घटाने तथा निर्यातों पर अनुदान घटाने के लिए सिफारिश की है। इसने बौद्धिक संपत्ति से संबंधित निवेश से संबंधित आदि विश्व पैटेंटस राइट्स तथा निवेशों को उत्साहित करने के समझौतें बनाए है। किंतु डब्ल्यु.टी.ओ. की विभिन्न धाराओं को अपनाने के संबंध में विकासशील देशों में काफ़ी मतभेद पाए जाते हैं। इसका उद्देश्य सेवा निर्यातों को पूरे विश्व में उत्साहित करने का लक्ष्य है तथा भारत में विदेशी निवेश का प्रवाह बढ़ाने का लक्ष्य है।

11.5.1 विदेशी व्यापारिक नीतियां

विदेशी व्यापारिक नीति देश के आयात तथा निर्यात करों से सम्बन्धित होती है। इसमें आयातों को निरूत्साहित तथा निर्यातों को उत्साहित करने के प्रयत्न किए जाते है ताकि देश के भुगतान संतुलन को ठीक किया जा सके। भारत के निर्यातों को आम तौर पर कम कीमत प्राप्त होती है तथा इसे आयातों के बदले में ऊंची कीमत देनी पड़ती है। वर्तमान समय में देश में आयातों तथा निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिए उदारवादी नीति अपनाई गई है।

सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण की विशेष भूमिका है। वर्तमान वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की नीति के कारण घरेलू व्यावसायिक वातावरण के स्थान पर अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। इससे भारतीय फर्मों को नए विकसित बाजार का रास्ता मिला है। वह विदेशी तकनीकों का प्रयोग करके गुण–प्रधान वस्तुएं पैदा करने लगे हैं। इससे इनका व्यवसाय के क्षेत्र में विस्तार हुआ है तथा प्रतियोगिता का स्तर बढ़ा है। विदेशी व्यापार देश की सकल राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जैसा कि हम जानते है कि समष्टि तत्व वह सभी बाहरी तत्व है जो व्यवसाय पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। इनमें आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, जनानकीय, राजनैतिक–वैधानिक, तकनीकी, वैश्वी तथा अन्य तत्व शामिल होते हैं। यह सभी तत्व परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा व्यवसाय पर मिल कर अपना प्रभाव दिखाते हैं। दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय वातावरण भी इन सभी तत्वों से प्रभावित होता है। आर्थिक वातावरण द्वारा वैश्वी प्रभाव विदेशी निवेश तथा इससे संबंधित सरकारी नीतियों द्वारा पड़ता है। घरेलू शुल्क दरें, देश में व्यापार चक्र की दशा, अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौते, देश में आयात निर्यात के स्तरों को निर्धारित करते हैं। इन पर आधारित ही विदेशी निवेश तथा विदेशी सरकारों के सहयोगी उद्यम आकर्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक वातावरण की घरेलू व्यापार में व्यापार की शर्तें निर्धारित करता है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 अंतरराष्ट्रीय वातावरण का क्या अर्थ है?
प्र.2 विश्व व्यापार की आधुनिक प्रवृतियां लिखें।
प्र.3 अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक पर्यावरण का क्या अर्थ है?
प्र.4 भारत विदेशी निवेश संबंधी नीति पर संक्षिप्त नोट लिखें।
प्र.5 अंतरराष्ट्रीय वातावरण में अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों की क्या भूमिका है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 बहु–राष्ट्रीय निगम तथा विदेशी व्यापार संबंधी नीति अंतरराष्ट्रीय वातावरण को किस प्रकार प्रभावित करती है।
प्र.7 अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक पर्यावरण का क्या अर्थ है? विश्व व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियां लिखें।
प्र.8 अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? विकासशील देशों की विदेशी व्यापार संबंधी समस्याओं को स्पष्ट कीजिए।
प्र.9 निम्न पर नोट लिखिए–
(i) भारत में विदेशी विनिमय व्यवस्था
(ii) नवीन अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था
(iii) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश
(iv) एशियन विकास बैंक
प्र.10 अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ बताएं?
प्र.11 विदेशी निवेश से क्या तात्पर्य है?
प्र.12 औद्योगिक नीति में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की क्या शर्तें है?

खंड–4

इकाई–12 भारत और विश्व अर्थव्यवस्था

विषय सूची

12.0 प्रस्तावना
12.1 भारत चीन व पाकिस्तान का विकास पथ
12.2 चीन
12.3 पाकिस्तान
12.4 विकास संकेतकों की तुलना
अभ्यास
सारांश

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- भारत व दो पड़ोसी देश (चीन व पाकिस्तान) का विकास पथ
- भारत, चीन व पाकिस्तान के कुछ विकास संकेतकों की तुलना
- जनांकिकीय संकेतक
- सकल घरेलू उत्पाद व क्षेत्रक
- विकास नीतियां

12.0 प्रस्तावना

क्या एक राष्ट्र प्रगति के पथ पर चलने कि नीतियां बनाने और विकास करने में अकेला ही सक्षम है या उसे अन्य देशों की अर्थव्यवस्था से तुलना या प्रेरित होना जरूरी है? अपने पड़ोसी देशों में हो रही आर्थिक व्यवस्थाओं की जानकारी होना भी आवश्यक है, क्योंकि क्षेत्र में मुख्य आर्थिक गतिविधियों का असर लगभग सभी पर पड़ता है। पिछली इकाइयों में हमने भारत के अनेक विकास अनुभवों का विस्तार से अध्ययन किया है। हमने यह भी अध्ययन किया था कि भारत ने किस प्रकार की नीतियां अपनाई और उनके विभिन्न क्षेत्रों पर किस प्रकार के प्रभाव पड़े। पिछले लगभग दो दशकों से वैश्वीकरण ने विश्व के प्रायः सभी देशों में नवीन आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के कुछ अल्पकालिक, तो कुछ दीर्घकालिक प्रभाव भी हैं। भारत भी इनसे अछूता नहीं रहा है।

विश्व के सभी राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने के लिए अनेक उपाय अपनाते रहें हैं। इसी उद्देश्य से वे अनेक प्रकार के क्षेत्रीय और वैश्विक समूहों का निर्माण करते रहे हैं। जैसे कि सार्क, यूरोपियन संघ, ब्रिक्स, आसियान, जी–8, जी–20 ब्रिक्स आदि। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राष्ट्र इस बात के लिए उत्सुक है कि वे अपने पड़ोसी राष्ट्रों द्वारा अपनाई गई विकासात्मक प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश करें। इससे उन्हें अपने पड़ोसी देशों की शक्तियों तथा कमजोरियों को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलेगी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के दौरान इसे विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए आवश्यक समझा, क्योंकि वे अपेक्षाकृत सीमित स्थान में न केवल विकसित देशों द्वारा प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहे थे, बल्कि आपसी प्रतिस्पर्धा का भी।

इस अध्याय में हम भारत और उसके दो बड़े पड़ोसी राष्ट्रों पाकिस्तान और चीन द्वारा अपनाई गई विकासात्मक नीतियों की तुलना करेंगे। हालांकि इन तीनों देशों में भौतिक साधन संपन्नता संबंधी समानताएं तो है, किंतु फिर भी ये तीनों राष्ट्र अलग है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रभारत है। 50 से भी अधिक वर्षों से धर्मनिरपेक्षता और अति उदार संविधान के प्रति प्रतिबद्ध रहे भारत की राजनीतिक शक्ति व्यवस्था और पाकिस्तान की सत्तावादी एवं सैन्यवादी राजनीतिक शक्ति संरचना या चीन की निर्देशित अर्थव्यवस्था के बीच कोई समानता नहीं है। चीन ने तो हाल ही में उदारवादी व्यवस्था की दिशा में अग्रसर होना प्रारंभ किया है।

12.1 भारत, चीन व पाकिस्तान विकास पथ

भारत के दो प्रमुख पड़ोसी देश है– उत्तर में चीन व पश्चिम में पाकिस्तान। राजनीतिक तौर पर भारत इन दोनों राष्ट्रों से भिन्न है किंतु इन सभी देशों की विकासात्मक नीतियों में अनेक समानताएं है। तीनों देशों ने विकास पथ पर एक ही समय अपनाया है। भारत और पाकिस्तान 1947 में स्वतंत्र हुए, जबकि चीन गणराज्य की स्थापना 1949 में हुई। उस समय पंडित जवाहर लाल नेहरु ने अपने भाषण में कहा था यद्यपि भारत और चीन के बीच विचारधारा में बहुत भेद हैं, लेकिन नए और क्रांतिकारी परिवर्तन एशिया की नई भावना और नई शक्ति के प्रतीक है जो एशिया के देशों में साकार रूप ग्रहण कर रहे हैं।

तीनों देशों ने एक ही प्रकार से अपनी विकास नीतियां तैयार करना शुरू किया था। भारत ने 1951–56 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की घोषणा की और पाकिस्तान ने 1956 में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना को घोषणा की थी जिसे मध्यकालिक विकास योजना भी कहा जाता था। चीन ने 1953 में अपनी पहली पंचवर्षीय योजना की घोषणा की। 1998 तक पाकिस्तान की आठ पंचवर्षीय योजनाओं ने काम किया, जबकि चीन की दसवीं पंचवर्षीय योजना 2001–06 थी। भारत की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–12 पर आधारित थी। भारत और पाकिस्तान ने समान नीतियां अपनाई, जैसे– वृहत् सार्वजनिक क्षेत्र का सृजन और सामाजिक विकास पर सार्वजनिक व्यय। 1980 तक तीनों देशों की संवृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय समान थी। एक दूसरे की तुलना में आज उनकी स्थिति क्या है? इस प्रश्न का उतर देने से पहले हम चीन और पाकिस्तान की विकास नीतियों के ऐतिहासिक पथ की जानकारी लें। पिछली तीन इकाइयों का अध्ययन करने के बाद हम अब यह जानते हैं कि भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कौन सी नीतियां अपनाता रहा है।

टूल बाक्स – 01
पंचवर्षीय योजना की शुरुआत
भारत ने सन 1951–56 में, पाकिस्तान ने 1956 व चीन ने 1953 मे पहली पंचवर्षीय योजना की घोषणा की।

12.2 चीन

चीन एक दलीय गणराज्य है। 1949 में राष्ट्र की स्थापना के बाद अर्थव्यवस्था सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र, उद्यम तथा भूमि सरकारी नियंत्रण में लाया गया।

1998 में ग्रेट लीप फॉरवर्ड – जी. एल. एफ. , अभियान शुरू किया गया था। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य बड़े पैमाने पर देश में औद्योगिकरण करना था। सरकार ने लोगों को अपने घर में उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित किया। ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन की छोटी इकाई से

अच्छी पैदावर पाने के लिए कम्यून आरंभ किए गए। कम्यून पद्धति के अंतर्गत लोग सामूहिक रूप से खेती करते थे। 1958 में चीन में 26,000 कम्यून थे, जिनमें सभी किसान शामिल थे।

टूल बाक्स – 02
कम्यून पद्धति कम्यून पद्धति के अंतर्गत लोग सामूहिक रूप से खेती करते थे। 1958 में चीन में 26,000 कम्यून थे जिनमें सभी किसान शामिल थे।

जी. एल. एफ. एक ऐसा अभियान था जिससे चीन न अपने हर क्षेत्र में विकास को एक नई बुलंदीपर पहुंचाना था, किंतु जी. एल. एफ. अभियान में अनेक समस्याएं आई। चीन में एक भयंकर सूखे ने तबाही मचा दी, लगभग 30 मिलियन लोग मारे गए थे।

इसी दौरान रूस व चीन के बीच संघर्ष हुआ, रूस ने अपने विशेषज्ञों को चीन से वापस बुला लिया जिन्हें औद्योगीकीकरण प्रक्रिया के दौरान सहायता के लिए चीन भेजा गया था। 1965 में माओ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का आरंभ किया। छात्रों और विशेषज्ञों को ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने और अध्ययन करने के लिए भेजा गया।

टूल बाक्स – 03
जी. एल. एफ. 1998 में ग्रेट लीप फॉरवर्ड अभियान शुरू किया गया था, जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने पर देश में औद्योगिकरण करना था।

आज की तारीख में चीन की अर्थव्यवस्था विश्व में दूसरे स्थान पर पहुंच चुकी है। इस मुकाम के पीछे 1978 में किए गए आर्थिक सुधार है। चीन में सुधार चरणों में शुरू किया गया। प्रारंभिक चरण में कृषि, विदेशी व्यापार तथा निवेश क्षेत्रों में सुधार किए गए। उदाहरण के लिए कृषि क्षेत्र में कम्यून भूमि को छोटे–छोटे भूखंडों मे बांट दिया गया जिन्हें अलग–अलग परिवारों को आवंटित किया गया। वे प्रकल्पित कर देने के बाद भूमि से होने वाली समस्त आय को अपने पास रख सकते थे। बाद के चरण में औद्योगिक क्षेत्र में सुधार आरंभ किए गए। सामान्य, नगरीय तथा ग्रामीण उद्यमों को निजी क्षेत्र की उन फर्मों को वस्तुएं उत्पादित करने की अनुमति थी जो स्थानीय लोगों के स्वामित्व और संचालन के अधीन थे। इस अवस्था में उद्यमों को जिन पर सरकार का स्वामित्व था और जिन्हें हम भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग कहते हैं, उनको प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। सुधार प्रक्रिया में दोहरी कीमत निर्धारण पद्धति लागू थी। इसका अर्थ यह है कि कीमत का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता था। किसानों और औद्योगिक इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे सरकार द्वारा निर्धारित की गई कीमतों के आधार पर लागतों एवं निर्गतों की निर्धारित मात्राएं खरीदेगें और बेचेंगे और शेष वस्तुएं बाजार कीमतों पर खरीदी और बेची जाती थी। गत वर्षों के दौरान उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ बाजार में बेची और खरीदी गई वस्तुओं या आगतों के अनुपात में भी वृद्धि हुई। विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित किए गए।

12.3 पाकिस्तान

हांलाकि राजनीतिक क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है, फिर भी विभिन्न आर्थिक नीतियों में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के सह अस्तित्व वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल का अनुसरण दोनों ही देश करते हैं।

1950 और 1960 के दशकों के अंत में पाकिस्तान के अनेक प्रकार की नियंत्रित नीतियों का प्रारूप लागू किया गया। उक्त नीति में उपभोक्ता वस्तुओं के विनिर्माण के लिए प्रशुल्क संरक्षण करना तथा प्रतिस्पर्धी आयातों पर प्रत्यक्ष आयात नियंत्रण करना शामिल था।

हरित क्रांति के आने से यंत्रीकरण का युग शुरू हुआ और चुनिंदा क्षेत्रों की आधारिक संरचना में सरकारी निवेश में वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। इसके कारण कृषि भूमि संबंधी संरचना में भी नाटकीय ढंग से परिवर्तन हुआ।

1970 के दशक में पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हुआ। उसके बाद पाकिस्तान ने 1970 और 1980 के दशकों के अंत में अपनी नीति उस समय बदल दी जब राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया जा रहा था।

पाकिस्तान को पश्चिमी देशों से भी वित्तीय सहायता प्राप्त हुई और मध्य–पूर्व देशों को जाने वाले प्रवासियों से निरंतर पैसा मिला। इससे देश की आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहन मिला। तत्कालीन सरकार ने निजी क्षेत्र को और भी प्रोत्साहन प्रदान किए। इन सबके कारण नए निवेशों के लिए अनुकूल वातावरण बना। 1988 में देश सुधार शुरू किए गए।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	भारत, पाकिस्तान व चीन में पंचवर्षीय योजना की शुरुआत कब हुई?
प्र.2	ग्रेट लीप फारवर्ड अभियान क्या है?
प्र.3	कम्यून पद्धति से क्या तात्पर्य है?
प्र.4	दोहरी कीमत निर्धारण पद्धति का अर्थ बताएं?
प्र.5	पाकिस्तान में 1947 के बाद किए कोई दो आर्थिक सुधार को स्पष्ट कीजिए।

12.4 विकास संकेतकों की तुलना

भारत की अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग		
	कुल देश	रैंकिंग
जनसंख्या	221	2
जनसंख्या घनत्व	238	30
मानव विकास सूची	187	130
साक्षरता दर	234	168
वैश्वीकरण सूचकांक	181	112
सकल घरेलू उत्पाद का विकास दर	215	5
प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद	183	138
वैश्विक प्रतिस्पर्धा सूचकांक	131	71

(क) जनांकिकीय संकेतक

यदि हम विश्व की जनसंख्या पर विचार करें तो पाएंगे कि विश्व में रहने वाले प्रत्येक छह व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भारतीय है और दूसरा चीनी। पाकिस्तान की जनसंख्या बहुत कम है और वह चीन या भारत की जनसंख्या का लगभग दसवां भाग है।

यद्यपि इन तीनों में चीन सबसे बड़ा देश है, तथापि इसका जनसंख्या का घनत्व सबसे कम है और भौगोलिक रूप से इसका क्षेत्र सबसे बड़ा है। पाकिस्तान में जनसंख्या वृद्धि सबसे अधिक है उसके बाद भारत और चीन का स्थान है। विद्वानों का मत है कि चीन में जनसंख्या की वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि 1970 के दशक के अंत में चीन में केवल एक संतान नीति लागू की गई

थी। उनका यह भी कहना था कि इसके कारण लिंगानुपात में गिरावट आई। आजकल तीनों देशों में स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न उपाय कर रहे हैं। एक संतान नीति और उसे लागू किए जाने के परिणास्वरूप जनसंख्या वृद्धि थमने के अन्य प्रभाव भी थे।

देश	अनुमानित जनसंख्या (मिलियन मे)	जनसंख्या की वार्षिक संवृद्धि 2010–11	जनसंख्या का घनत्व (प्रति वर्ग कि.मी.)	लिंग अनुपात (100 में से)	प्रजनन दर	नगरीकरण
भारत	1170	1.2	383	48.4	2.3	30.1
चीन	1338	0.5	144	48.1	1.6	45
पाकिस्तान	174	1.8	225	49.2	3.5	37

उदाहरण के लिए, कुछ दशकों के बाद चीन में वायोवृद्ध लोगों की जनसंख्या का अनुपात युवा लोगों की अपेक्षा अधिक होगा। इसके कारण, कुछ कामगारों को सामाजिक सुरक्षा उपाय उपलब्ध कराने के लिए कदम उठाने के लिए चीन को बाध्य होना पड़ा और 2015 में एक संतान नीति बंद की गई । चीन की प्रजनन दर भी बहुत अधिक है। पाकिस्तान और चीन दोनों में नगरीकरण अधिक है। भारत में नगरीय क्षेत्रों में 28 प्रतिशत लोग रहते हैं।

(ख) सकल घरेलू उत्पाद एवं क्षेत्रक

चीन के बारे में विश्व में बहुचर्चित एक मुद्दा उसके सकल घरेलू उत्पाद 10.1 ट्रीलियन विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत का स.घ. उत्पाद 4.2 ट्रीलियन तथा पाकिस्तान का जी. डी. पी. 0.47 ट्रीलियन डॉलर भारत के जी.डी.पी. के लगभग 10 प्रतिशत है।

जब अनेक विकसित देश 5 प्रतिशत तक की संवृद्धि दर बनाए रखने में कठिनाई महसूस कर रहे थे, तब चीन एक ऐसा देश था जो दो दशकों से भी अधिक लगभग इसकी दोगुनी संवृद्धि बनाए रखने में समर्थ था।

देश	1980–90	2000–10
भारत	5.7	7.4
चीन	10.3	10.3
पाकिस्तान	6.3	4.7

1980 के दशक में पाकिस्तान भारत से आगे था। चीन की संवृद्धि दोहरे अंकों में थी और भारत सबसे नीचे था। 2000–10 के दशक में भारत और चीन की संवृद्धि दरों में मामूली गिरावट आई, जबकि पाकिस्तान में 4.7 प्रतिशत की अत्याधिक गिरावट आई। कुछ विद्वानों का मत है कि पाकिस्तान में 1988 में आरंभ की गई सुधार प्रक्रिया तथा राजनीतिक अस्थिरता इस प्रवृति का मुख्य कारण था।

चीन तथा पाकिस्तान में भारत की अपेक्षा नगर में रहने वाले लोगों का अनुपात अधिक है। चीन में स्थलाकृति तथा जलवायु दशाओं के कारण कृषि के लिए उपयुक्त क्षेत्र अपेक्षाकृत कम अर्थात भूमि क्षेत्र का लगभग 10 प्रतिशत है। चीन में कुल कृषि योग्य भूमि भारत में कृषि क्षेत्र की 40 प्रतिशत है। 1980 के दशक तक चीन में 80 प्रतिशत से भी अधिक लोग जीविका के एकमात्र साधन के रूप में कृषि पर निर्भर थे। उस समय से सरकार ने लोगों को कृषि कार्य त्यागने और हस्तशिल्प, वाणिज्य तथा परिवहन जैसी गतिविधियां अपनाने के लिए एस.ई.जैड. (स्पैशल इकनौमिक जोन) के जरीए प्रेरित किया। चीन में 2008 में 40 प्रतिशत श्रमिकों के साथ कृषि ने चीन में सकल उत्पाद में 10 प्रतिशत में योगदान दिया।

क्षेत्रक	जी.डी.पी. के लिए योगदान	श्रमबल का विवरण

	भारत	चीन	पाकिस्तान	भारत (2010)	चीन (1997)	पाकिस्तान (2010)
कृषि	19	10	21	56	40	45
उद्योग	26	47	25	19	27	20
सेवा	55	43	54	25	33	35
योग	100	100	100	100	100	100

भारत और पाकिस्तान में जी.डी.पी. के लिए कृषि का योगदान 19 तथा 21 प्रतिशत था। परंतु इस क्षेत्र में श्रमिकों का अनुपात भारत में अधिक है। पाकिस्तान में लगभग 45 प्रतिशत लोग कृषि कार्य करते हैं, जबकि भारत में 56 प्रतिशत उत्पादन तथा रोज़गार में क्षेत्रवार हिस्सेदारी भी यह दर्शाती है कि तीनों अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग तथा सेवा क्षेत्रों में श्रमिकों का अनुपात कम है। परंतु उत्पादन की दृष्टि से उनका योगदान अधिक है। चीन में विनिर्माण से जी.डी.पी. में सबसे अधिक अर्थात 47 प्रतिशत योगदान होता है, जबकि भारत और पाकिस्तान में केवल सेवा क्षेत्र द्वारा ही सबसे अधिक योगदान अर्थात 50 प्रतिशत से अधिक होता है।

विकास की सामान्य प्रक्रिया के दौरान इन देशों ने सबसे पहले रोज़गार और कृषि उत्पादन से संबंधित अपनी नीतियों को बदलकर उन्हें विनिर्माण और उसके बाद सेवाओं की ओर परिवर्तित कर दिया। ऐसा ही चीन में हो रहा है। भारत और पाकिस्तान में विनिर्माण मे लगे श्रमबल का अनुपात बहुत कम अर्थात क्रमशः 19 तथा 20 प्रतिशत था। जी.डी.पी. में उद्योगों का योगदान कृषि के उत्पादन के बराबर या थोड़ा अधिक था। भारत और पाकिस्तान में सीधे सेवा क्षेत्र पर जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार भारत और पाकिस्तान दोनों में सेवा क्षेत्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभर कर आ रहा है। यह जी.डी.पी. में अधिक योगदान कर रहा है और साथ ही यह संभावित नियोक्ता बन रहा है। 1980 के दशक में श्रमिकों के अनुपात पर विचार करते हैं तो यह पाते हैं कि पाकिस्तान, भारत और चीन के अपेक्षा सेवा क्षेत्र में अपने श्रमिकों को तेजी से भेज रहा है। 1980 के दशक में भारत, चीन तथा पाकिस्तान में सेवा क्षेत्र में क्रमशः 17, 12 और 27 प्रतिशत श्रमबल कार्यरत था। वर्ष 2000 में यह बढ़कर 25, 33 और 35 प्रतिशत हो गया है।

देश	1980—90			2010—11		
	कृषि	उद्योग	सेवा	कृषि	उद्योग	सेवा
भारत	3.1	7.4	6.9	2.7	12.4	9.4
चीन	5.9	10.8	13.5	4.3	7.9	9.3
पाकिस्तान	4	7.7	6.8	0.6	8.3	2.9

पिछले दो दशकों में तीनों ही देशों में कृषि क्षेत्र, जिसमें उक्त तीनों देशों में श्रमबल का सबसे बड़ा अनुपात कार्यरत था, की संवृद्धि में कमी आई है। चीन में तो द्विअंकीय संवृद्धि दर बनी रही, किंतु भारत और पाकिस्तान में इसमे गिरावट आई है। चीन में 2008—10 के दशक के दौरान सेवा क्षेत्र मे संवृद्धि दर बढ़ी है, जबकि भारत और पाकिस्तान की इस क्षेत्र में संवृद्धि रूक गई है। इस प्रकार चीन की आर्थिक संवृद्धि का मुख्य आधार विनिर्माण क्षेत्र है और भारत की संवृद्धि सेवा क्षेत्र से हुई है। पाकिस्तान में इस अवधि में तीनों ही क्षेत्र में गिरावट आई है।

मद	भारत	चीन	पाकिस्तान
मानव विकास सूचक (मान)	0.547	0.687	0.527
पद (एच.डी.आई. पर आधारित)	134	101	145
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्षों में)	65.4	73.5	63
प्रौढ़ सारक्षता दरें (प्रतिशत 15 वर्ष और अधिक आयु)	62.8	94	55.5

प्रतिव्यक्ति जी.डी.पी. (पी.पी.पी. अमेरिकी डॉलर)	3296	6828	2609
निर्धनता रेखा से नीचे लोग (%) (2004–06)	37.2	2.8	22.3
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जिंदा जन्म)	66	19	87
मतृत्व मृत्यु दर (प्रति 1 लाख जन्म)	230	38	260
उत्तम स्वच्छता तक धारणीय पहुंच वाली जनसंख्या (%)	52	92	32
उत्तम जल स्त्रोतों तक धारणीय पहुंच वाली जनसंख्या (%)	88	97	93
अल्प–घोषित जनसंख्या (कुल का %)	43.5	4.5	–

चीन भारत और पाकिस्तान से आगे है। यह बात अनेक संकेतकों के विषय में सही है, जैसे– आय संकेतक अर्थात प्रतिव्यक्ति जी.डी.पी. अथवा निर्धनता रेखा से नीचे की जनसंख्या का अनुपात अथवा स्वास्थ्य संकेतकों जैसे कि मृत्यु दर, स्वच्छता साक्षरता तक पहुंच, जीवन प्रत्याक्षा अथवा कुपोषण। पाकिस्तान निर्धनता रेखा के नीचे के लोगों का अनुपात कम करने में भारत से आगे है। शिक्षा, स्वच्छता और जल तक पहुंच मामलों में इसका निष्पादन भारत से बेहतर है, किंतु ये दोनों देश महिलाओं को मातृमृत्यु से बचा पाने में असफल रहे हैं। चीन में प्रति एक लाख पर केवल 38 महिलाओं की मृत्यु होती है, जबकि भारत और पाकिस्तान में यह संख्या 200 से ऊपर है। आश्चर्य की बात यह है कि तीनों देश उत्तम जल स्त्रोत उपलब्ध करा रहे है। आप यह भी देखेंगे कि एक डॉलर प्रतिदिन की अंतरराष्ट्रीय निर्धनता दर के नीचे के लोगों का अनुपात भारत में तीनों देशों से अधिक गरीब व्यक्ति है।

इनके साथ की स्वतंत्रता संकेतकों की भी आवश्यकता है। सामाजिक व राजनीतिक निर्णय–प्रक्रिया में लोकतांत्रिक भागीदारी की सीमा के संकेतक को इसके माप के रूप में जोड़ दिया गया है। ऐसे कुछ स्पष्ट स्वतंत्रता संकेतक इनमें अभी तक नहीं जोड़े गए हैं, जैसे– नागरिक अधिकारों की संवैधानिक संरक्षण की सीमा, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए संवैधानिक संरक्षण की सीमा या न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संरक्षण देने की संवैधानिक सीमा तथा विधि सम्मत शासन अभी तक लागू नहीं किया गया है। इन्हें और कुछ उपायों को सूची में शामिल किए बिना तथा इन्हें महत्व दिए बिना, मानव विकास सूचक का निर्माण अधूरा रहेगा तथा इसकी उपादेयता भी सीमित होगी।

(ग) विकास नीतियां

सामान्यतः यह देखा जाता है कि किसी देश की विकास नीतियों को अपने देश के विकास के लिए मार्गदर्शन एवं सीख के रूप में ग्रहण किया जाता है। विश्व के विभिन्न भागों में सुधार कार्यक्रमों के लागू होने के पश्चात ऐसा विशेष रूप से देखा जा सकता है। अपने पड़ोसी देशों की आर्थिक सफलताओं से कुछ सीखने की आवश्यकता है कि हम उनकी सफलताओं तथा विफलताओं के मूल कारणों को समझें। यह भी आवश्यक है कि हम उनकी रणनीतियों के विभिन्न चरणों के बीच अंतर और विभेद करें। विभिन्न देश अपनी विकास प्रक्रिया अलग–अलग तरीकों से पूरा करते हैं। आइए, सुधार कार्यक्रमों के आरंभ को हम संदर्भ बिंदु के रूप में लें। हम जानते है कि सुधार कार्यक्रम का आरंभ चीन में 1978 में, पाकिस्तान में 1988 मे और भारत में 1991 में हुआ। आइए सुधार पूर्व और सुधार पश्चात अवधि में उनकी उपलब्धियों और विफलताओं का संक्षिप्त मूल्यांकन करें।

चीन में संरचनात्मक सुधारों को 1978 में प्रारंभ किया। चीन को इन्हें प्रारंभ करने के लिए विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष की कोई बाध्यता नहीं थी जैसे कि भारत और पाकिस्तान को थी। चीन के तत्कालीन नए नेता माओवादी शासन के दौरान चीन की धीमी आर्थिक संवृद्धि और देश में आधुनिकीकरण के अभाव को लेकर संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने महसूस किया कि विकेंद्रीकरण, आत्मनिर्भरता, विदेश औद्योगिकी और उत्पादों तथा पूंजी के बहिष्कार पर आधारित आर्थिक विकास माओवादी दृष्टिकोण से विफल रहा है। व्यापक भूमि सुधारों, सामुदायिकीकरण और ग्रेट लीप फॉरवर्ड तथा अन्य पहलों के बाद भी 1978 में प्रतिव्यक्ति अन्न उत्पादन उतना ही था जितना 1950 के दशक के मध्य में था। यह भी देखा गया कि शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में

आधारिक संरचना की स्थापना किए जाने के फलस्वरूप भूमि सुधारों, दीर्घकालिक विकेंद्रीकृत योजनाओं और लघु उद्योगों से सुधारोतर अवधि में सामाजिक और आय संकेतकों मे निश्चित रूप से सुधार हुआ था। सुधारों के प्रारंभ होने से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का बड़े व्यापक स्तर पर प्रसार हो चुका था। कम्यून व्यवस्था के कारण खाद्यान्नों का अधिक समतापूर्ण वितरण था। विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि प्रत्येक सुधार के पहले छोटे स्तर लागू किया गया और बाद में उसे व्यापार पैमाने पर लागू किया गया। विकेंद्रीकृत शासन के प्रयोग के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लागतों की सफलता या विफलता का आकलन किया जा सका। उदाहरण के लिए, जब छोटे–छोटे भूखंड कृषि के लिए व्यक्तियों को दिए गए तो बहुत बड़ी संख्या में लोग समृद्ध बन गए। इसके फलस्वरूप ग्रामीण उद्योगों के अपूर्व विकास की स्थिति बनी और आगे और सुधारों के लिए मजबूत आधार बनाया गया। विद्वान ऐसे अनेक उदाहरण देते है कि चीन में सुधारों के कारण किस प्रकार तीव्र संवृद्धि हुई।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	चीन में संरचनात्मक सुधारों को 1978 में क्यों प्रारंभ किया?
प्र.6	चीन में प्रत्येक सुधार के पहले छोटे स्तर पर क्यों लागू किया गया ?
प्र.7	1980 के दशक में पाकिस्तान भारत से आगे कैसे था ?

विशेषज्ञ तर्क देते हैं कि सुधार प्रक्रिया से पाकिस्तान में तो सभी आर्थिक संकेतकों में गिरावट आयी है। पाकिस्तान में 1980 दशक की तुलना में जी.डी.पी. और वृद्धि दर 1990 के दशक में कम हो गई। यद्यपि पाकिस्तान के अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा से संबंधित आकड़े बहुत सामारात्मक रहे हैं, परंतु पाकिस्तान के सरकारी आकड़ों का प्रयोग करने वाले यह संकेत देते हैं कि वहां निर्धनता बढ़ रही है। 1960 के दशक में निर्धनों का अनुपात 40 प्रतिशत था, जो 1980 के दशक से गिर कर 25 प्रतिशत हो गया और 1990 के दशक में पुनः बढ़ने लगा। विद्वानों ने पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में संवृद्धि दर की कमी और निर्धनता के पुनः आविर्भाव के ये कारण बताएं–

(क) कृषि संवृद्धि और खाद्य पूर्ति, तकनीकी परिवर्तन संस्थागत प्रक्रिया पर आधारित न होकर अच्छी फसल पर आधारित था। जब फसल अच्छी होती थी तो अर्थव्यवस्था भी ठीक रहती थी और फसल अच्छी नहीं होती थी तो आर्थिक विकास भी नकारात्मक प्रवृतियां दर्शाते थे।

(ख) पाकिस्तान को अपने भुगतान संतुलन संकट को ठीक करने के लिए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से उधार लेना पड़ा था। विदेशी मुद्रा प्रत्येक देश के लिए एक अनिवार्य घटक है और यह जानना आवश्यक है कि इसे कैसे अर्जित किया जाता है। यदि कोई देश अपने विर्निमित उत्पादों के धारणीय निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा कमाने में समर्थ है, तो उसे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। पाकिस्तान में अशिकांश विदेशी मुद्रा मध्यपूर्व में काम करने वाले पाकिस्तानी श्रमिकों की आय प्रेषण तथा अति अस्थिर कृषि उत्पादों के निर्यातों से प्राप्त होती है। एक ओर विदेशी ऋणों पर निर्भर रहने की प्रवृति बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर पुराने ऋणों को चुकाने में कठिनाई बढ़ती जा रही थी।

टूल बाक्स – 04
पाकिस्तान में संवृद्धि दर की कमी के कारण
(क) कृषि संवृद्धि और खाद्य पूर्ति, तकनीकी परिवर्तन संस्थागत प्रक्रिया पर आधारित न होकर अच्छी फसल पर आधारित था।
(ख) पाकिस्तान को अपने भुगतान संतुलन संकट को ठीक करने के लिये अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से उधार लेना पड़ा था।

जैसा कि पाकिस्तान की वार्षिक योजना 2011–12 में कहा गया है कि पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था की धीमी संवृद्धि के लिए विभिन्न कारक उतरदायी है। उद्धृत किया गया है कि

निम्न कारणों से अर्थव्यवस्था की गति धीमी रही जैसे– बाढ़ का आना; आर्थिक सुधारों को लागू करने में देरी करना; सुरक्षा स्थिति का पुराना होना और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की कमी के कारण सभी मुख्य क्षेत्रों में संवृद्धि की गति का धीमा होना। अत्याधिक बाढ़ों के कारण कृषि एवं आधारभूत संरचना का भारी नुकसान हुआ है, जबकि 2010–11 में ऊर्जा संकट विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में भारी कमी के कारण और बढ़ गया है, जिसके कारण व्यावसायिक गतिविधियां कम हो गई हैं। पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में वर्ष 2010–11 के दौरान 2.4 प्रतिशत की वृद्धि दर की उम्मीद थी जबकि पिछले वर्ष के दौरान यह लक्ष्य 4.5 प्रतिशत था, इसके साथ–साथ ऊंची मुद्रास्फीति दरें और तीव्र निजीकरण के कारण, सरकार उन विभिन्न क्षेत्रों में अधिक खर्च कर रही है जो निर्धनता को कम कर सकते हैं।

सारांश

भारत, पाकिस्तान और चीन की पांच दशकों से भी अधिक लंबी विकास यात्रा रही है और उनको अलग–अलग परिणाम प्राप्त हुए हैं। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में तीनों का ही विकास स्तर निम्न था पिछले तीन दशकों में इन तीनों देशों का विकास स्तर अलग–अलग रहा है। लोकतांत्रिक संस्थाओं सहित भारत का निष्पादन साधारण रहा है। अधिकतर लोग आज भी कृषि पर निर्भर हैं। भारत के अनेक भागों में आधारिक संरचना का अभाव है। भारत में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले एक चौथाई से भी अधिक जनसंख्या का रहन–सहन के स्तर को ऊपर उठाने की आवश्यकता है। विद्वानों का मत है कि राजनैतिक अस्थिरता, प्रेषणों और विदेशी सहायता पर अत्याधिक निर्भरता और कृषि क्षेत्र का अस्थिर निष्पादन पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था की गिरावट के कारण है। कुछ समय से पाकिस्तान जी.डी.पी. वृद्धि की उच्चतर कायम रखते हुए, स्थिति में सुधार करने की आशा कर रहा है। वर्ष 2005 के विनाशकारी भूकंप, जिसमें 75,000 लोगों की जानें गई और संपत्ति का भारी नुकसान हुआ, इस झटके से उबरना आज भी पाकिस्तान के सामने बड़ी चुनौती है। चीन में राजनीतिक स्वतंत्रता का अभाव तथा मानव अधिकारों पर उसके निहतार्थ चिंता के मुल विषय है। फिर भी, अंतिम तीन दशकों में से इसने अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता को खोए बिना, बाजार व्यवस्था का प्रयोग किया तथा निर्धनता निवारण के साथ–साथ संवृद्धि के स्तर को बढ़ाने में सफल रहा है। भारत और पाकिस्तान में जहां सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के निजीकरण का प्रयास हो रहा है, वहां चीन ने बाजार व्यवस्था का उपयोग अतिरिक्त सामाजिक–आर्थिक सुअवसरों के सर्जन के लिए किया है। सामुदायिक भू–स्वामित्व को कायम रखते हुए और लोगों को भूमि पर कृषि की अनुमति देकर चीन ने ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित कर दी है। चीन में सुधारों से पूर्व की सामाजिक आधारिक संरचना उपलब्ध कराने में सरकारी हस्तक्षेप द्वारा मानव विकास संकेतकों के सकारात्मक परिणाम हुए हैं।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 चीन में एक संतान नीति का महत्वपूर्ण निहितार्थ क्या है?

प्र.2 चीन, पाकिस्तान और भारत के मुख्य जनांकिकीय संकेतकों का उल्लेख कीजिए?

प्र.3 मानव विकास के विभिन्न संकेतकों का उल्लेख कीजिए?

प्र.4 स्वतंत्रता संकेतक की परिभाषा दीजिए। स्वतंत्रता संकेतकों के कुछ उदाहरण दीजिए।

प्र.5 उन विभिन्न कारकों का मूल्यांकन कीजिए जिनके आधार पर चीन में आर्थिक विकास में तीव्र वृद्धि हुई।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 क्षेत्रीय और आर्थिक समूहों के बनने के कारण दीजिए।

प्र.2 वे विभिन्न साधन कौन से है जिनकी सहायता से देश अपनी घरेलू व्यवस्थाओं को मजबूत बनाने का प्रयत्न कर रहे है।

प्र.3 वे समान विकासात्मक नीतियां कौन–सी हैं जिनका कि भारत और पाकिस्तान ने अपने–अपने विकासात्मक पथ के लिए पालन किया है?

प्र.4 1958 में प्रारंभ की गई चीन के ग्रेट लीप फॉरवर्ड अभियान की व्याख्या कीजिए।

प्र.5 चीन की औद्योगिक वृद्धि 1978 में उसके सुधारों के आधार पर हुई थी। क्या आप इस कथन से सहमत है? स्पष्ट कीजिए।

प्र.6 पाकिस्तान द्वारा अपने आर्थिक विकास के लिए किए गए विकासात्मक पहलों का उल्लेख कीजिए?

प्र.6 भारत की विकासात्मक नीतियां कौन–सी हैं?

खंड–4

इकाई–13 भारत में विदेशी विनियोग (निवेश)

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
13.0 प्रस्तावना
13.1 विदेशी पूंजी का अर्थ
13.2 विदेशी पूंजी का वर्गीकरण
13.3 विदेशी निवेश की आवश्यकता
13.4 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले घटक
13.5 विदेशी निवेश के लाभ
13.6 विदेशी निवेश की सीमाएं
13.7 अच्छे निवेश वातावरण के लिए सुझाव
13.8 विदेशी नीति, 1991
13.9 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, 2012
सारांश
अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगेः

- विदेशी विनियोग या निवेश का अर्थ
- विदेशी पूंजी के प्रकार
- विदेशी निवेश के लाभ
- विदेशी निवेश के दोष
- विदेशी निवेश के लिए अच्छा वातावरण कैसे बनाया जाएं

13.0 प्रस्तावना

प्रो. लुईस अनुसार, ''संसार के लगभग प्रत्येक विकसित देश ने अपने आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में अपनी बचतों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशी पूंजी का प्रयोग किया है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में इंग्लैंड ने हॉलैंड से ऋण लिए और फिर इंग्लैंड ने स्वयं उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में बहुत से देशों को ऋण दिए। संसार में सबसे धनी देश संयुक्त राज्य अमेरिका ने उन्नीसवीं शताब्दी में भारी मात्रा में कर्जा लिया और अब वह बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा ऋणदायक देश बन गया है।'' भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में विदेशी पूंजी का आगमन ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से ही हो गया था। परंतु अंग्रेज़ों ने भारत में विदेशी पूंजी संबंधी जो नीति अपनाई थी वह भारत के हित में न होकर विदेशी पूंजीपतियों के अनुकूल थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में विदेशी पूंजी का प्रयोग आर्थिक विकास को बढ़ाने एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाने के लिए किया जाने लगा।

13.1 विदेशी पूंजी का अर्थ

विदेशी पूंजी से अभिप्राय किसी देश की उत्पादक क्रियाओं में विदेशी सरकार, विदेशी निजी व्यक्ति, अंतरराष्ट्रीय संस्था द्वारा किए गए पूंजी के निवेश से है। विदेशी पूंजी में विदेशी सहायता, व्यापारिक ऋण एवं विदेशी निवेश को शामिल किया जाता है। **'विदेशी सहायता' में रियायती विदेशी ऋणों तथा विदेशी अनुदानों को शामिल किया जाता है।** विदेशी पूंजी–विदेशी मुद्रा, विदेशी मशीनों व तकनीकी ज्ञान आदि के रूप में लाई जा सकती है। विदेशी पूंजी के कई स्वरूप जैसे विदेशी सहयोग, विदेशी मुद्रा में ऋण, भारतीय शेयर पूंजी में विदेशी निवेश आदि हो सकते हैं। कई विदेशी संस्थाएं तथा सरकारें अनुदान भी देती है। अनुदान और ऋण में मुख्य अंतर यह है कि ऋणों को ब्याज सहित वापिस करना पडता है, जबकि अनुदानों को वापिस नहीं करना पडता।

टूल बाक्स – 01
विदेशी विनियोग
किसी देश की उत्पादक क्रियाओं में विदेशी सरकार, विदेशी, निजी व्यक्ति, अंतरराष्ट्रीय संस्था द्वारा किए गए पूंजी के निवेश विदेशी विनियोग कहते है।

13.2 विदेशी पूंजी का वर्गीकरण

विदेशी पूंजी निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है:
(1) विदेशी पूंजी सहायता, (2) व्यापारिक ऋण, (3) विदेशी निवेश।

(1) विदेशी सहायता

विदेशी पूंजी का एक रूप विदेशी सहायता है। भारत जैसे अल्पविकसित देश में विदेशी पूंजी, विदेशी सहायता के रूप में भी प्राप्त होती है। विदेशी सहायता से हमारा अभिप्राय विदेशों से प्राप्त ऋण तथा अनुदान से है। इन ऋणों पर ब्याज की दर, बाजार की सामान्य दरों से काफी कम होती है और इन्हें वापिस करने की अवधि बहुत लंबी होती है। विदेशी सहायता का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में विकास की दर को बढ़ाना है। विदेशी सहायता विकसित देशों की सरकारों और संस्थाओं द्वारा दी जाती है जैसे–विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक इत्यादि।

टूल बाक्स – 02
विदेशी पूंजी • विदेशी सहायता • व्यापारिक ऋण • विदेशी निवेश

विदेशी सहायता निम्न प्रकार की होती है–

(क) अनुदानः–विदेशी सहायता का एक हिस्सा अनुदान के रूप में प्राप्त होता है। विदेशी सहायता के इस हिस्से को वापिस नहीं करना पड़ता। इस पर न तो कोई ब्याज होता है। इससे अल्पविकसित देशों को विकास में काफी सहायता मिलती है।

(ख) विदेशी सरकार और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दिए गए रियायती ऋणः–इन रियायती ऋणों पर ब्याज की दर, बाजार में प्रचलित ब्याज की दर से काफी कम होती है और इन्हें वापिस करने की अवधि लंबी होती है। ये ऋण अल्पविकसित देशों को विकासात्मक परियोजनाओं

के लिए और भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए दिए जाते हैं। ये ऋण निम्न द्वारा दिए जाते हैं:

(1) **विदेशी सरकार से ऋणः**—विदेशी पूंजी का एक रूप यह है कि एक देश की सरकार दूसरे देश की सरकार को ऋण देती है। ये ऋण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैः

(i) उदार ऋण— वे ऋण जो लंबी अवधि के लिए जाते है तथा जिन पर ब्याज की दर कम होती है।

(ii) प्रोजेक्ट ऋणः—प्रोजेक्ट ऋण वे ऋण है, जो किसी विशेष परियोजना को पूरा करने के लिए दिए जाते हैं। इन्हें निबद्ध ऋण भी कहा जाता है।

(iii) गैर—प्रोजेक्ट ऋणः—गैर—प्रोजेक्ट ऋण वे ऋण है, जो किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं दिए जाते। इनका प्रयोग ऋणी देश अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं। इन्हें अनिबद्ध ऋण भी कहा जाता है।

(2) **अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋणः**—अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक आदि के द्वारा विदेशी पूंजी के रूप में ऋण दिए जाते हैं। इन संस्थाओं द्वारा निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को ही ऋण दिए जाते हैं। ये ऋण भी उदार, प्रोजेक्ट या गैर—प्रोजेक्ट प्रकार के हो सकते हैं।

(2) व्यापारिक ऋण

ये ऋण विदेशी बैंकों से बाजार की प्रचलित ब्याज की दर पर लिए जाते हैं। इन ऋणों पर ब्याज की दर रियायती ऋणों की तुलना में अधिक होती है। तथा इन्हें वापिस करने की अवधि भी कम होती है। व्यापारिक ऋणों में निम्न को शामिल किया जाता हैः

(1) **विदेशी बैंकों से लिए गए ऋणः**—बहुत बार सरकार अपने भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए विदेशी बैंकों से ऋण लेती हैः जैसे—अमेरिका व जापान के आयात—निर्यात बैंक से लिया गया ऋण, इग्लैंड के निर्यात साख गारंटी निगम से लिया गया ऋण इत्यादि।

(2) **अनिवासियों की जमाएंः**—विदेशी पूंजी को प्राप्त करने का एक अन्य स्त्रोत अनिवासियों की जमा राशि है। अनिवासियों की जमा पर ब्याज की दर प्रायः बाजार की ब्याज की दर के बराबर होती है। इसलिए अनिवासियों की जमा को व्यापारिक ऋणों का हिस्सा माना जाता है।

(3) विदेशी निवेश

विदेशी निवेश से हमारा अभिप्राय, विदेशी निवेशकों द्वारा अन्य देशों की कंपनियों के अंशों, ऋणपत्रों और बॉण्डों में किए गए निवेश से है। हालांकि विदेशी सहायता ने विभिन्न देशों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है पर वर्तमान समय में इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। इसी तरह व्यापारिक ऋणों पर विभिन्न देश अपनी निर्भरता कम कर रहे हैं, क्योंकि इन ऋणों पर ब्याज की दर अधिक होती है। इन कारणों से विदेशी पूंजी के लिए विभिन्न देशों की निर्भरता विदेशी निवेश पर बढ़ गई है। विभिन्न देशों की सरकार ने विदेशी निजी क्षेत्र से निवेश आकर्षित करना शुरू कर दिया है। निजी विदेशी निवेश वह निवेश है जिसे किसी विदेशी देश के व्यक्तियों या निजी विदेशी कंपनियों द्वारा अन्य देशों के निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में लगाया जाता है। यह निवेश मुख्य रूप से समता अंशों में लगाया जाता है, जिसके ऊपर कोई निश्चित ब्याज या लाभांश की गारंटी नहीं होती। यह निम्न प्रकार का होता हैः(i) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (ii) पोर्टफोलियों निवेश।

टूल बाक्स — 03
निजी विदेशी निवेश किसी विदेशी देश के व्यक्तियों या निजी विदेशी कंपनियों द्वारा अन्य देशों के निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों में किया गया निवेश है। यह दो प्रकार का होता है। (1) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (2) पोर्टफोलियों निवेश

(1) **विदेशी प्रत्यक्ष निवेशः**—विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का तात्पर्य विदेशी कंपनियों द्वारा दूसरे देशों में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियां बनाने और उनका प्रबंध करने से है। इसके अंतर्गत प्रबंध करने का उद्देश्य से अंशों को खरीद कर अधिग्रहण की गई कंपनी भी शामिल है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मुख्य विशेषता दूसरे देशों की घरेलू कंपनियों को अपने प्रबंध में लेना या प्रबंध के उद्देश्य से पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियों बनाने से है। इस तरह के निवेश में उद्यम का पूरा जोखिम विदेशी निवेशक ही उठाता है और विदेशी निवेशक उद्यम के पूरे लाभ या हानि के लिए ज़िम्मेदार होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक अन्य रूप विदेशी सहयोग है। विदेशी सहयोग में विदेशी और घरेलू उद्यमी मिलकर संयुक्त उद्यम स्थापित करते है। यह निम्न प्रकार का होता हैः

(**i**) विदेशी निजी कंपनियों का घरेलू निजी कंपनियों के साथ सहयोग

(**ii**) विदेशी निजी कंपनियों का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग

(**iii**) विदेशी सरकार का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग।

(2) **पोर्टफोलियों निवेशः**—इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक, विदेशी कंपनियां या विदेशी संस्थागत निवेशक इकाई का प्रबंध अपने हाथों में नहीं लेते, बल्कि उस इकाई का प्रबंध एंव नियंत्रण घरेलू देश पर ही छोड़ दिया जाता है। यदि यह निवेश ऋणपत्रों में किया जाए तो विदेशी निवेशक को एक निश्चित ब्याज मिलता है और यदि यह निवेश अंशों में किया जाए तो निश्चित लाभांश की कोई गारंटी नहीं होती। पोर्टफोलियो निवेश में निवेशकर्ता प्रबंध में भाग नहीं लेता है। पोर्टफोलियों निवेश का एक अन्य रूप घरेलू कंपनियों द्वारा विदेशी पूंजी बाजारों में विश्व जमा प्राप्तियां, अमेरिकन जमा प्राप्तियां, या विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्डों को निर्गमित करना है। इस तरह से इन को निर्गमित करके विभिन्न देशो की कंपनियां विदेशी पूंजी प्राप्त करती है। कपंनियों को कुछ शर्तें पूरी करने पर विदेशी पूंजी बाजारों में यूरो इशु निर्गमित करने की अनुमति है। यूरो इशु से हमारा अभिप्राय भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशी पूंजी बाजारों से पूंजी एकत्रित करने से है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा पोर्टफोलियों निवेश में मुख्य अंतर यह है कि प्रत्यक्ष निवेश की दशा में विदेशी कंपनी उस उद्यम का प्रबंध भी करती है, जबकि पोर्टफोलियों निवेश में ये केवल पूंजी का निवेश करती है, प्रबंध नहीं करती। इसके अलावा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को दीर्घकालीन लाभ कमाने के उद्देश्य से निवेशित किया जाता है, क्योंकि इन निवेशों को आसानी से बेचा नही जा सकता। इसलिए कुछ दीर्घकालीन तत्व जैसे राजनीतिक स्थिरता, देश की औद्योगिक व निवेश नीति, अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियां, मांग का स्तर आदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में किए जाते हैं, जिन्हें शेयर बाजारों में आसानी से बेचा जा सकता है।

विश्व के विभिन्न देशों में विदेशी निवेश का योगदान बढ़ता जा रहा है। विश्व के विभिन्न देशों की उदार निवेश नीति के कारण विदेशी निवेश में तेजी आई है। उदाहरण के तौर पर, अगस्त 1991 से फरवरी 2012 तक भारतीय सरकार ने 6,78,011 करोड़ रू. के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्वीकृति दी।

13.3 विदेशी देशों में विदेशी पूंजी/विदेशी निवेश की आवश्यकता

भारत के भूतपूर्व उद्योग मंत्री, ''विदेशी निवेश केवल पूंजी का स्टॉक नहीं है, बल्कि यह वह साधन है जो आधुनिक तकनीक, प्रबंधकीय ज्ञान, रोज़गार के अवसर तथा भारत में उत्पादित वस्तुओं के लिए नया बाजार उपलब्ध कराता है। इनके अतिरिक्त यह हमारे लिए आवश्यक है, क्योंकि हमारे देश मे निवेश की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे देश में निवेश की आवश्यकता से बचत कम है। बचत तथा निवेश के इस अंतर को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा पूरा किया जा सकता है।'' मेजबान देशों के आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित कारणों से विदेशी निवेश की आवश्यकता होती हैः

1. घरेलू निवेश के साथ मिलकर, अर्थव्यवस्था में कुल निवेश में वृद्धि करना।

2. आधारभूत उद्योगों को विकसित करना।
3. अधोसंरचना का विकास करना।
4. प्रतिकूल भुगतान शेष के कारण विदेशी मुद्रा में हुई कमी को दूर करना।
5. प्रबंधकीय तथा उद्यमशीलता योग्यता में सुधार करना।
6. प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग करना।
7. जोखिमपूर्ण तथा पूंजी प्रेरक उद्योगों को स्थापित करना।
8. तकनीक में सुधार लाना।
9. रोज़गार के अवसरों में वृद्धि करना।

अपनी प्रगति जाचिएं
प्र.1 विदेशी पूंजी का अर्थ बताए।
प्र.2 विदेशी पूंजी सहायता के प्रकार बताएं।
प्र.3 व्यापारिक ऋण से क्या तात्पर्य है।
प्र.4 विदेशी निवेश के प्रकार बताएं।

13.4 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले घटक

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतप्रर्वाह को प्रभावित करने वाले घटकों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) पूर्ति पक्षीय घटक

अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयां अन्य देशों में उपलब्ध आगतों व संसाधनों का लाभ उठाने के लिए वहां पूंजी निवेश करती है। जैसे–कम श्रम लागत, सस्ता कच्चा माल आदि। जब विदेशी प्रत्यक्ष निवेश निर्णय कच्चे माल की उपलब्धता, संभार तंत्र, कुशल मानवीय संसाधनों आदि से प्रभावित होते हैं तो उन्हें पूर्ति घटक कहा जाता है। मुख्य पूर्ति घटक निम्नलिखित हैः

(क) श्रम की कम लागत पर उपलब्धताः–विकसित देशों में श्रम लागत अधिक होती है। जबकि विकासशील देशों में जनसंख्या की अधिकता के कारण श्रम लागत कम होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां कम श्रम लागत के कारण अपनी उत्पादन इकाई को विकसित देशों से विकासशील देश में हस्तांतरित करना पसंद करती है। बहुत से उद्योगों में श्रम लागत उत्पादन लागत का मुख्य तत्व होती है। इससे कुल उत्पादन लागत कम होती है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियां विकासशील देशों में प्रत्यक्ष निवेश द्वारा अपनी सहायक कंपनियां स्थापित करती है।

टूल बाक्स – 04
प्रत्यक्ष निवेश को प्रभावित करने वाले घटक • पूर्ति पक्षीय घटक • मांग पक्षीय घटक • अन्य घटक

(ख) कच्चे माल की उपलब्धताः–बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपनी उत्पादन इकाई ऐसे देश में स्थापित करना पसंद करती है जहां अच्छी क्वालिटी का कच्चा माल कम लागत पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, जैसे– अमेरिका ने अपनी तेल शोधन इकाइयां सऊदी अरब व अन्य खाडी देशों में स्थापित की है, क्योंकि वहां कच्चा तेल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। प्रायः कच्चा माल बहुत भारी होता है तथा इनकी परिवहन लागत बहुत अधिक होती है। यदि उत्पादन आधार ऐसे स्थान पर स्थापित किया जाता है जहां कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में कम लागत पर उपलब्ध है तो इससे न

केवल परिवहन लागत में बचत होती है, बल्कि कच्चा माल भी नियमित रूप से मिलता रहता है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपना उत्पादन आधार ऐसे स्थान पर स्थापित करती है।

(ग) लंबी दूरीः—बहुत—सी बहुराष्ट्रीय कंपनियां विश्वभर में अपने उत्पाद बेचती है। यदि ये कंपनियां निर्यात रूट अपनाती है, अर्थात उत्पादन आधार एक स्थान पर केंद्रित करके अन्य सभी देशों में उत्पाद को इस स्थान से निर्यात किया जाता है, तो इससे विभिन्न देशों में लंबी दूरी के कारण परिवहन व्यय बहुत अधिक हो जाते हैं। यदि उत्पाद बहुत भारी होते हैं तो परिवहन व्यय उत्पाद मूल्य का एक मुख्य तत्व बन जाते हैं। ऐसी दशा में बहुराष्ट्रीय प्रत्यक्ष विदेशी निवेश रूट अपना कर विभिन्न देशों में उत्पादन आधार स्थापित करती है, जैसे—कोका कोला के विश्व में 150 से भी अधिक देशों में बोटलिंग प्लांट है।

(घ) कुशल कार्यबल की उपलब्धताः—कुछ उद्योगों जैसे सूचना तकनीक उद्योग में कुशल, प्रशिक्षित, पेशेवर श्रम बल जैसे सॉफ्टवेयर इंजीनियर आई टी इंजीनियर हार्डवेयर इंजीनियर की आवश्यकता होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपनी सहायक कंपनियां ऐसे स्थानों पर स्थापित करती है, जहां पेशेवर कुशल कर्मचारी तुलनात्मक रूप से कम वेतन पर उपलब्ध होते हैं, जैसे बहुत—सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी सूचना तकनीक आधारित सेवाओं का आधार भारत में स्थापित किया है, क्योंकि यहां तुलनात्मक रूप से कम वेतन पैकेज पर कुशल इंजीनियर मिल जाते हैं।

(ङ) आधुनिकतम टेक्नोलॉजी पर पहुंच बनानाः—अन्य देशों में उपलब्ध विकसित टेक्नोलॉजी का लाभ उठाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियां विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट अपनाती है। इसके लिए दो देशों की व्यावसायिक इकाइयों के मध्य सहयोग समझौते किए जाते हैं। जिसमें एक देश की कंपनी वित्त प्रदान करती है तथा दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई टेक्नोलॉजी उपलब्ध करवाती है, जैसे— अमेरिका की इकाइयां जापान की विकसित टेक्नोलॉजी पर पहुंच बनाने के लिए जापान से सहयोग समझौते करती है।

(ii) मांग पक्षीय घटक

(क) विशाल ग्राहक आधारः—बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसे देश में प्रवेश करना पसंद करती है, जहां अधिक जनसंख्या आकार के कारण ग्राहकों की संख्या अधिक होने की संभावना होती है जैसे—मैक्डोनाल्ड जो अमेरिका मूल की कंपनी है ने भारत में विशाल ग्राहक से आकर्षित होकर अपने केंद्र स्थापित किए हैं।

(ख) अंतरराष्ट्रीय छविः—कुछ अंतरराष्ट्रीय कंपनियों की छवि विश्वव्यापी होती है। इनके पास वित्तीय संसाधन भी शामिल मात्रा में होते है तथा टेक्नोलॉजी भी बहुत विकसित होती है। ऐसे बहुराष्ट्रीय कपंनिया अपनी क्षमताओं का पूर्ण लाभ उठाने के लिए विदेशों से प्रत्यक्ष निवेश द्वारा अपनी इकाईयां स्थापित करती है।

(ग) कम विपणन लागतः—यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियां निर्यात रूट अपना कर अन्य देशों में अपने उत्पाद बेचती है तो इस व्यवस्था में विपणन मध्यस्थों की कमीशन के कारण उत्पाद की कीमत बढ़ जाती है। इसके अलावा निर्यात रूट अपनाने पर विपणन मध्यस्थ उत्पादक पर हावी होते हैं। वे उत्पादक पर अपनी शर्तें थोपते हैं। परंतु यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट अपना कर विदेशी बाजारों में अपनी विपणन इकाइयां स्थापित करती है तो इससे विपणन मध्यस्थों की कमीशन का भार कम हो जाता है। उन्हें विदेशी बाजारों में विपणन मध्यस्थ व डीलर भी सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। इससे विपणन लागत कम करने में सहायता मिलती है।

(घ) बेहतर ग्राहक सेवाएंः—यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेशों में अपने उत्पाद बेचने के लिए निर्यात रूट को अपनाती है तो विदेशी ग्राहकों को विक्रय उपरांत सेवाएं लेने में अत्यधिक कठिनाई होती है। अतः वे आयायित उत्पाद खरीदने में हिचकिचाते हैं। परंतु यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेशी बाजारों में अपनी विपणन इकाई स्थापित करती है तो इससे विदेशी ग्राहकों को विक्रय उपरांत सेवाएं सरलता से प्राप्त हो जाती है। वे विदेशी उत्पाद खरीदने में हिचकिचाते नहीं है। इसके

अलावा विदेशी ग्राहकों की प्रतिक्रिया को भी समझा जा सकता है। विदेश में स्थापित विपणन इकाइयों में नियुक्त स्थायी विक्रयकर्ताओं को स्थानीय पसंद, रूचि, प्राथमिकता, फैशन आदि के बारे में अच्छी जानकारी होती है।

(ङ) कम टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएंः—बहुत से देशों में सरकार ने भुगतान शेष की समस्या के कारण आयातों पर टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएं लगा रखी है। यदि कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी निर्यात रूट द्वारा अपने उत्पाद विदेशों में बेचती है तो इसे बहुत सी टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाओं का सामना करना पड़ता है जैसे—आयात कर, आयात कोटा, आयात लाइसेंस आदि। परंतु ऐसी दशा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट अपनाने पर इन रूकावटों से बेचा जा सकता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट में एम एन सी विदेशों में उत्पादन इकाइयां स्थापित करती है। जिन पर आयात कर, आयात कोटा, लाइसेंस के प्रावधान लागू नहीं होते। इससे विदेशी बाजारों में इन उत्पादों की कीमतें कम हो जाती है तथा मांग में वृद्धि होती है।

(iii) अन्य घटक

(1) मेजबान देश की सरकार द्वारा उपलब्ध करवाए गए प्रोत्साहनः— मेजबान देश में विदेशी इकाई स्थापित होने पर विदेशी मुद्रा के प्रवाह में वृद्धि होती है। वहां रोज़गार के अवसर बढ़ते हैं। इससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। मेजबान देश की सरकार विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए इसे विभिन्न प्रोत्साहन देती है, जैसे— अनुदान, करों में छूट आदि। इन प्रोत्साहनों को प्राप्त करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियां विदेशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट अपना कर अपनी इकाइयां स्थापित करती है।

(2) मुख्य औद्योगिक ग्राहक का स्थानांतरणः—प्रायः सहायक इकाइयां अपने उत्पाद को एक या दो बड़ी औद्योगिक कंपनियों को बेचती है। यदि ये बड़ी औद्योगिक कंपनियां अपने उत्पादन आधार को किसी अन्य देश में स्थानांतरित कर देती है तो ऐसी स्थिति में इन सहायक इकाइयों को भी इन औद्योगिक कंपनियों के हस्तांतरण उत्पादन आधार पर जाना पड़ता है, क्योंकि ये सहायक इकाइयां अपने विक्रय के लिए इन बड़ी औद्योगिक कंपनियों पर ही निर्भर करता है। अतः इस स्थिति में सहायक इकाई भी विदेशी प्रत्यक्ष रूट को अपनाती है।

अपनी प्रगति जाचिएं	
प्र.5	विदेशी निवेश की दो आवश्यकताएं बताएं।
प्र.6	विदेशी निवेश के मांग पक्षीय घटक कौन—से है।
प्र.7	टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएं कौन—सी होती है।
प्र.8	भारत ने 1991 से 2012 कितने विदेशी निवेश को स्वीकृति दी है।

13.5 विदेशी निवेश के लाभ

(i) मेजबान देशों के आर्थिक विकास में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का योगदान

(1) पूंजी की उपलब्धताः—विश्व के बहुत से देशों में पूंजी की कमी है। विकास की गति को तीव्र करने के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। विदेशी पंजी ने इस कमी को पूरा किया है। अतएव पूंजी की उपलब्धता को आवश्यकतानुसार बढ़ाने में विदेशी पूंजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

(2) आधुनिक तकनीक की उपलब्धताः—तीव्र विकास के लिए आधुनिक तकनीक का बहुत अधिक महत्व है। परंतु कुछ देशों में उपलब्ध तकनीक पुरानी तथा अकुशल है। विदेशी पूंजी तथा सहायता के फलस्वरूप आधुनिक तकनीक प्राप्त करना संभव हो सका है। विदेशी पूंजी के साथ तकनीकी जानकारी, व्यापारिक अनुभव तथा ज्ञान भी प्राप्त होते हैं। आधुनिक तकनीक के प्रयोग से अर्थव्यवस्था में उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(3) प्राकृतिक संसाधनों का उपयोगः—विभिन्न देशों में प्राकृतिक साधन जैसे खनिज, जल संसाधन आदि पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, लेकिन पूंजी तथा तकनीकी ज्ञान के अभाव में उनका उचित उपयोग नही हो पा रहा है। विदेशी पूंजी के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग संभव हो सका है।

(4) विदेशी विनिमय की उपलब्धताः—कुछ देशों का भुगतान शेष असंतुलित है तथा निर्यात की तुलना में आयात बढ़ते जा रहे हैं। इसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय की बहुत कमी महसूस होती है। विदेशी पूंजी के कारण विनिमय की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। इससे भुगतान शेष की समस्या के समाधान में सहायता मिली है।

(5) पूंजीगत पदार्थों की उपलब्धताः—विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को अपने उद्योगीकरण की विस्तार करने के लिए विदेशों से पूंजीगत पदार्थों जैसे मशीनों, विभिन्न संयत्रों का आयात करना आवश्यक हो जाता है। परंतु विदेशी विनिमय की कमी के कारण इन आवश्यक पदार्थों के आयात में कठिनाई उत्पन्न होती है। विदेशी पूंजी इस कठिनाई का समाधान करके आयायित पूंजी पदार्थो की उपलब्धता में सहायक सिद्ध हुई है।

(6) जोखिम वाली पूंजी की उपलब्धताः—घरेलू निजी निवेशक आधारभूत उद्योगों तथा नए क्षेत्रों में जहां जोखिम अधिक होता है। पूंजी निवेश करना पसंद नहीं करते। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश जोखिम वाले क्षेत्रों में प्रवेश करके इस कमी को पूरा कर रहे हैं। विदेशी पूंजी के फलस्वरूप आधारभूत एवं अधिक जोखिम वाले उद्योगों, जैसे— इस्पात उद्योग, कोयला उद्योग, तेल शोधन उद्योग आदि का विकास हुआ है।

(7) आर्थिक और सामाजिक उपरि पूंजी की उपलब्धताः—कुछ देशों में आर्थिक तथा सामाजिक उपरि पूंजी जैसे—रेलों, सडकों, नहरों, ऊर्जा, संचार व्यवस्था की उपलब्धता अपर्याप्त है। विदेशी पूंजी इन परियोजनाओं के विकास में सहायक सिद्ध हुई। इसका इन देशों की कृषि एवं उद्योगों के विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सकी है।

(8) रोज़गार में वृद्धिः—विदेशी निवेश तथा विदेशी सहयोग की सहायता मे मेजबान देशों में बहुत सी औद्योगिक इकाइयां लगी है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने बहुत से देशों में अपनी शाखाएं, कंपनियां लगाई है। इन सबसे मेजबान देशों में रोज़गार के अवसरों में वृद्धि हुई है।

(9) मुद्रा स्फीति में कमीः—विदेशी पूंजी के फलस्वरूप देश में आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा में आयात करना संभव हुआ है। इससे इन वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होती है तथा मुद्रा स्फीति की दर में कमी आती है। विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह के फलस्वरूप देश के उत्पादन में वृद्धि हुई है तथा मांग के बढ़ने के बावजूद कीमतों में अधिक वृद्धि नही हुई है।

(10) निर्यात संवर्धन में सहायकः—कुछ देशों के निर्यात उसके द्वारा किए जाने वाले आयात की तुलना में कम है। इसलिए निर्यात में वृद्धि की जानी आवश्यक है। निर्यात में वृद्धि करने के लिए विदेशी पूंजी का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। मेजबान देश की सरकार कई विदेशी कंपनियों को देश में कारखाने स्थापित करने की स्वीकृति इसी शर्त पर देती है कि वे अपने उत्पादन के कुछ प्रतिशत हिस्से का निर्यात करेंगे। इस प्रकार विदेशी पूंजी निर्यात वृद्धि में सहायक सिद्ध हुई है।

(11) आधुनिकतम प्रबंध कौशल का ज्ञानः—प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अपने साथ मूल देश के आधुनिकतम प्रबंध कौशल को भी मेजबान देश में लेकर आता है। मेजबान देश के प्रबंधक मूल देश के प्रबंधकों, तकनीकी विशेषज्ञों मे संपर्क में आते है तथा वे उनसे उनके प्रबंध कौशल कार्य शैली, तकनीकी ज्ञान से अवगत होते हैं। इससे उनकी सोच व दृष्टिकोण अधिक व्यापक हो जाते है। मेजबान देश के वितरक, पूर्तिकर्ता, विपणन मध्यस्थ भी प्रबंध विशेषज्ञों से काम करने के बेहतर तरीके सीखते हैं।

(12) प्रतिस्पर्धा को बढ़ावाः—प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मेजबान देश में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलता है। एम एन सी के उत्पाद मेजबान देश के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से कीमतों में गिरावट आती है, जैसे— भारत से दूर संचार उद्योग में विदेशी उत्पादों/सेवाओं जैसे

वोडाफोन, नोकिया के प्रवेश से इस उद्योग में प्रतिस्पर्धा में बहुत वृद्धि हुई है। इससे भारतीय उपभोक्ताओं को बहुत लाभ हुआ है, क्योंकि अब घरेलू कंपनियों ने भी दूरसंचार सेवाओं में बहुत सुधार किया है तथा अपने उत्पादों/सेवाओं की कीमतें कम दी है। विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से उपभोक्ता वर्ग के कल्याण में वृद्धि हुई है।

(13) आर्थिक विकास को बढ़ावाः—बहुराष्ट्रीय कंपनियां कम श्रम लागत व कच्चे माल की कम लागत के कारण अपना उत्पादन आधार मेजबान देश में हस्तांतरित करती हैं। उत्पादन आधार की स्थापना से सहायक इकाइयां भी आस पास के क्षेत्रों में स्थापित होने लगती हैं। इससे मेजबान देश में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिलता है, जिससे आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है।

(ii) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मूल देश को लाभ

(1) विदेशी विनिमय का प्रवाहः—यद्यपि विदेशी सहायक कंपनी की स्थापना करने में एम.एन.सी. को प्रारंभ में बहुत अधिक निवेश करना पड़ता है, परंतु स्थापित होने के बाद सहायक कंपनी मूल देश के लिए बहुत लाभप्रद हो सकती है। मूल कंपनी को सहायक कंपनी से लाभ, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, पूंजी पर ब्याज आदि मिलते रहते हैं। दीर्घकाल में यह आय प्रारंभिक निवेश से भी कहीं अधिक हो जाती है। मूल देश में आय का यह प्रवाह विदेशी मुद्रा में होता है। इससे मूल देश में विदेशी विनिमय के अंतर्प्रवाह में बहुत वृद्धि होती है। इससे मूल देश की भुगतान शेष की समस्या के समाधान में सहायता मिलती है, जैसे—यूनीलीवर ने विदेशों में सहायक कंपनियां स्थापित करके लाभ, पूंजी पर ब्याज, रॉयल्टी आदि के रूप में बहुतरा धन कमाया है।

(2) पूंजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात में वृद्धिः—बहुराष्ट्रीय कंपनी मेजबान देश में स्थापित अपनी सहायक कंपनी को अपनी विकसित टेक्नोलॉजी उपलब्ध करवाती है। सहायक कंपनी इस टेक्नोलॉजी से मेल खाते पूंजी उत्पाद व मध्यवर्ती उत्पाद बहुर्राष्ट्रीय कंपनी के मूल देश से ही आयात करती है। इससे मूल देश के पूंजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात में वृद्धि होती है। इससे मूल देश में पूंजी उत्पाद बनाने वाले व मध्यवर्ती उत्पाद बनाने वाले उद्योगों के विकास को बढ़ावा मिलता है। औद्योगिकीकरण से मूल देश में रोज़गार के अवसर बढ़ते हैं। पूंजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात से मूल देश में विदेशी विनिमय के अंतर्प्रवाह में वृद्धि होती है।

(3) विपरीत ज्ञान हस्तांतरणः—जब कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी मेजबान देश में अपनी सहायक कंपनी स्थापित करती है तो इसके उत्प्रवासी मेजबान देश के प्रबंधकों, तकनीकी विशेषज्ञों के संपर्क में आते है तथा उनकी कार्यशैली की अच्छी बातों को सीखते हैं, जैसे—अमेरिका में आधारित जनरल मोटर्ज ने जापान में अपने आटोमोबाइल विनिर्माण उद्योग स्थापित किए। इससे उन्हें जापान की ऑटोमोबाइल विनिर्माण संबंधित टेक्नोलॉजी, कार्यशैली, अनुभव आदि को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इस ज्ञान से उन्होंने अमेरिका में स्थापित अपने ऑटोमोबाइल विनिर्माण उद्योग में बहुत सुधार किया है।

13.6 विदेशी निवेश की सीमाएं व दोष

(i) मेजबान देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश/विदेशी निवेश की सीमाएं या दोष

(1) प्रतिस्पर्धा पर कुप्रभावः—विकासशील देशों व अल्पविकसित देशों में स्थापित विदेशी कंपनियां मेजबान देश की घरेलू औद्योगिक इकाइयों को कुप्रभावित करती है। ये घरेलू इकाइयां विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उच्च टेक्नोलॉजी, प्रबंधकीय श्रेष्ठता, विश्व व्यापी ब्रांड छवि सूदृढ़ वित्तीय आधार से प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाती। इसके अलावा विकासशील व अल्पविकसित देशों के लोग विदेशी ब्रांडों को खरीदना बड़े गर्व की बात मानते हैं। इससे घरेलू इकाइयों को हानि होती है। कई बार बहुराष्ट्रीय कंपनियां मेजबान देश की घरेलू कंपनियों को अधिग्रहण करके मेजबान देश में एकाधिकार वाली स्थिति उत्पन्न करके प्रतिस्पर्धा को बहुत कम कर देती है,

जैसे–भारत में हिदुस्तान यूनीलीवर (जो विदेशी कंपनी यूनीलीवर की सहायक कंपनी है) ने बहुत सी भारतीय घरेलू कंपनियों का अधिग्रहण कर लिया है।

(2) विदेशों पर निर्भरता में वृद्धिः–विदेशी निवेश के कारण विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि होती है। विदेशों से जो मशीनें, कच्चा माल, तकनीक आदि आयात की जाती है। उनके कल पूर्जों, टेक्नीशियन्स आदि के लिए उन्हीं देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। अर्थात विदेशी तकनीक के रख–रखाव के लिए भी हमें विदेशों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(3) विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाहः–मूल देश में स्थापित सहायक कंपनी को रॉयल्टी, तकनीकी फीस, लाभ, पूंजी पर ब्याज आदि के रूप में मूल कंपनी को भुगतान विदेशी मुद्रा में करना पडता है। दीर्घकाल में यह भुगतान निवेश की गई पूंजी से कहीं अधिक होता है इससे मेजबान देश में विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह बढ़ जाता है। इसके अलावा मेजबान देश को मूल देश से पूंजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों का भी आयात करना पड़ता है, क्योंकि घरेलू पूंजी उत्पाद व मध्यवर्ती उत्पाद विदेशी टेक्नोलॉजी से मेल नहीं खाते। इससे भी विदेशी विनिमय के बाहरी प्रवाह में वृद्धि होती है।

(4) आंतरिक वितीय साधनों का अपर्याप्त विकासः–विदेशी पूंजी का आंतरिक वित्तीय साधनों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भारत में नियोजन के प्रारंभिक काल में आंतरिक बचतों की दर बहुत कम रही। इसका कारण विदेशी सहायता का उपलब्ध होना था। देश में आंतरिक बचत बढ़ाने के पूर्ण प्रयास नहीं किए गए क्योंकि जरूरत पड़ने पर विदेशी पूंजी का ही प्रयोग किया जाता है।

(5) अनिश्चितताः–विदेशी निवेश के संबंध में सदैव अनिश्चितता बनी रही है। यह कभी भी विदेशों को वापिस जा सकती है। विदेशी पूंजी कभी भी किसी अर्थव्यवस्था का स्थायी अंग नहीं बन सकती। आपत्तिकाल में जब विदेशी पूंजी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, इसकी उपलब्धता बहुत कम जाती है। वैश्विक वित्तीय संकट की दशा में विदेशी संस्थागत निवेशक पोर्टफोलियों निवेश को वापस ले जाते हैं। इससे घरेलू अर्थव्यवस्था में पूंजी की कमी हो जाती है, शेयरों की कीमतों में गिरावट आ जाती है, जिससे शेयर बाजार संकट आ जाता है। इसके अलावा इससे घरेलू करेंसी के बाहरी मूल्य मे कमी आ जाती है, क्योंकि विदेशी संस्थागत निवेशक अपनी पूंजी को अपने मूल देश में वापस ले जाते हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की मांग बढ़ जाती है। वर्ष 2008–09 में ऐसी स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था में तथा विश्व की अधिकतर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आई। इस तरह पोर्टफोलियों निवेश केवल अच्छे समय का साथी है तथा बहुत अनिश्चित है।

(6) घरेलू उत्पादकों के लिए हानिकारकः–विदेशी पूंजी के द्वारा स्थापित उद्योगों के कारण घरेलू उत्पादकों को हानि उठानी पड़ सकती है। वे विदेशी उद्यमों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते। उनके लाभों में कमी होती है। इसका उनके विकास पर प्रतिकूल पड़ता है। कई बार उन्हें उत्पादन ही बंद करना पड़ता है।

(7) असंतुलित विकासः–विभिन्न देशों में विदेशी पूंजी का निवेश उन्हीं उद्योगों में किया गया है जिनमें लाभ की मात्रा अधिक है। इसके फलस्वरूप मेजबान देशों में आवश्यक तथा आधारभूत उद्योगों का उचित विकास नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप मेजबान देशों का औद्योगिक विकास संतुलित ढंग से नहीं हो पाया।

(8) घरेलू तकनीक के विकास में बाधाः–विदेशी पूंजी के साथ–साथ विदेशी तकनीक भी आयात की जाती है। इसका घरेलू तकनीक तथा अनुसंधानों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब हम कोई तकनीक विदेशों से आयात कर लेते हैं तो उस तकनीक का घरेलू उत्पादन, अनुसंधान व विकास छोड़ देते हैं। इससे स्वदेशी आधुनिक तकनीक का विकास नहीं हो पाता। इससे मेजबान देशों के उद्योग विदेशों पर निर्भर हो जाते हैं।

(ii) मूल देश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से नुकसान

मूल देश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से निम्न प्रकार से हानि होती हैः

(1) भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभावः—(i) मूल देश मेजबान देश में प्रारंभ में पूंजी की बहुत बड़ी राशि निवेश करता है। इस विशाल पूंजी निवेश से विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह होता है, जो भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। (ii) यदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट ने निर्यात को प्रतिस्थापित किया है, तो इससे मूल देश के निर्यातों में कमी आती है। पहली स्थिति में मूल देश मेजबान देश को निर्यात करके विदेशी विनिमय अर्जित करता था, परंतु अब विदेशी पूंजी के बाहरी प्रवाह द्वारा मेजबान देश में विनिर्माण इकाई स्थापित की जाती है। (iii) यदि मेजबान देश में कम श्रम लागत व कच्चे माल की कम लागत के कारण विनिर्माण इकाई मेजबान देश में स्थापित की गई है, तो ऐसा संभव है कि मेजबान देश में स्थापित निर्माणी इकाई उत्पादों को मूल देश में भी बेचे। अर्थात मूल देश भी विदेशी सहायक कंपनी से अपने लिए उत्पाद आयात करे। इससे मूल देश के आयात बढ़ जाते हैं जो भुगतान शेष को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।

(2) रोजगार सृजन पर प्रतिकूल प्रभावः—यदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट ने निर्यात रूट को प्रतिस्थापित किया है, तो इससे मूल देश में रोज़गार अवसरों में कमी आती है पहले ये उत्पाद मूल देश में बनाए जाते थे, जिससे मूल देश में रोजगार का सृजन होता था, परंतु विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अपनाने पर निर्माणी क्रियाएं मेजबान देश में हस्तांतरित हो जाती हैं, इससे रोज़गार सृजन भी मेजबान देश मे ही होता है। अब विकसित देश विदेशी प्रत्यक्ष निवेश व आउटसोर्सिंग को विकसित देशों में बेरोज़गारी के लिए दोष देते हैं।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का नियमन

मेजबान देश व मूल देश की सरकारें तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को नियमित करती है। मेजबान देश की सरकार का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रति दृष्टिकोण धनात्मक भी हो सकता है तथा नकारात्मक भी हो सकता है। यदि मेजबान देश की सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रति सहायतापूर्ण व उदार दृष्टिकोण अपनाती है। दूसरी ओर यदि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के आगमन से घरेलू अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव, धनात्मक प्रभाव से अधिक होगें तो सरकार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रति प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण अपनाती है। कई बार, कुछ विदेशी व्यावसायिक इकाइयां प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का रूट केवल इसलिए अपनाती है ताकि निर्यात रूट पर लगने वाले टैरिफ से बचा जा सके। तब मेजबान देश की सरकार ऐसी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को अनुमति नहीं देती। इसके अलावा मूल देश की सरकार भी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करती है। यदि मूल देश की आर्थिक स्थितियां, जैसे—बचत दर, निवेश दर, पूंजी निर्माण दर, विदेशी मुद्रा की उपलब्धता आदि सुदृढ़ है तथा मेजबान देश व मूल देश के मध्य राजनीतिक संबंध मधुर हैं तो मूल देश की सरकार का विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह व बाहरी प्रवाह को नियमित करते हैं। इसके अलावा, वैश्विक स्तर पर कार्यरत अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं, जैसे—विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड को नियमित करते हैं। विश्व व्यापार संगठन ने सदस्य देशों के मध्य विदेशी निवेश के प्रवाह को बढ़ाने के लिए व्यापार संबंधी निवेश उपाय किए है। इसके अंतर्गत विदेशी निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए विशेष उपाय किए गए है। निवेश पर लाभ, लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, मूल पूंजी आदि के प्रत्यावर्तन पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त किया गया है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के नियमन के प्रारूप / तकनीकें

(1) स्वामित्वः—कुछ देशों में सरकार, विदेशी निवेशकों के समता अंशों के स्वामित्व पर अधिकतम सीमा निर्धारित कर देती है। प्रायः यह अधिकतम सीमा 26 प्रतिशत, 49 प्रतिशत, 51 प्रतिशत, 74 प्रतिशत आदि होती है। कुछ व्यूहरचनात्मक क्षेत्र, जो देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है उन पर वहां की सरकार विदेशी निवेशकों के स्वामित्व पर रोक लगा देती है। अन्य क्षेत्रों में से जो कम महत्वपूर्ण है वहां विदेशी निवेशकों के समता अंशों के स्वामित्व की सीमा अधिक होती है जैसे—100 प्रतिशत, 74 प्रतिशत, 51 प्रतिशत, आदि। जहां सरकार ने कठोर दृष्टिकोण अपनाना , होता है, वहां यह सीमा 26 प्रतिशत, 49 प्रतिशत या मनाही हो सकती है।

(2) प्रत्यावर्तन पर प्रतिबंधः—यदि मेजबान देश की सरकार का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रति कठोर दृष्टिकोण है तो विदेशी निवेशकों द्वारा लाभ, लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, मूल पूंजी आदि अपने मूल देश में वापस ले जाने पर प्रतिबंध लगाए जाते हैं। यदि मेजबान देश की सरकार का दृष्टिकोण उदार है, तो प्रत्यावर्तन की स्वतंत्रता होती है।

(3) निर्यात की अनिवार्यताः—कुछ मेजबान देशों की सरकार विदेशी कंपनियों पर अनिवार्य निर्यात की बाध्यता लगा देती हैं। अर्थात इन्हें मेजबान देश में किए गए कुल उत्पादन का निश्चित प्रतिशत मेजबान देश में न बेचकर निर्यात करना होता है। इससे मेजबान देश के निर्यात बढ़ते हैं तथा घरेलू व्यावसायिक इकाइयों को भी इन विदेशी कंपनियों से कम खतरा होता है, क्योंकि ये विदेशी कंपनियां अपना सारा उत्पादन मेजबान देश के बाजार में नहीं बेचतीं।

(4) वित्तीय प्रोत्साहनः—कुछ देशों की सरकार विदेशी निवेश को मेजबान देश में ऐच्छिक स्थानों व ऐच्छिक क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए विभिन्न वित्तीय प्रोत्साहन देती है, करों में रियायतें, अनुदान, ऋणों पर ब्याज की कम दर आदि। इसी तरह यदि सरकार घरेलू निवेशकों को विदेशों में निवेश के लिए प्रोत्साहित करना चाहती है तो यह ऐसे निवेश के लिए भी विभिन्न प्रोत्साहन देती है, जैसे— विदेशों में किए निवेश पर गारंटी आवरण, बीमा आवरण, लाभांश, लाभ, रॉयल्टी, तकनीकी फीस के देश में अंतर्प्रवाह पर कर में छूट आदि।

टूल बाक्स — 05
प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की तकनीकें • स्वामित्व • प्रत्यावर्तन पर प्रतिबंध • निर्यात की अनिवार्यता • वित्तीय प्रोत्साहन

13.7 अच्छे निवेश वातावरण के लिए सुझाव

विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए यह जरूरी है कि देश में निवेश वातावरण को उदार बनाया जाए और विदेशी निवेश में आने वाली रूकावटों को दूर किया जाए। आज सभी विकासशील देशों में से चीन, सबसे अधिक मात्रा में विदेशी पूंजी को आकर्षित कर रहा है। इसके मुख्य कारण है—वहां का अच्छा निवेश—वातावरण, बड़ा घरेलू बाजार, बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति आय, औद्योगिक अधोसंरचना का विकास, अच्छे औद्योगिक संबंध आदि शामिल है। निम्न सुधार करके निवेश वातावरण को अच्छा बनाया जा सकता है।

1. सरकार को विदेश निवेश नीति को सरल एवं स्पष्ट करना चाहिए, और विदेशी निवेशक के हित को ध्यान रखना चाहिये। विदेशी निवेशक कुछ देशों के निवेश वातावरण को काफ़ी जटिल मानते हैं। उदाहरण के लिए, मोटोरोला कंपनी ने अपनी कुछ परियोजनाओं ंजिन्हें भारत के लिए नियोजित किया गया था। उन्हें भारत की जगह चीन में लगाया, क्योंकि मोटोरोला कंपनी को चीन की सरकार का विदेशी पूंजी के प्रति दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट लगा।
2. विकासशील देशों में आधारभूत संरचना की कमी, विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने में बहुत बड़ी रूकावट है इसलिए जरूरी है कि इन देशों में आधारभूत संरचना के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाए।
3. खराब औद्योगिक संबंध भी विदेशी निवेशक को आकर्षित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। कुछ देशों में हड़ताल, तालाबंदी जैसी समस्याएं अक्सर देखने का मिलती है। अतः जरूरी

है कि इन बिगडते औद्योगिक संबंधों की ठीक किया जाए, ताकि विदेशी निवेशक इन देशों मे उद्योग लगाने के लिए आकर्षित हो।

4. पूंजी बाजार की कुशलता, अनियमितता तथा अनुशासनहीनता भी विदेशी निवेश को आकर्षित करने में बाधा हैं। स्टॉक एक्सचेज के घोटालों से भी विदेशी निवेशक निरूत्साहित होते हैं। अतः यह जरूरी है कि वित्तीय ढांचे को सुदृढ़ बनाया जाए और पूंजी बाजारों को कार्यकुशल बनाया जाए तथा सरकार इस बात का ध्यान दे कि पूंजी बाजारों में घोटाले न हो।
5. राजनीतिक स्थिरता भी विदेशी निवेशक को आकर्षित करने में बाधा है। सरकार के बदलने से आर्थिक नीतियों में बार–बार बदलाव आने की संभावना रहती है। ऐसे वातावरण में विदेशी निवेशक अपने निवेश को सुरक्षित नहीं समझता। अतः विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए राजनीतिक स्थिरता अनिवार्य है।

विकासशील देशों में आर्थिक विकास के लिए विदेशी पूंजी को बढ़ावा देना जरूरी है। लेकिन साथ में यह भी जरूरी है कि विदेशी निवेश पर नियंत्रण रखा जाए। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जैसे तेल निकालना, तेल शोधन, पेट्रोकेमिकल्स ऊर्जा उत्पादन, दूरसंचार पर्यटन आदि में विदेशी निवेश को बढ़ावा देना चाहिए। ऐसा करने से विकासशील देशों के निर्यात बढ़ेंगे आयात कम होंगे तथा भुगतान शेष का घाटा कम होगा। और इससे लघु उद्योगों को भी नुकसान नहीं होगा। उपभोग वस्तुओं के स्थान पर विदेशी निवेश को पूंजी प्रधान उद्योग लगाने के लिए आकर्षित करना चाहिए। इससे इन देशों के आर्थिक विकास में तेजी आएगी।

अपनी प्रगति जाचिएं	
प्र.9	मेजबान देशों को विदेशी निवेश से होने वाले दो लाभ बताएं।
प्र.10	प्राकृतिक संसाधनों व विदेशी निवेश का क्या संबंध हो सकता है?
प्र.11	प्रतिस्पर्धा को विदेशी निवेश द्वारा बढावा किस प्रकार मिलता है?
प्र.12	मूल देशों को प्रत्यक्ष निवेश से कौन–कौन से नुकसान हो सकते है?

13.8 विदेश नीति, 1991 / भारत की नई विदेशी निवेश नीति

1991 की विदेशी पूंजी नीति या नई विदेशी निवेश को उदार बना दिया गया तथा विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह लगे प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया। पहले विदेशी पूंजी हिस्सेदारी 40 प्रतिशत तक सीमित थी, अब इसे बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया है। 1991 से पहले सभी विदेशी निवेशों तथा तकनीकी सहयोगों को पूर्व अनुमति लेनी होती थी पर नई निवेश नीति में इसे स्वतः स्वीकृति दे दी गई है। विदेशी निवेश की स्वतः स्वीकृति में सरकार या रिजर्व बैंक से किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं पडती। निवेशकों को केवल निवेश करने के 30 दिनों के बीच निवेश की सूचना, रिजर्व बैंक को देनी पडती है। पहले विदेशी पूंजी का प्रयोग पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण तथा उच्च प्राथमिकताओं वाले उद्योगों तक सीमित था लेकिन अब इसे लगभग हर तरह के उद्योगों के लिए खुली छूट दे दी गई है। इसके अलावा अधिक विदेशी पूंजी आकर्षित करने के लिए विदेशी पूंजी को बहुत सी रियायतें तथा प्रोत्साहन दिए गए है। अब विदेशी निवेश नीति को अधिक व्यावहारिक और सरल बना दिया गया है। नई विदेश पूंजी नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैः

(1) उदारवादी दृष्टिकोणः–वर्तमान निवेश नीति से विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह को बढ़ावा दिया जाएगा। अब विदेशी पूंजी का प्रयोग हर तरह के उद्योगों के लिए खोल दिया गया है। इस निवेश नीति में विदेशी निवेशकों को निवेश करने के लिए स्वतः स्वीकृति दे दी गई। है अर्थात उन्हें निवेश करने से पहले अब सरकारी अनुमति नहीं लेनी पडती। विदेशी पूंजी की भागीदारी को भी बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया है अर्थात अब विदेशी निवेशक किसी इकाई के 100

प्रतिशत अंश खरीद सकते हैं। इन सभी प्रावधानों से स्पष्ट है कि नई निवेश नीति में सरकार का दृष्टिकोण काफ़ी उदार है।

(2) विदेशी पूंजी के विभिन्न रूपः—पहले विदेशी पूंजी के मुख्य प्रारूप विदेशी सहायता और व्यापारिक ऋण थे, लेकिन अब इसके अनेक प्रारूप है, जैसे—

(क) विदेशी सहयोगः—विदेशी सहयोग से हमारा अभिप्राय किसी इकाई को भारत में विदेशी कंपनियों तथा भारतीय उद्यमियों द्वारा मिलकर चलाने से है।

(ख) विदेशी समता हिस्सेदारीः—विदेशी समता हिस्सेदारी में विदेशी निवेशकों द्वारा भारतीय उद्यमों के समता अंशों में निवेश किया जाता है। इसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा पोर्टफोलियों निवेश को शामिल किया जाता है।

(ग) विदेशी संस्थागत निवेशकों, अनिवासी भारतीयों तथा विदेशी निवेशकों द्वारा निवेशः—इन सभी को भारतीय पूंजी बाजार से अंशों, ऋणपत्रों तथा बॉण्डों को खरीदने की अनुमति दे दी गई है।

(घ) भारतीय निगम क्षेत्र द्वारा विदेशी बाजारों में प्रतिभूतियां जारी करनाः—कुछ शर्तें पूरी करने पर भारतीय कंपनियों को विदेशी पूंजी बाजारों में जी.डी.आर., ए.डी.आर. तथा एफ.सी.सी.बी. जारी करने की अनुमति दे दी गई है। इस तरह की प्रतिभूतियों को निर्गमित करने से भारतीय निगम क्षेत्र, विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह में सहायक होता है।

(3) अनिवासी भारतीयों को कर में रियायतेंः— नई विदेशी नीति में अनिवासी भारतीयों से अधिक धन भारत में आकर्षित करने के लिए उन्हें कर से रियायतें दी गई है, जैसे—कुछ क्षेत्रों में नई औद्योगिक इकाई लगाने पर उन्हें निश्चित अवधि के लिए कर मुक्त करना या कर की दर कम करना, पूंजी लाभ पर कर की दर कम करना इत्यादि।

(4) तकनीकी सहयोगः—तकनीक के अंतरप्रवाह को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी सहयोग को विभिन्न रियायतें दी गई है। नई नीति के अनुसार विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा देश में विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण कराने के लिए विदेशी मुद्रा भुगतान की इजाजत लेने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई है।

(5) बोर्डों का गठनः—इस नीति में यह प्रावधान भी किया गया है कि चुनिंदा क्षेत्रों में सीधे विदेशी पूंजी निवेश के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्डों का गठन किया जाएगा जो भारत में उपक्रम लगाने के बारे में बड़ी अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के साथ सारी बातें तय करेगा। यह एक विशेष कार्यक्रम के अंतर्गत किया जाएगा, ताकि भारी मात्रा में विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित किया जा सके तथा आधुनिकतम तकनीक प्राप्त की जा सके।

(6) लघु उद्योगों में विदेशी निवेशः—नई लघु औद्योगिक नीति के अनुसार विदेशी उद्यमकर्ता बिना किसी इजाजत के लघु उद्योगों मे उनकी कुल पूंजी का 24 प्रतिशत तक निवेश कर सकते हैं।

(7) संयुक्त उद्यमः—एक जनवरी सन 1997 से भारतीय तथा विदेशी उद्योगपतियों द्वारा आरंभ किए जाने वाले संयुक्त उद्यमों की शर्तों को अधिक सरल तथा उदारवादी बना दिया गया है। विदेशी उद्योगपति अब संयुक्त उद्यमों में 51 प्रतिशत से अधिक शेयरों का स्वामित्व प्राप्त कर सकते है।

(8) पूर्ण स्वामित्व वाले विदेशी उद्यमः—नई विदेशी पूंजी नीति के अनुसार यदि विदेशी कंपनियां भारत में स्थित संयुक्त उद्यमों का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करना चाहती है या पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां स्थापित करना चाहती है तो उन्हें इसके लिए पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(9) अधोसंरचना के विकास के लिए विदेशी पूंजीः—देश में अधोसंरचना, जैसे—सड़कें, बिजली, टेलीकम्यूनिकेशन्स, बंदरगाहों आदि के विकास के लिए सरकार ने विदेशी पूंजी को नई रियायतें प्रदान की है। इन क्षेत्रों में विदेशी पूंजी निवेशकर्ताओं को कई सुविधाएं प्रदान की जाएगी। उन्हें अपनी आय विदेशों में विदेशी मुद्रा के रूप में हस्तांतरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। आधारभूत अधोसंरचना के विकास के लिए विदेशी पूंजी की सहायता से संयुक्त उद्यम भी लगाए जा सकते है। इनके लिए विदेशी पूंजी की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गई है। उदाहरण के लिए, ऊर्जा, तेल निकालना, तेल का साफ करना, सड़कों, बंदरगाहों, हवाईअड्डों में 100

प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई है। बैंकिग तथा दूरसंचार क्षेत्र में 74 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई है।

(10) **विदेशी निवेश लागूकरण प्राधिकरणः**—इस प्राधिकरण की स्थापना अगस्त 1999 में उद्योग मंत्रालय के अंतर्गत की गई। यह प्राधिकरण इस बात पर ध्यान देगा कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुमोदनों को शीघ्रता से वास्तविक अंतरप्रवाह में बदला जाए। इसके लिए विदेशी विनियोग संवर्धन बोर्ड की स्थापना की गई है। यह प्राधिकरण विदेशी निवेशकों की समस्याओं का समाधान करता है। इनका कार्य अधिक विदेशी निवेश आकर्षित करना है।

(11) **उच्च तकनीक तथा उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगः**—इन क्षेत्रों में निवेश को बढ़ावा देने के लिए स्वतः स्वीकृति को अपनाया गया है। अर्थात उच्च तकनीक एवं उच्च प्राथमिकता क्षेत्रों में निवेश करने समय सरकार से अलग अनुमति लेना आवश्यक नहीं है। इनमें विदेशी निवेशकों की हिस्सेदारी 100 प्रतिशत तक हो सकती है तथा विदेशी निवेशकों को कभी भी पूंजी और लाभ वापिस ले जाने की अनुमति होगी। ये क्षेत्र हैं—ऊर्जा, फार्मास्यूटिकल, एयरपोर्ट, पोर्ट, सर्विस प्रोवाईडर इत्यादि।

(12) **निर्यात संवर्धनः**—निर्यात क्षेत्र में विदेशी निवेश को बढ़ाने के लिए इनमें 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दी गई है तथा कर में भी इस निवेश पर बहुत सी रियायतें दी गई है। निर्यात क्षेत्र में निर्यात प्रेरक इकाइयां, निर्यात गृहों, स्टार व्यापार गृहों को शामिल किया गया है।

(13) **विदेशी निवेशकों द्वारा विनिवेशः**—नई नीति से पहले विदेशी निवेशकों द्वारा भारत में किए गए निवेश को रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित मूल्य पर बेचना पडता था, लेकिन अब नई नीति में विदेशी निवेशकों को अपना निवेश शेयर बाजार में बाजार मूल्य पर बेचने की अनुमति दे दी गई है और ये निवेशक अपने धन का वापिस ले जा सकते हैं।

(14) **विदेशी संस्थागत निवेशकः**—पोर्टफोलियो विनियोग में विदेशी संस्थागत निवेशकों को अधिक निवेश के लिए रियायतें दी गई है। पहले ये निवेशक 24 प्रतिशत से अधिक निवेश नहीं कर सकते थे पर अब कंपनी के अंशधारियों के विशेष प्रस्ताव द्वारा अनुमति देने पर ये निवेशक किसी कंपनी में इस उद्योग के लिए निर्धारित वैधानिक ऊपरी सीमा तक निवेश कर सकते है। लेकिन एक अकेला विदेशी संस्थागत निवेशक किसी कंपनी की कुल प्रदत पूंजी का 10 प्रतिशत से अधिक निवेश नहीं कर सकता। वर्ष 2006—07 में विदेशी संस्थागत निवेशकों की पंजीकरण फीस को 5,000 डालर से बढ़ाकर 10,000 डालर कर दिया गया है। वर्ष 2011 के अंत तक भारत में पंजीकृत एफ.एल.एल की संख्या बढकर 1767 हो गई।

(15) **निवेश आयोगः**—भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह को बढावा देने के लिए दिसंबर 2004 में निवेश आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग विदेशी निवेशकों को भारत में निवेश करने के लिए प्रेरित करता है तथा उन्हें निवेश करने से संबंधित आवश्यक सहयोग देता है। यह आयोग विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में प्रस्तावों में सरकार की तरफ से लगने वाली देरी को भी कम करने का प्रयास करता है।

(16) **विदेशी निवेश के साथ उचित व्यवहारः**—सरकार ने नई नीति में स्पष्ट किया कि विदेशी निवेश के साथ कोई भेदभावपूर्ण नीति नहीं अपनाई जाएगी और उन्हें घरेलू निवेशों पर दी जाने वाली सभी रियायतें उपलब्ध होंगी।

(17) **धन वापिस ले जाने की सुविधाः**—विदेशी निवेशक अपनी पूंजी लाभांश, रॉयल्टी तकनीकी सेवाओं की फीस आदि अपने देश में लेकर जा सकते हैं। इससे विदेशी निवेश में काफ़ी तेजी आई है।

(18) **विदेशी निवेश के लिए स्वीकृतिः**—यदि किसी परियोजना में 1200 करोड रू. तक के विदेशी निवेश लगाए जाने हैं, तो इसकी स्वीकृति वित मंत्रालय के अंदर कार्यरत विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड से लेनी होगी। यदि विदेशी निवेश की राशि 1200 करोड रू. से अधिक है तो इसके लिए आर्थिक मामलों की कैबिनेट कमेटी से स्वीकृति लेनी पडती है। वर्ष 2007 में सरकार ने विदेशी पेंशन फंडों, चेरिटेबल संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय फंडों को भारत में एफ आइ आइ के रूप में पंजीकरण की अनुमति दे दी है।

संक्षेप में, भारतीय नई निवेश नीति काफी उदार है तथा विदेशी निवेशकों के पक्ष में है। इससे भारत में निवेश को बढ़ावा मिला है, लेकिन अभी भी भारत में विदेशी निवेश काफ़ी कम है। विदेशी निवेशकों का विश्वास प्राप्त करने के लिए विदेशी निवेश नीति को और भी सरल, स्पष्ट तथा उदार बनाना चाहिए।

13.9 भारत की सम्मिलित विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, 2012

औद्योगिक नीति व संवर्धन विभाग ने सम्मिलित विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति जारी की है। यह नीति 10 अप्रैल 2012 को लागू की गई है। सम्मिलित नीति में सरकार द्वारा पहले से जारी की गई सभी नीतियों/प्रेस नोटों/नियमों/पत्रों को शामिल किया गया है। इस नीति में सरकार द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से संबंधित अप्रैल 9, 2012 तक जारी की गई सभी विज्ञप्तियों को शामिल किया गया है। नई विदेशी प्रत्यक्ष नीति का मुख्य उद्देश्य सरल, स्पष्ट, पारदर्शी संयुक्त नीति द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढ़ावा देना है तथा प्रावधानों व औपचारिकताओं को कम करना है। वर्तमान नीति विदेशी निवेशकों के लिए हितकारी है, क्योंकि अब निवेशकों को केवल एक ही नीति को समझना होगा। इस नीति के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैः

(क) भारत में निवेश का मूल

(i) पाकिस्तान के नागरिकों को छोड़कर व पाकिस्तान में समामेलित इकाइयों को छोडकर अन्य किसी भी देश के नागरिक/समामेलित इकाइयां भारत की विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति के प्रावधानों के अनुसार निवेश कर सकती है।

(ii) प्रवासी निगमित इकाइयां यदि भारत में सरकारी रूट से निवेश करती है, तब इन्हें अपने निवेश से पहले भारतीय सरकार से पूर्वानुमति लेनी होगी। यदि ये इकाइयां स्वचालित रूट से निवेश करती है तो इन्हें रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेनी होगी।

(iii) विदेशी संस्थागत निवेशक भारतीय कंपनियों की पूंजी में निवेश कर सकते हैं। लेकिन एक व्यक्तिगत विदेशी संस्थागत निवेशक की अधिकतम सीमा 10 प्रतिशत तथा सभी विदेशी निवेशकों की संयुक्त अधिकतम सीमा 24 प्रतिशत होगी।

(iv) एक योग्य विदेशी निवेशक को छोड़कर किसी भारतीय कंपनी के समता अंशों में अधिकतम 5 प्रतिशत निवेश कर सकता है।

(v) विदेशी जोखिम पूंजी निवेशक के प्रावधानों के अनुसार भारतीय जोखिम पूंजी इकाइयों में निवेश कर सकते हैं।

(ख) निवेश संयंत्रों के प्रकार

(i) भारतीय कंपनियां विदेशी निवेशकों को समता अंश, पूर्ण परिवर्तनशील ऋणपत्र, पूर्ण परिवर्तनशील अधिमान अंश जारी कर सकती है। विदेशी निवेशकों से निवेश राशि प्राप्त करने के 180 दिनों के अंतर्गत पूंजी संयत्र जारी करने होंगे।

(ii) भारतीय कंपनियां विदेशी पूंजी बाजारों में विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्ड, अमेरिकन जमा प्राप्तियां, विश्व जमा प्राप्तियां जारी कर सकती है।

(ग) निवासी इकाइयों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की पात्रता

(i) भारतीय कपंनियों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(ii) साझेदार फर्मों की पूंजी में व एकल स्वामित्व इकाइयों की पूंजी में निवेश। लेकिन यह निवेश कृषि बागानों, भूमि सम्पदा या प्रिंट मीडिया में नहीं होना चाहिए।

(iii) जोखिम पूंजी कोष में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(iv) ट्रस्टों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(घ) भारतीय कंपनियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की गणना

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का तात्पर्य अप्रवासी व्यक्तियों द्वारा भारतीय कंपनियों में निवेश से है। दूसरी तरफ यदि एक ऐसी भारतीय कंपनी जिसकी पूंजी में विदेशी निवेश है, किसी अन्य भरतीय कंपनी में निवेश करती है तो इसे अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहते हैं।

12 फरवरी, 2009 को सरकार ने भारतीय कंपनियों में विदेशी पूंजी समता निवेश की गणना से संबधित दिशा निर्देश जारी किए है। इन नए दिशा–निर्देशों से भारतीय कपंनियों में विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह का क्षेत्र बढ़ा है। इससे उन सभी कंपनियों को लाभ होगा, जिनमें विदेशी निवेश निर्धारित सीमा तक पहुंच चुके हैं। नए नियमों के आधार पर, यदि निवेश करने वाली कंपनी में अधिकतर अंश भारतीयों के पास हों या कंपनी का नियंत्रण भारतीयों के पास हो व यदि यह कंपनी किसी अन्य कंपनी में निवेश करती है तो इस नए निवेश को पूर्णतया भारतीय माना जाएगा। उदाहरण के तौर पर यदि कंपनी क जिसमें विदेशी निवेश 50 प्रतिशत से कम है वह कंपनी ख कंपनी में मान लो 26 प्रतिशत निवेश करती है तो यह सारा 26 प्रतिशत अप्रत्यक्ष विदेशी प्रत्यक्ष निवेश माना जाएगा। इन नए नियमों से पहले आनुपातिक निवेश को अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश माना जाता था।

यदि ऐसा निवेश उन क्षेत्रों में किया जा रहा हो, जिनमें विदेशी निवेश की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई हो, तब इस निवेश की स्वीकृति सरकार तथा विदेशी संवर्धन बोर्ड से भी लेनी होगी। विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा किए गए निवेश तथा विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्डों में किए गए निवेश को विदेशी निवेश की गणना में शामिल किया जाएगा।

(ङ) विदेशी निवेश का प्रवेश स्त्रोत

भारत में विदेशी निवेश के दो रास्ते हैंः (i) प्रत्यक्ष रूट, (ii) सरकारी रूट। प्रत्यक्ष रूट में विदेशी निवेशकों को निवेश के लिए सरकार या रिजर्व बैंक से किसी प्रकार की कोई अनुमति लेनी पड़ती। सरकारी रूट में विदेशी निवेशकों को सरकार के विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड से अनुमति लेनी पड़ती है। सरकार से अनुमति लेने के लिए, अब विदेशी निवेशक आनलाइन भी आवेदन दे सकते हैं।

टूल बाक्स – 06
प्रत्यक्ष विदेशी नीति 2012 के प्रावधान
• भारत में निवेश का मूल • विदेशी संयत्रों के प्रकार • निवासी इकाइयों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की पात्रता • भारतीय कंपनियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की गणना • विदेशी निवेश का प्रवेश स्त्रोत • प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवेश पर शर्तों व अधिकतम सीमा संबंधी नीति।

(च) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवेश पर शर्तों व अधिकतम सीमा संबधी नीति।

भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबंध

निम्न क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रतिबंधित है–

(i) फुटकर व्यापार

(ii) परमाणु ऊर्जा

(iii) लॉटरी व्यवसाय

(iv) जुआ, शर्तें, कसीनों

(v) चिट फंड व निधि कंपनियां।

(vi) भूमि संपदा व्यवसाय

(vii) ऐसी क्रियाएं/क्षेत्र जो निजी क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए वर्जित है, अर्थात अणु ऊर्जा तथा रेलवे।

विदेशी निवेश की मूल देश में वापसी

(i) यदि विदेशी निवेश वापसी आधार पर किया गया है तो विदेशी निवेशक भारत में खरीदी गई प्रतिभूतियों को बेचकर विक्रय से प्राप्त राशि को अपने मूल देश में बिना रोक टोक के वापिस ले जा सकता है।

(ii) अंशों पर लाभांश को स्वतंत्रता से मूल देश में वापिस ले जाया जा सकता है।

(iii) परिवर्तनशील ऋणपत्रों पर ब्याज को स्वतंत्रता से मूल देश में वापिस ले जाया जा सकता है।

सभी वापसियों पर विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

सारांश

विदेशी निवेश को अभिप्राय अन्य देशों द्वारा एक देश में पूंजी के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष निवेश से है। विकासशील देशों में विदेशी निवेश को बढ़ावा देना बहुत ही आवश्यक है। परंतु उन पर यदि पर्याप्त नियंत्रण रखा जाए तो ही इन देशों के आर्थिक विकास में तेजी आएगी। भारत में नई निवेश नीति बहुत उदार है तथा विदेशी निवेशकों के पक्ष में है। इससे भारत में निवेश को बढ़ावा मिल रहा है। परंतु भारत में विदेशी निवेश नीति को और भी सरल, स्पष्ट व उदार बनाया जाना चाहिए। भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में विदेशी पूंजी का आगमन ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से ही हो गया था। परंतु अंग्रेज़ों ने भारत में विदेशी पूंजी संबंधी जो नीति अपनाई थी वह भारत के हित में न होकर विदेशी पूंजीपतियों के अनुकूल थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में विदेशी पूंजी का प्रयोग आर्थिक विकास को बढ़ाने एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाने के लिए किया जाने लगा।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 विदेशी निवेश से क्या तात्पर्य है?

प्र.2 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और पोर्टफोलियो निवेश की व्याख्या करें।

प्र.3 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को परिभाषित करें।

प्र.4 वर्तमान विदेशी निवेश नीति के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या करें।

प्र.5 मेजबान देशों के लिए विदेशी निवेश के किन्हीं तीन लाभों की व्याख्या करें।

प्र.6 मेंजबान देशों के लिए विदेशी निवेश की कोई तीन कमियां बताए।

प्र.7 विकासशील देशों में विदेशी निवेश वातावरण में सुधार करने के लिए कुछ सुझाव दें।

प्र.8 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व कौन से है?

प्र.9 विकसित देशों को विकासशील देशों में निवेश करने के लिए मुख्य प्रोत्साहनों की व्याख्या करें।

प्र.10 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को नियमित करने के लिए विभिन्न उपायों का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.11 विदेशी निवेश का क्या अर्थ है? विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें।

प्र.12 विदेशी निवेश के संबंध में भारत सरकार की वर्तमान नीति का मूल्यांकन करें।

प्र.13 अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तेज करने में विदेशी निवेश के महत्व तथा सीमाओं की विवेचना कीजिए।

प्र.14 विदेशी निवेश से क्या अभिप्राय है? मेजबान देश पर विदेशी निवेश के प्रभाव का वर्णन करें।

प्र.15 भारत में विदेशी निवेश की जरूरत क्या है? विदेशी निवेश के बारे में भारतीय सरकार की वर्तमान नीति का वर्णन करें।

प्र.16 विकासशील देशों के आर्थिक विकास में विदेशी निवेश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस कथन की व्याख्या करे और विदेशी निवेश के आगमन को बढ़ावा देने के लिए सुझाव दें।

प्र.17 विदेशी पूंजी से क्या अभिप्राय है? इसका वर्गीकरण दें। अल्पविकसित देशों के लिए विदेशी पूंजी की आवश्यकता की व्याख्या करें।

प्र.18 मेजबान देशों के आर्थिक विकास में विदेशी निवेश के महत्व का वर्णन करें। इसकी हानियां कौन सी है।

प्र.19 मेजबान देशों तथा मूल देशों के लिए विदेशी निवेश के लाभों एवं हानियों का वर्णन करें।

प्र.20 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश क्या है? विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या करें।

खंड–4

इकाई–14 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष

विषय सूची

अध्ययन के उद्देश्य
14.0 प्रस्तावना
14.1 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व उद्देश्य
14.2 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रशासन
14.3 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक साधन
14.4 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य
14.5 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सफलताएं व असफलताएं
14.6 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं भारत

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे:

- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष
- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य
- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का संगठन
- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक साधन
- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्यप्रणाली
- मुद्रा कोष के प्रतिबंधित कार्य
- मुद्रा कोष की आलोचनाएं
- मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को हुई हानियां व लाभ

14.0 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना

द्वितीय महायुद्ध का विश्व की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस अवस्था का सुधार करने के उद्देश्य से अमेरिका में जुलाई 1944 में ब्रेटेन वुड्स नामक स्थान पर एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें 44 मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि सभी देशों के आर्थिक विकास के लिए दो संस्थाएं स्थापित की जाएं।
(क) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष
(ख) अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक।

14.1 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष

27, दिसंबर 1945 को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना की गई। इस संस्था ने 1 मार्च 1947 अपना कार्य आरंभ कर दिया। वर्तमान में इस कोष के सदस्य 184 राष्ट्र हैं।

प्रो. हॉम ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के बारे में कहा कि यह संस्था केंद्रीय बैंकों का बैंक है अर्थात जिस प्रकार किसी देश का केंद्रीय बैंक अपने देश के व्यापारिक तथा अन्य बैंकों के नकद कोषों की व्यवस्था करता है उसी प्रकार अंतरराष्ट्रीय मुद्रा को सदस्य राष्ट्रों के साधनों का केंद्रीयकरण करके अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता करता है।

टूल बाक्स – 01
अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना 27 दिसंबर 1945 को की गई। वर्तमान में इसके कोष के 184 सदस्य राष्ट्र है।

14.1.1 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

(i) अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना:–इस कोष का प्रथम उद्देश्य सदस्य देशों के बीच मौद्रिक सहयोग स्थापित करता है तथा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में समय–समय पर सुझाव देना है।

(ii) अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को बढ़ावा देना:–अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य विभिन्न राष्ट्रों में आपसी व्यापार में उत्पन्न होने वाली बाधाओं को समाप्त करना है। इसके साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार को संतुलित रूप से प्रोत्साहित करना है, ताकि सदस्य राष्ट्रों के बीच रोज़गार एवं वास्तविक आय का स्तर ऊंचा हो सके।

(iii) भुगतानों की बहुपक्षीय व्यवस्था:–कोष का यह भी उद्देश्य है कि वह सदस्य देशों के बीच भुगतान व्यवस्था के सम्बन्ध में द्विपक्षीय भुगतान व्यवस्था के स्थान पर बहुपक्षीय भुगतान की व्यवस्था करवाए।

(iv) विनिमय दरों में स्थिरता:–मुद्रा कोष के उद्देश्यों में यह भी उद्देश्य है कि वह सदस्य देशों की विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। अब इस उद्देश्य में संशोधन कर दिया गया है।

(v) विनिमय नियंत्रण को हटाना:–यह कोष सदस्य देशों द्वारा विदेशी विनिमय पर लगाए गए नियंत्रणों को हटाने का प्रयत्न करेगा।

(vi) सदस्य राष्ट्रों की विदेशी मुद्राएं उपलब्ध करवाना:–अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष उन देशों को विदेशी मुद्रा उपलब्ध करवाता है जिन्हें विदेशी मुद्रा की वास्तव में आवश्यकता होती है। इस विषय पर **प्रो. क्राउथर** ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि,"अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा घाटे वाले देशों की विदेशी मुद्रा उपलब्ध करवाना है। वे इससे घाटे को पूरा करते हैं।"

(vii) संकटकाल में सदस्यों की सहायता:–फंड का उद्देश्य संकटकाल में सदस्य देशों को अल्पकालीन मौद्रिक सहायता देना है।

(viii) अंतरराष्ट्रीय भुगतान असंतुलन को कम करना:–इस फंड का उद्देश्य सदस्य देशों के अंतरराष्ट्रीय भुगतानों के असंतुलन की अवधि तथा मात्रा को कम करना है। इसके लिए उन्हें मौद्रिक सहायता देना है।

टूल बाक्स – 02
अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य • अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना • अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को बढ़ावा देना • भुगतानों की बहुपक्षीय व्यवस्था • विनिमय दरों में स्थिरता • विनिमय नियंत्रण को हटाना

- सदस्य राष्ट्रों की विदेशी मुद्रायें उपलब्ध करवाना
- संकटकाल में सदस्यों की सहायता
- अंतरराष्ट्रीय भुगतान असंतुलन को कम करना
- पूंजी का लाभप्रद निवेश

(ix) पूंजी का लाभप्रद निवेशः– इस कोष का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों को उनकी दीर्घकालीन पूंजी को लाभप्रद कार्यों में लगाने में सहायता करना है। यह विशेष रूप से धनी देशों को निर्धन देशों में पूंजी का निवेश करने में सहायता प्रदान करता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना कब हुई?
प्र.2	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गठित हुआ था?
प्र.3	सभी देशों के विकास के लिए कौन–सी दो संस्थाएं स्थापित की गई?

14.2 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रशासन या संगठन

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का संगठन इस प्रकार है–

(क) प्रशासक मंडलः–यह मुद्रा कोष की साधारण सभा का कार्य करता है। इसमें प्रत्येक देश पांच वर्ष की अवधि के लिए अपना एक–एक प्रतिनिधि तथा एक–एक सहायक गर्वनर नियुक्त करता है। प्रशासक मंडल का कार्य (i) नीतियों का निर्धारण करना, (ii) सदस्य देशों के कोटा का संशोधन करना, (iii) नए सदस्यों को प्रवेश देना, (iv) संचालक का चुनाव करना, (v) सदस्य देशों की मुद्राओं की समता दरों के संबंध में निर्णय लेना है।

(ख) संचालक मंडलः–यह कोष के दिन–प्रतिदिन के कार्यों का संचालन सुचारू रूप से करता है। इस समय इसके 21 सदस्य हैं जिनमें 7 स्थायी तथा शेष अस्थायी होते हैं। स्थायी संचालक उन सात देशों के होते हैं जिनका चंदा दूसरों देशों से अधिक है। इस समय ये देश अमेरिका, जर्मनी, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली तथा कनाडा हैं। अन्य देशों द्वारा 14 संचालक निर्वाचित किये जाते हैं। भारत निर्वाचित सदस्यों में से एक है। इस फंड का मुख्य अधिकारी प्रबंधक निदेशक होता है। यह संचालक मंडल द्वारा चुना जाता है। परंतु संचालक मंडल अपने सदस्यों में से प्रबंध निदेशक नियुक्त नहीं कर सकता। जून 1994 से प्रबंध निदेशक एक सहायक के स्थान पर 3 सहायक प्रबंध निदेशकों को चुन सकता है।

प्रबंधक निर्देशक संचालक मंडल की सभाओं की अध्यक्षता करता है। वह अपना मत केवल तभी दे सकता है, जबकि किसी मुद्दे पर संचालक मंडल में किसी विषय पर बराबर–बराबर मत हो जाए। प्रबंध संचालक का कार्यालय प्रबंध मंडल की इच्छा पर निर्भर करता है।

निर्देशक मंडल के सदस्य मुद्रा के केंद्रीय कार्यालय पर ही रहते हैं। ये समय–समय पर होने वाली सभाओं में भाग लेते हैं। साथ ही ये कोष के नियमित कार्य संचालन के प्रति उतरदायी भी होते हैं। ये सदस्य मुद्रा कोष से ही वेतन प्राप्त करते हैं।

(ग) अंतरिम समितिः–यह एक सलाहकारी संस्था है। इसमें प्रशासक मंडल के 22 सदस्य होते हैं। इसकी एक वर्ष में दो बैठकें होती हैं। यह प्रशासक मंडल को अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली, सदस्य देशों के कोटा, समझौता धारा में संशोधन इत्यादि मामलों में सलाह देती है।

(घ) विकास समितिः–यह अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की संयुक्त समिति है, जो विकासशील देशों को वास्तविक संसाधनों के हस्तांतरण पर विचार करती है। इस समिति में भी 22 सदस्य होते हैं, जो कोष और बैंक के प्रशासक होते हैं।

(ङ) **मताधिकारः**—मुद्रा कोष के सामान्य निर्णय बहुमत के आधार पर होते हैं। इनका निर्धारण मताधिकार से ही होता है। प्रत्येक सदस्य देश 250 निश्चित मत दे सकता है। इसके अतिरिक्त कोष में उसके अभ्यंश के अनुसार प्रति एक लाख एस.डी.आर. पर एक अतिरिक्त मत प्राप्त होता है।

(च) **कार्यालयः**—इसका केवल एक केंद्रीय कार्यालय है। यह वॉशिंगटन(अमेरिका) में स्थित है।

टूल बाक्स — 03
अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का संगठन
1. प्रशासक मंडल 2. संचालक मंडल 3. अंतरिम समिति 4. विकास समिति 5. मताधिकार 6. कार्यालय

14.3 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक साधन

(क) **अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की पूंजीः**—यह सदस्य देशों के लिए निश्चित किये गए अभ्यंशों के कुल योग से बनाई जाती है। प्रत्येक देश के कोटा को कोष का सदस्य बनने से पहले निश्चित कर दिया जाता है। आजकल यह कोटा एस.डी.आर. के रूप में निर्धारित होता है। प्रत्येक देश अपने कोटे की 25 प्रतिशत राशि फंड द्वारा निर्धारित आरक्षित परिसंपति जैसे एस.डी.आर. या अन्य किसी प्रयोग करंसी देता है। 75 प्रतिशत राशि अपने देश की करंसी में देता है।

फंड के कोटा में हर पांच वर्ष बाद परिवर्तन किए जाते हैं। आरंभ में आई.एम.एफ. की कुल पूंजी 880 करोड़ डालर निर्धारित की गई थी। फंड ने सदस्य देशों के कोटे में समय—समय पर परिवर्तन किया है और सदस्य देशों के कोटा में वृद्धि की जाती रही है। कोष की कुल राशि में भारत का भाग 1.96 प्रतिशत है। सबसे अधिक कोटा अमेरिका का है। आई.एम.एफ. के अग्रणी कोटाधारियों में भारत का वर्तमान में 13वां स्थान है। एक देश में कोटा की रकम के द्वारा ही फंड के साथ उस देश के संबंध निर्धारित होते हैं। जैसे (i) सदस्य देश की वोट देने की शक्ति कोटा के रकम पर निर्भर करती है। (ii) एक देश फंड से कितना ऋण ले सकता है। (iii) एक देश के फंड की पूंजी का कितना भाग होगा आदि सदस्य देश के कोटा की रकम पर निर्भर करता है।

(ख) **विशेष प्राप्ति अधिकार—एक नई हिसाबी मुद्राः**—अंतरराष्ट्रीय तरलता में वृद्धि करने के लिए 1 जनवरी 1970 से इस योजना को आरंभ किया गया। एस.डी.आर. एक अंतरराष्ट्रीय रिजर्व मुद्रा है, जिसका प्रयोग स्वर्ण अथवा विदेशी मुद्राओं के सहायता के बिना अंतरराष्ट्रीय भुगतानों को निपटाने के लिए किया जा सकता है। एस.डी.आर. के बदले परिवर्तनीय मुद्राओं को प्राप्त किया जा सकता है। एस.डी.आर. अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में स्वर्ण की भांति कार्य करता है। इसलिए इसे कागजी स्वर्ण भी कहा जाता है।

1 जनवरी, 1981 से अपनाई गई पद्धति के अनुसार एस.डी.आर. का मूल्य 5 बड़े निर्यातक देशों की मुद्राओं की पिटारी के आधार पर निर्धारित किया जाता है। ये मुद्राएं हैः—(i) अमेरिकी डॉलर, (ii) जर्मनी मार्क, (iii) जापानी येन, (iv) ब्रिटिश पौण्ड, (v) फ्रांसीसी फ्रैंक।

वर्ष 2011 में एस.डी.आर. के मूल्य निर्धारण में इन पांच मुद्राओं का भार निम्न प्रकार थाः—

1. अमरीकी डॉलर 40%
2. जर्मन मार्क 21%
3. जापानी येन 17%

4.	ब्रिटिश पौण्ड	11%
5.	फ्रांसीसी फ्रैंक	11%
	कुल	100%

वर्तमान स्थिति—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्यों के एस.डी.आर. के कोटे का पुर्नरीक्षण कर रहा है। नया सूत्र अप्रैल 2008 में सभी सदस्यों के द्वारा मंजूर किया गया है। इससे भारत को निम्न लाभ प्राप्त हुए हैः—

(i) भारत के कोटे का अंश 1.92 प्रतिशत से बढ़ाकर 2.34 प्रतिशत कर दिया गया है। इससे भारत का 184 देशों में 11वां स्थान होगा।

(ii) कोष में भारत के मत का भाग 1.88 प्रतिशत कर दिया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यालय कहां स्थित है?
प्र.5	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के संचालक मंडल में कितने सदस्य हैं?
प्र.6	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के स्थायी संचालक कौन हैं?
प्र.7	कोष में भारत के मत का भाग कितना है?

14.4 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य प्रणाली

मुद्रा कोष की कार्य प्रणाली में मुख्य रूप से निम्न शामिल हैः—

(क) विदेशी मुद्रा संबंधी कार्यः—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्य देशों की मांग पर उस देश की मुद्रा अथवा स्वर्ण के बदले उन देशों को वांछित विदेशी मुद्रा उपलब्ध करवाता है। विदेशी मुद्रा की पूर्ति निम्न तीन सीमाओं के अंतर्गत ही की जाती है (i) मांगी गई मुद्रा दुलर्भ मुद्रा घोषित न की गई हो (ii) मांगी गई मुद्रा का प्रयोग चालू भुगतान के लिए ही किया जाता है। (iii) जो सदस्य देश अपनी मुद्रा के बदले विदेशी मुद्रा की मांग कर रहे हैं, उससे सदस्य देश के अभ्यंश में एक वर्ष में 25 प्रतिशत की सीमा छूट दी जा सकती है।

सहायता की सीमा—(i) मुद्रा कोष प्रार्थी देश के अभ्यंश के बराबर तक सहायता दे सकता है। यह सहायता 5 वर्ष की अवधि के लिए होती है तथा विदेशी मुद्रा में की जाती है।

(ii) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष केवल अस्थायी असंतुलन को दूर करने के लिए ऋण देता है। वास्तव में जब किसी देश के विदेशी विनिमय कोष समाप्त हो जाए अथवा किसी अन्य अस्थायी संकट के कारण देश भुगतान न कर सके तो ही मुद्रा कोष उस देश की सहायता करता है।
सामान्य रूप से मुद्रा कोष निम्नलिखित रूपों में सहायता प्रदान करता हैः—

(i) विनिमय कठिनाई दूर करनाः—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष उन देशों को आर्थिक सहायता देता है जिनकी अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है। इसमें साथ ही उन देशों के निर्यात वर्ष के कुछ महीने में होते हैं। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष विनिमय कठिनाई को दूर करता है।

(ii) भुगतान संतुलन सुधारने के लिएः—आर्थिक नियोजन के कारण भुगतान प्रतिकूल हो जाता हैं। इसे सुधारने के लिए मुद्रा कोष प्रदान करता है।

(iii) विनिमय दर स्थिरता के लिएः—आर्थिक स्थिति की दुर्बलता के कारण कुछ देशों को अपनी विनिमय दर स्थिर रखने में कठिनाई होती है। उन देशों को भी मुद्रा कोष द्वारा आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है।

(iv) संकटकालीन सहायताः—जब किसी देश की आर्थिक अथवा राजनीतिक संकट के कारण आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है तो इस स्थिति को सुधारने के लिए मुद्रा कोष द्वारा अल्पकालीन सहायता प्रदान की जाती है।

(ख) मुद्रा का दोबारा क्रयः—जब किसी देश को मुद्रा कोष से ऋण लेना पड़ता है तो उसे अपनी मुद्रा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को बेचनी पड़ती है तभी वह किसी अन्य देश की मुद्रा खरीद सकता है। इस प्रकार ऋणी देश के मुद्रा के भंडार में इस देश के अभ्यंश की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है। इन ऋणों को चुकाने को ही दोबारा क्रय कहा जाता है। प्रत्येक ऋणी देश के लिए अपनी बेची मुद्रा को 5 वर्ष के अंदर पुनः खरीदना आवश्यक होता है। ऐसा करने के लिए वह किसी भी सदस्य देश की मुद्रा का प्रयोग कर सकता है। यदि ऐसा संभव न हो तो ऋणी देश को सोने के बदले में अपनी मुद्रा वापिस खरीदनी पड़ती है।

(ग) दुर्लभ मुद्राः—यदि किसी देश का भुगतान संतुलन निरंतर पक्ष में होने पर उस देश की मुद्रा की मांग काफ़ी बढ़ जाए अथवा किसी कारण से मुद्रा कोष यह अनुभव करे कि उसके पास किसी देश की मुद्रा दुर्लभ हो गई है तो वह दुर्लभता के कारणों के साथ इसकी सूचना सदस्य देशों को देता है। साथ ही ऐसी स्थिति में यदि कोष अपने साधनों से उस देश की मुद्रा की पूर्ति नहीं कर सकता तो वह संबंधित मुद्रा की मांग पूरी न की जा सके तो मुद्रा कोष द्वारा इस मुद्रा को दुर्लभ मुद्रा घोषित कर दिया जाता है। सदस्य देशों को उस मुद्रा का प्रयोग सीमित करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है।

(घ) ट्रस्ट कोष की स्थापनाः—मुद्रा कोष ने 1976 में एक ट्रस्ट कोष की स्थापना की। इसके लिए पांच वर्ष की अवधि में कोष द्वारा 25 मिलियन औसत स्वर्ण बेचकर इससे प्राप्त होने वाले आधिक्य का अधिकांश भाग ट्रस्ट कोष में जमा करने का निर्णय लिया गया। इस कोष से विकासशील देश 1/2 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर ऋण ले सकते हैं।

(ङ) पूरक वित्तीय सुविधाः—यह सुविधा सन 1979 आरंभ की गई। इसके अंतर्गत कोष के द्वारा सामान्य सहायता के अतिरिक्त पूरक वित्तीय सहायता भी दी जाती है। यह सहायता सदस्य देशों के भुगतान संतुलन के विपरीत होने पर दी जाती है। यह सुविधा प्रायः दीर्घकाल के लिए होती है।

(च) सेवा शुल्कः—जब मुद्रा कोष किसी सदस्य देश को ऋण देता है तो जिस मुद्रा में ऋण दिया जाता है, कोष के पास उस मुद्रा की मात्रा में कमी हो जाती है परंतु ऋणी देश की मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। यदि कोष में जिस देश की मुद्रा की मात्रा उसक अभ्यंश से अधिक हो जाती है तो वह देश कोष का ऋणी बन जाता है। ऐसी स्थिति में कोष अधिक मुद्रा की मात्रा पर संबंधित देश से शुल्क वसूल करता है।

(छ) विदेशी विनिमय नियंत्रण संबंधी सलाहः—मुद्रा कोष स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में है, ताकि अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह अथवा पूंजी के पलायन को रोका जा सके। फिर भी यह विनिमय नियंत्रण को अपनाने की सलाह देता है। इसके अतिरिक्त संकटकाल में अथवा दुर्लभ मुद्रा के संबंध में भी विनिमय नियंत्रण अपनाने की छूट दी जाती है।

टूल बाक्स—04
अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य
• विदेशी मुद्रा संबंधी कार्य • मुद्रा का दोबारा क्रय • दुर्लभ मुद्रा • ट्रस्ट कोष की स्थापना • पूरक वित्तीय सुविधाए • सेवा शुल्क • विदेशी विनिमय नियंत्रण संबंधी सलाह • विशेषज्ञों की सेवाएं • प्रशिक्षण कार्यक्रम

● प्रकाशन संबंधी कार्य

(ज) विशेषज्ञों की सेवाएंः—मुद्रा कोष द्वारा सदस्य देशों को अपने विशेषज्ञों की सेवाएं प्रदान की जाती हैं। यह बाहरी विशेषज्ञों को भी जटिल समस्याओं के लिए सदस्य देशों में भेजता है। मुद्रा कोष द्वारा दी जाने वाली सहायता भुगतान संतुलन की समस्या से लेकर आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र की किसी भी विशेष समस्या से संबंधित हो सकती है। कोष के विशेषज्ञों ने कई देशों को कर, मुद्रा, विनिमय तथा विकास नीतियों के संबंध में सहायता दी है। कुछ देशों में मुद्रा कोष के सहयोग से केंद्रीय बैंकों की स्थापना एवं उनके विभिन्न विभागों की व्यवस्था भी की है। इसके लिए कोष के विशेषज्ञों को एक सप्ताह से लेकर एक वर्ष तक की अवधि के लिए संबंधित देश में रहना पड़ता है।

(झ) प्रशिक्षण कार्यक्रमः—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष सन 1951 से सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम आरंभ किया है। इसके अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय भुगतान, आर्थिक विकास और वित्तीय व्यवस्था तथा उनके विश्लेषणों से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण की अवधि 6 मास से लेकर 1 वर्ष तक होती है। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम केंद्रीय बैंक तथा सरकार के वित्त विभाग के उच्च पदाधिकारियों के लिए आरंभ किया गया है। इसके अंतर्गत मौखिक व्याख्यानों एवं वाद—विवाद के अतिरिक्त व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

(ञ) प्रकाशन संबंधी कार्यः—मुद्रा कोष प्रकाशन का कार्य भी करता है। यह मुद्रा, बैंकिग, अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं प्रशुल्क नीति से संबंधित अनेक प्रकाशन भी निकालता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.8	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा विदेशी मुद्रा संबंधी सहायता की क्या सीमाएं है?
प्र.9	मुद्रा कोष सदस्य से देशों को कौन—कौन सहायता प्रदान कर सकता है?
प्र.10	प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्या शामिल है?

मुद्रा कोष के वर्जित या प्रतिबंधित कार्य

मुद्रा कोष के कार्यों के संबंध में निम्नलिखित प्रतिबंध हैः—

(i) मुद्रा कोष केवल अल्पकालीन ऋण ही दे सकता है।

(ii) भुगतान शेष में सुधार के लिए किसी देश की आंतरिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा कोष किसी प्रकार का कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

(iii) मुद्रा कोष केवल अधिकृत मौद्रिक संस्थाओं एवं केंद्रीय बैंक के माध्यम से ही कार्य कर सकता है अथवा व्यक्तियों व निजी संस्थाओं के साथ कार्य नहीं करता।

14.5 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सफलताएं और असफलताएं

मुद्रा कोष के कार्यों के मूल्यांकन में सफलताएं तथा असफलताएं दोनों ही शामिल की जाती हैं।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सफलताएं

मुद्रा कोष से मुद्राओं का क्रय संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा बाद में फ्रांस जैसे विकसित देश करते रहे हैं। परंतु विकासशील देशों की सहायता के लिए विशेष योजनाएं अपनाकर इन देशों को कोष द्वारा सहायता पहुंचाई गई है।

अनेक कठिनाइयों एवं समस्याओं के बावजूद अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने कार्यकाल के 63 वर्षों में विश्व मौद्रिक संतुलन स्थापित करने में पर्याप्त सीमा तक सफल रहा है। इसकी मुख्य सफलताएं निम्नलिखित रही हैः—

(i) अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोगः—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने आंतरिक संगठन एवं बाहरी प्रभाव के कारण अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को स्थापित करने में सफल रहा है।

(ii) यूरोपियन देशों का पुनर्निर्माण :—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा अपने प्रभाव के आधार पर अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्रों को यूरोपियन देशों की पुनर्निर्माण संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरित किया गया है।

(iii) विदेशी भुगतान की बहुमुखी व्यवस्थाः—मुद्रा कोष ने विदेशी व्यापार पर लगाए गए प्रतिबंधों, विनिमय नियंत्रणों को कम करने तथा विदेशी भुगतान की बहुमुखी व्यवस्था की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की है। मुद्रा कोष की सहायता से ही अब 35 देशों की मुद्राएं स्वतंत्र रूप से अन्य मुद्राओं में परिवर्तित की जा सकती है।

(iv) अंतरराष्ट्रीय तरलता में वृद्धिः—कोष ने सदस्य राष्ट्रों के भुगतान शेष के अस्थायी असंतुलनों को सुधारने में पर्याप्त सहायता की है। विशेष प्राप्ति अधिकार के रूप में नई तरल संपति का निर्माण करके अंतरराष्ट्रीय तरलता की समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(v) बहुचलन करंसी प्रणाली की समाप्तिः—मुद्रा कोष ने राष्ट्रों की बहुचलन करंसी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है, क्योंकि यह प्रणाली काफी हानिकारक थी।

(vi) अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धिः—मुद्रा कोष ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार करने तथा इसे बाधा मुक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मुद्रा कोष ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार संबंधी भुगतान को सरल बनाया है। असंतुलित व्यापार वाले देशों की मदद करके उनके व्यापार को बढ़ाने में सहायता की है।

(vii) विकासशील देशों की विशेष सहायताः—मुद्रा कोष ने विकासशील देशों की सहायता की है। यह कोष इन देशों के भुगतान शेष को संतुलन में बनाए रखने को संतुलन में बनाए रखने एवं मौद्रिक स्थिरता बनाए रखने के लिए सहायता देता है। कोष ने विकासशील देशों के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की है। सहायता के लिए ट्रस्ट फंड भी बनाया है। इन देशों को तकनीकी सहायता भी दी गई है।

(viii) संकट में सहायताः—मुद्रा कोष ने सभी सदस्य देशों की आर्थिक संकट के समय काफी मदद की है। पेट्रोल की कीमतें बढ़ जाने के कारण विश्व के कई देशों में विदेशी विनिमय संकट महसूस होने लगा था। फंड ने इस समस्या के समाधान के लिए पेट्रोल सुविधा कोष की स्थापना की।

(ix) स्वर्णमान के दोषों से मुक्तिः—मुद्रा कोष के कार्यों से स्वर्णमान के लाभ तो प्राप्त नहीं हुए हैं किंतु उसके दोषों से स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की आलोचनाएं/असफलताएं

इस आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि मुद्रा कोष अपने उद्देश्यों में पूर्ण रूप से सफल हुआ है। इसकी अनेक कमियां हैं, जिनके आधार पर ही आलोचना की गई है। मुद्रा कोष की आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:—

(i) वैधानिक आधार नहीं:—मुद्रा कोष ने अपने सदस्य राष्ट्रों के अभ्यंशों का निर्धारण उनकी राष्ट्रीय आय, स्वर्ण कोष, विदेशी व्यापार एवं भुगतान शेष की स्थिति के आधार पर किए हैं। परंतु यह तरीका वैज्ञानिक नहीं है।

(ii) विनिमय नियंत्रणों को दूर करने में असमर्थताः—मुद्रा कोष विदेशी व्यापार पर लगाए गए प्रतिबंधों तथा विनिमय नियंत्रण को समाप्त नहीं कर सका है। संसार के कई देशों ने संरक्षण की नीति को और बढ़ा दिया है।

(iii) स्वर्ण के मूल्य में स्थिरता का अभावः—मुद्रा कोष में स्वर्ण की कीमतों की स्थिरता लाने में सफल नहीं हो सका। सोने का मूल्य सन 1971 तक 35 डॉलर प्रति औस स्थिर रखा गया। परंतु इसके पश्चात यह मूल्य स्थिर नहीं रह सका। यह बढ़कर 1500 डालर प्रति औसत तक हो गया।

(iv) विनिमय स्थिरता का अभावः—मुद्रा कोष विनिमय स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका। सन 1971 तक कोष स्थिर विनिमय दर निर्धारित करने में सफल रहा। परंतु सन 1971 के पश्चात विनिमय दर में दुबारा परिवर्तन हो गया। यह मुद्रा कोष की सबसे बड़ी असफलता है। यहां तक की अनेक देशों ने कोष से नाममात्र के परामश के बाद अपनी विनिमय दरों में परिवर्तन कर लिए हैं।

(v) सदस्य देशों के साथ समान व्यवहार का अभावः—मुद्रा कोष का सभी सदस्य देशों के साथ एक सा व्यवहार नहीं है। कोष द्वारा धनी देशों को विशेष सुविधायें प्रदान की जाती हैं, परंतु अविकसित देशों की उपेक्षा की जाती है। अफ्रीका के कुछ राष्ट्रों ने तो मुद्रा कोष को अमीरों का क्लब कहा है।

(vi) दानी संस्थाः—आलोचकों का विचार है कि मुद्रा कोष केवल एक दानी संस्था है। इसका मुख्य कार्य कुछ धनी देशों के धन का प्रयोग उनके समर्थक राष्ट्रों को सहायता देने के लिए किया जाता है, ताकि वे अपने भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक कर सके। इस कारण उनका आर्थिक विकास नहीं होता, अपितु विदेशी ऋणग्रस्तता में वृद्धि होती है।

(vii) बहुमुखी विनिमय दर का अंत न हो सकाः—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष बहुमुखी विनिमय प्रणाली को समाप्त नहीं कर सका है। बहुमुखी विनिमय प्रणाली के अंतर्गत एक देश विभिन्न सौदों के लिए विभिन्न दरें अपनाता है। उदाहरण के लिए 1971 में फ्रांस ने दो प्रकार की विनिमय दरों को अपनाया था, एक वास्तविक व्यापार के लिए स्थिर विनिमय दर तथा दूसरे सट्टा—सौदों के लिए परिवर्तनशील विनिमय दर को अपनाया था।

(viii) 1971 के मौद्रिक संकट का समाधान नहींः—सन् 1971 में अमेरिका ने डालर की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता समाप्त कर दी तथा उसका अवमूल्यन कर दिया। परिणामस्वरूप संसार में मौद्रिक संकट उत्पन्न हो गया। मुद्रा कोष इस संकट का समाधान नहीं कर सका। इस संकट के फलस्वरूप मुद्रा कोष के स्वर्णमान तथा स्थिर विनिमय दर के उद्देश्यों को छोड़ना पड़ा। यह मुद्रा कोष की सबसे बड़ी असफलता है।

(ix) अंतरराष्ट्रीय तरलता का समाधान नहीं ले पायाः—मुद्रा कोष अंतरराष्ट्रीय तरलता का उचित समाधान नहीं कर सका है। यद्यपि फंड ने अपने स्थायी कोष में काफी वृद्धि की है तथा विशेष प्राप्त अधिकार के रूप में नई करंसी का निर्माण भी किया है। लेकिन फिर भी तरलता की समस्या बनी हुई है। फलस्वरूप आई.एम.एफ. के लिए विकासशील देशों को पर्याप्त मात्रा में धन उधार देना कठिन होगा तथा उनके भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने के लिए सहायता देना संभव नहीं होगा।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.11	विदेशी भुगतान की बहुमुखी व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?
प्र.12	अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की कोई दो असफलताएं बताईए?

14.6 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं भारत

भारत 44 देशों में से एक था जिन्होंने ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में भाग लिया था और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के चार्टर पर हस्ताक्षर किए थे। भारत 27 दिसंबर, 1945 को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बन गया। मार्च, 1947 में भारत ने अपने 400 मिलियन डॉलर के अभ्यंश की अदायगी की। भारत का कोटा 2003 में बढ़कर 4158 मिलियन हो गया जबकि यह पहले 3056 मिलियन था। इसका 2003 में कोटे में हिस्सा केवल 1.92 प्रतिशत था और यह 2008 में बढ़कर 2.34 प्रतिशत हो गया। 1970 से पहले भारत उन पांच देशों में से एक था जिनके अभ्यंश सबसे अधिक थे। इसी आधार पर भारत को मुद्रा कोष के संचालक मंडल में स्थान दिया गया

था। किन्तु 1970 के बाद भारत का कोटा जापान तथा इटली से भी कम हो गया। इसलिए संचालक मंडल भारत की स्थायी सदस्यता समाप्त कर दी गई।

टूल बाक्स–05
भारत भी 1944 में हुए ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में शामिल होने वाला देश था।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को लाभ भी है और कुछ हानियां भी हुई हैं। इसके लाभ और हानियां निम्नलिखित हैः–

(i) विश्व बैंक की सदस्यताः–मुद्रा कोष का सदस्य होने कारण ही भारत विश्व बैंक का सदस्य भी है। भारत विश्व बैंक की सहायता प्राप्त कर सका है। इस संस्था से भारत को अपने पुननिर्माण एवं विकास में काफी सहायता प्राप्त हुई है।

(ii) विदेशी मुद्रा की उपलब्धिः–फंड की सदस्यता के कारण भारत की आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्राएं उपलब्ध हो सकी हैं। इससे भारत अपनी भारत आर्थिक उन्नति के लिए विदेशों में पूंजीगत सामान आयात कर सकता है तथा भुगतान असंतुलन का घाटा पूरा कर सकता है। भारत ने मुद्रा कोष से 31 मार्च 1971 तक 818 करोड़ की मुद्रा खरीदी थी जिसे वापिस कर दिया गया। 1981 तक भारत की मुद्रा कोष से 275 करोड़ डालर एस.डी.आर. की सहायता विदेशी विनिमय संकट पर नियंत्रण करने के लिए प्राप्त की थी। भारत ने कोष की सुविधाओं का अधिकतम प्रयोग किया है। 1991 से 1993 के बीच भारत ने 3.6 करोड़ डालर का ऋण लिया था। इन सभी ऋणों का भुगतान भारत ने कर दिया। 2002 से 2006 तक भारत ने 4493 मिलियन एस.डी.आर. का लेन–देन आई.एम.एफ. के साथ किया। इसके साथ ही 466.5 मिलियन एस.डी.आर. की पुर्नखरीद की।

(iii) पौण्ड स्टर्लिंग के बंधन से रूपये की मुक्तिः–मुद्रा कोष की स्थापना से पहले भारतीय रूपया पौण्ड स्टर्लिंग से बंधा हुआ था तथा उसी में इसकी विनिमय दर निर्धारित होती थी। मुद्रा कोष की सहायता के कारण रूपया स्टर्लिग पौण्ड की दासता से स्वतंत्र हो गया है। अब भारतीय रूपए ने अंतरराष्ट्रीय भुगतान के लिए स्वतंत्र मौद्रिक इकाई का स्थान प्राप्त कर लिया है।

(iv) अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धिः–भारत को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य होने के नाते अपने विदेशी व्यापार में वृद्धि करने की अनेक सुविधाएं मिली हैं। इस कोष की स्थापना के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार ने अत्यधिक प्रगति की है।

(v) संकटकाल में सहायताः–भारत को प्राकृतिक विपदाओं, जैसे–भूकंप, बाढ़, अकाल आदि के समय तथा चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के कारण आर्थिक कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं। इनका सामना करने के लिए कोष से काफी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। तेल की कीमतें बढ़ने के कारण भारत को व्यापार संतुलन का घाटा हो गया। इस घाटे को पूरा करने के लिए 1979 में फंड की तेल सुविधा से 2025 लाख एस.डी.आर. का ऋण लिया गया। मुद्रा कोष ने सन 1991 में भारत को 5000 करोड़ रूपये के ऋण की मंजूरी दी। ऋण तीन वर्ष की अवधि में दिए जाने थे। इसमें से 4070 करोड़ डालर के ऋण जनवरी 2000 तक ले लिए हैं। शेष ऋण भारत ने न लेने का निर्णय कर लिया।

(vi) आर्थिक परामर्श की प्राप्तिः–मुद्रा कोष का सदस्य होने के नाते भारत ने अपनी आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए समय–समय पर कोष से अनेक सुझाव प्राप्त किए हैं।

(vii) अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का स्थानः–कोष के प्रबंध संचालन एवं नीति निर्धारण में भारत का महत्वपूर्ण स्थान है। मुद्रा कोष की नीति निर्धारण में भारत सक्रिय रूप से भाग लेता है। इससे अंतरराष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्र में भारत का महत्व बढ़ा है।

टूल बाक्स–06
भारत को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से हुए लाभ

- विश्व बैंक की सदस्यता
- विदेशी मुद्रा की उपलब्धता
- पौण्ड स्टर्लिंग से मुक्ति
- अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि
- संकटकाल में सहायता
- आर्थिक परामर्श
- अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का स्थान
- रिजर्व बैंक द्वारा विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय
- पंचवर्षीय योजनाओं के लिए सहायता
- उदारीकरण की नीति में सहायता
- विदेशी विनिमय संकट में सहायता
- विशेष प्राप्ति अधिकार

(viii) रिजर्व बैंक द्वारा विदेशी विनिमय का क्रय–विक्रयः–कोष ने रिजर्व बैंक को 2 लाख रूपये से अधिक की विनिमय के क्रय–विक्रय का अधिकार दिया है। रिजर्व बैंक द्वारा 2 लाख रूपये से कम की मुद्राओं को क्रय–विक्रय नहीं किया जा सकता है।

(ix) पंचवर्षीय योजनाओं के लिए सहायताः–भारत ने इस कोष से दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान कई ऋण प्राप्त किए। इस योजना काल में भारत को 127 करोड़ डालर के बराबर विदेशी सहायता प्राप्त हुई। मुद्रा कोष की सलाह से भारत ने तीसरी योजना में रूपये का अवमूल्यन किया। 1980 में मुद्रा कोष द्वारा भारत को क्षतिपूरक वित्त सुविधा के अंतर्गत 1980 में मुद्रा कोष के द्वारा भारत को 283 करोड़ रूपयें की मंजूरी दी। भारत उन 69 विकासशील देशों में से एक है जो मुद्रा कोष द्वारा स्थापित खाते से पूरक सहायता पर सब्सिडी प्राप्त कर सकते हैं। यह 3 प्रतिशत वार्षिक से अधिक नहीं होती।

(x) उदारीकरण की नीति में सहायताः–1991 में भारत आर्थिक संकट से गुजर रहा था। भारत ने आर्थिक सुधारों की एक उदारीकरण नीति बनाई। इसे सफल बनाने के उद्देश्य से मुद्रा कोष ने अक्तूबर 1991 से जुलाई 1993 के बीच उद्यत ऋण व्यवस्था के अंतर्गत 2.2 अरब डालर का ऋण मंजूर किया। इस राशि में से 1.14 अरब डालर का भुगतान भारत कर चुका है।

(xi) विदेशी विनिमय संकट में सहायताः–भारत को सन 1991 में विदेशी विनिमय के संकट का सामना करना पड़ा। उस समय भारत को विदेशी विनिमय की बहुत अधिक आवश्यकता थी। इस संकट से उभरने के लिए भारत ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष 1992–93 में 480 एस.डी.आर. करोड़ रूपये के विदेशी मुद्रा में ऋण प्राप्त किए। भारत को 1993–94 में 500 करोड़ की सहायता मिली। परिणामस्वरूप भारत में विनिमय संकट समाप्त हो गया। इसलिए भारत ने फंड से नया ऋण न लेने का निर्णय लिया।

(xii) विशेष प्राप्ति अधिकारः–भारत का 2000 में एस.डी.आर. का कोटा 68 करोड़ था। यह बढ़कर 2003 में बढ़कर 4158 मिलियन एस.डी.आर. हो गया। संसार के कुल कोटे में भारत को भाग 2003 में 1.9 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 2.34 प्रतिशत हो गया है।

मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को हानियां

लाभों के अतिरिक्त कोष का सदस्य होने के नाते भारत को कुछ हानियां भी सहन करनी पड़ी हैं। कुछ आलोचकों के अनुसार भारत को कोष की सदस्यता से जितना लाभ मिलना चाहिए था, उसकी अपेक्षा कम लाभ मिले हैं। इसके निम्न कारण हैः–

1. भारत सरकार ने विधान मंडलों की स्वीकृति के बिना और आर्थिक विशेषज्ञों की सलाह के बिना ही अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता स्वीकार कर ली।
2. मुद्रा कोष ने शुरू में पौण्ड की भुगतान सुविधा भारत को देने से इनकार कर दिया था।
3. भारत का कोटा इसको प्राप्त करने वाले लाभों की तुलना में अधिक रखा गया है।

सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कोष का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा को जन्म देना था, जिसमें लचीलापन हो, जो व्यावहारिक हो, जो अंतरराष्ट्रीय विनिमय दरों में स्थिरता ला सके अथवा अंतरराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित कर विश्व में सद्भावना और स्नेह का वातावरण उत्पन्न कर सके। **प्रो. जैकबसन** ने लिखा है कि,"अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य संसार के देशों को मौद्रिक सहयोग के सिद्धांत पर आपसी मौद्रिक संबंधों में अनुशासनपूर्ण ढ़ंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करना है।" उपरोक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विशेष भूमिका निभाई है। परंतु फिर भी मुद्रा कोष अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सका। इस संबंध में **प्रो. कॉलबोर्न** ने अपनी पुस्तक में ठीक ही लिखा है कि,"अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का समझौता उस पारदर्शी कागज की तरह है, जिसमें से विश्व की राजनैतिक व्यवस्था की प्रत्येक दरार नजर आती है।"इस वर्णन प्राप्त होता है कि भारत ने मुद्रा कोष से अनेक लाभ प्राप्त किए है। भारत ने सदा कोष के नियमों का पालन किया है। इसलिए कोष की नीति भारत के लिए सहानुभूति पूर्ण ही रही हैं।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
प्र.2 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के क्या उद्देश्य हैं।
प्र.3 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोषों के उद्देश्यों, संगठन एवं आर्थिक साधनों पर विस्तृत प्रकाश कीजिए।
प्र.4 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्यप्रणाली की व्याख्या करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.5 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को क्या लाभ प्राप्त हुए हैं?
प्र.6 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना क्यों हुई थी। यह अपने लक्ष्यों में कहां तक सफल हो पाया है?
प्र.7 निम्नलिखित पर नोट लिखो।
(i) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य
(ii) आई.एम.एफ. की भूमिका
(iii) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष
(iv) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा के कोष के उद्देश्य
(v) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य प्रणाली
(vi) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं भारत
प्र.8 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के क्या उद्देश्य हैं। इसके कार्यों की विवेचना कीजिए।